महाराजा सूरजमल

और उनका युग (1745-1763)

डॉ. प्रकाश चन्द्र चान्दावत

प्राध्यापक, इतिहास विभाग,

राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर

1982

जयपाल एजेंसीज

दहतोरा, आगरा-7

राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से पी-एच० डी० की उपाधि

के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध

प्रथम संस्करण : दिसम्बर 19[illegible]2

मूल्य पचास रुपये

प्रकाशक

किशनसिंह फौजदार : जयपाल ऐजेंसीज दहतोरा आगरा-7

संयोजक : राजेन्द्रसिंह फौजदार, रणजीत कम्पोजिंग हाउस दहतोरा आगरा-7

मुद्रक : श्री विष्णु प्रिन्टिंग प्रेस, राजामण्डी आगरा-2

आमुख

चौदह वर्ष पूर्व जब मैं अपने प्रथम नियुक्ति स्थान भरतपुर पहुँचा, तो ब्रिटिश तोपों के विरुद्ध उस क़िले की अजेयता की ख्याति ने विषय के प्रति मेरे मर्म को छूते हुए स्थानीय इतिहास को प्रकाश में लाने की प्रेरणा दी थी। स्वाभाविक रूप से मेरी दृष्टि इस अजेय दुर्ग के निर्माता शासक सूरजमल के प्रभावशाली व्यक्तित्व पर जाकर टिकी। विषय की गहराई में उतरने के साथ ही मेरी यह धारणा बनी कि जो अधिकारी विद्वान सूरजमल के जीवन और शासन की सर्वांगीण व्याख्या का उत्तर-दायित्व ग्रहण करेगा, वह संभवतः भारतीय इतिहास का एक अनूठा एवं रोचक विषय सम्हालेगा, जो अब तक उपेक्षित रहा है। शोध कार्य करने की अपनी स्वाभाविक इच्छा के कारण यह विषय हमेशा मेरे मस्तिष्क में फलता-फूलता रहा। लेकिन समय का गतिरोध 1976 ई० में जाकर टूटा और अगले ही वर्ष यू०जी०सी० द्वारा प्रदत्त फ़ेलोशिप ने मेरी अर्ध-धारित योजना को साकार रूप देने में महत्वपूर्ण योगदान किया। तीन वर्षों के मेरे अनुसन्धान का परिणाम अब सर्व साधारण के निर्णय के लिए प्रस्तुत हो रहा है।

मैं अपने निर्देशक डॉ० वीरेन्द्र स्वरूप भटनागर का अत्यन्त आभारी हूँ, जो सदैव मेरे प्रति समय एवं मनोयोग दोनों ही दृष्टि से उदार रहे। प्रोफेसर गोपीनाथ शर्मा एवं स्व० घासीराम परिहार को मेरे कार्य के प्रति जो सहानुभूति पूर्ण रुचि रही वह निरन्तर मेरे लिए प्रेरणा स्रोत बनी। मैं महाराजकुमार रघुबीरसिंह का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने न केवल अपने सीतामऊ स्थित नटनागर शोध संस्थान की बहुमूल्य पाण्डुलिपियों के उपयोग करने की अनुमति प्रदान की, बल्कि मूल समस्याओं के सम्बन्ध में अपने विद्वतापूर्ण मार्गदर्शन से मुझे लाभान्वित भी किया। मराठी पत्रों के विश्लेषण में की गई सहायता के लिए मैं श्री लक्ष्मण राव पेंढ़ारकर का ऋणी हूँ। राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली, राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता, महाराष्ट्र राज्य अभिलेखागार, बम्बई के उन सभी अधिकारियों व कर्मचारियों के प्रति मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अपने संग्रहों के प्रयोग में मूल्यवान् सहायता प्रदान की।

मैं उन सभी विद्वानों सहयोगियों एवं स्वजनों के प्रति भी अत्यन्त अनुगृहीत हूँ जिन्होंने इस ग्रंथ को पूरा करने में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मुझे सहायता पहुँचाई। अन्त में मैं प्रकाशक श्री किशनसिंह फौजदार के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिनकी रुचि एवं उत्साह से ही यह पुस्तक अल्प अवधि में अपनी श्रेष्ठ साज-सज्जा के साथ पाठकों के हाथों में पहुँच रही है। पुस्तक में रह गई त्रुटियों और तथ्यों, तर्कों व निष्कर्षों को सुधारने के लिए दिए गए किसी भी सुझाव का मैं खुले दिल से स्वागत करूँगा।

एच 289 शास्त्री नगर
अजमेर

—प्रकाश चन्द्र चान्दावत

संकेताक्षर

अहवाल सलातीन	: अहवाल-ए-सलातीन-ए-मुतखरीन
आर्कि० सर्वे०	: आर्कियालाजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया
इमाद	: इमाद-उस-सादात
इम्पी० गज़े०	: इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ इण्डिया
इलियट	: भारत का इतिहास
ईसरदास	: फुतूहात-ए-आलमगीरी
ओडायर	: असेसमेन्ट रिपोर्ट ऑफ भरतपुर स्टेट
ओडायर, फाइनल रिपोर्ट	: फाइनल रिपोर्ट ऑन दि भरतपुर स्टेट सेटलमेंट
कामवर	: तजकिरात-उस-सलातीन-ए-चग़ताई
काशीराज	: अहवाल-ए जंग-ए-भाऊ-व-अहममशाह दुर्रानी
खाफी खाँ	: मुन्तखब-उल-लुबाब
ग्राउसे	: मथुरा, ए डिस्ट्रिक्ट मेमॉयर
गुप्ता	: दि इवोल्यूशन आफ एडमिनिस्ट्रेशन आफ दि फॉर्मर भरतपुर स्टेट
जे० आर० ए० एस०	: जरनल ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी
देवनीश	: दि भवन्स एण्ड गार्डन पेलेसेज ऑफ डीग
नूरुद्दीन	: अहवाल-ए-नजीबुद्दौला
पार्टीज	: पार्टीज एण्ड पॉलिटिक्स एट दि मुग़ल कोर्ट
फ़ा० अख़	: फ़ारसी अख़बारात
फ़ा० व० रि०	: फ़ारसी वकील रिपोर्ट्स
ब्रोकमेन	: गज़ेटियर ऑफ दि ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स
मा० आ०	: माआसीर-ए-आलमगीरी
मैलिसन	: दि नेटिव स्टेट्स ऑफ इण्डिया
रसेल	: ट्राइब्ज एण्ड दि कास्ट्स ऑफ दि सेन्ट्रल : प्राविन्सेज ऑफ इण्डिया
राजपूताना	: हिस्ट्री ऑफ राजपूताना ड्यूरिंग एटीन्थ सेन्चुरी
राजवाडे	: मराठ्यांच्या इतिहासांची साधने
शिवदास	: शाहनामा-ए-मुनव्वर-उल-कलाम
सामिन	: हालात-ए-अमदान-ए-अहमदशाह दुर्रानी दर हिन्दुस्तान दर
सिद्दीकी	: मुग़ल कालीन भूराजस्व प्रशासन
सियार	: सियार-उल-मुतखिरीन

विषय सूची

पृष्ठभूमि और स्रोत

भारतीय इतिहास में अठारहवीं शताब्दी का महत्व उन ऐतिहासिक प्रक्रियाओं में निहित है जिनका आवश्यक परिणाम भारतीय स्वतन्त्रता का लोप होना एवं ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का यहाँ पर अधिकार स्थापित होना था। भारत में मुगल साम्राज्य का पतन कोई आकस्मिक घटना न होकर विघटन की एक लम्बी प्रक्रिया थी, जिसका प्रारम्भ औरंगजेब की मृत्यु से स्पष्ट दिखाई देता है। मुगल साम्राज्य के छिन्न भिन्न होने से जिन नवीन तत्वों का उदय हुआ, वे मुगल साम्राज्य को बल प्रदान करने के स्थान पर अपनी शक्ति बढ़ाने में संलग्न रहे, जो पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण लक्षण था। मुगल राजधानी के ठीक पड़ोस में सूरजमल के नेतृत्व में एक स्वतन्त्र जाट राज्य की स्थापना ऐसा ही एक नवोदित तत्व था जिसने १८ वीं सदी के छठे एवं सातवें दशक में हिन्दुस्तानी राजनीति की उपर्युक्त प्रक्रियाओं में न केवल सक्रिय हिस्सा लिया था बल्कि उन पर अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाप भी छोड़ी थी।

प्रस्तुत पुस्तक में भरतपुर के जाट इतिहास के इसी महत्वपूर्ण चरित्र सूरजमल के राजनैतिक इतिहास को समकालीन ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है। पुस्तक का महत्व मात्र सूरजमल के व्यक्तिगत इतिहास तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसमें जाटों के प्रथम शक्तिशाली राज्य की स्थापना के सभी पहलुओं की सांगोपांग विवेचना की गई है। समकालीन शक्तियों मुगल, मराठा, राजपूत व अफगान के साथ जाट सम्बन्धों की विस्तृत विवेचना, पानीपत के तीसरे निर्णायक युद्ध की ओर ले जाने वाली हिन्दुस्तानी राजनीति की अनेक गुत्थियों को समझने में इतिहास के विद्यार्थी को यथेष्ट एवं रोचक सामग्री प्रदान करती है। जाट इतिहास पर कालिकारंजन कानूनगो कृत 'हिस्ट्री आफ जाट्स' और जदुनाथ सरकार के ग्रन्थ 'फाल आफ दि मुगल एम्पायर' के प्रतिनिधि कार्यों (१९२५-३० ई०) के बाद स्वतन्त्र रूप से तथा अनुसन्धान की दृष्टि से किया गया यह प्रथम महत्वपूर्ण प्रयास है। उपर्युक्त ग्रन्थों के प्रकाशन के बाद इस विषय पर विविध प्रकार की नवीन ऐतिहासिक सामग्री, विशेष रूप से मराठा व राजस्थानी, प्रकाश में आई है, जिनका पहली बार उपयोग इस पुस्तक में हुआ है।

विषय से सम्बन्धित ऐतिहासिक सामग्री की गवेषणा से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भिक जाट राजाओं का स्वयं का कोई समकालीन शासकीय इतिहास अथवा दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं हैं, जो उनके पक्ष को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध हो। इस कारण मुख्यतः फ़ारसी, मराठी एवं जयपुर रिकार्ड तथा कुछ समकालीन ऐतिहासिक काव्यों की मूल सामग्री के आधार पर उपर्युक्त उद्देश्य को पूरा करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत ग्रन्थ में सूरजमल द्वारा वास्तविक सत्ता ग्रहण का वर्ष १७४५ ई० मानकर, उसके अध्ययन को व्यवस्थित किया गया है। उसके दरवारी कवि सूदन एवं सोमनाथ के विवरणों से इस आधार वर्ष की पुष्टि होती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि जाट शासकों ने अपने शासन काल के विवरण को लिपिवद्ध करने और ऐतिहासिक सामग्री की सुरक्षा की महत्ता एवं उपयोगिता की ओर ध्यान ही नहीं दिया था। सौभाग्य से सूरजमल के दरबारी कवि सूदन द्वारा लिखे गए काव्य ग्रन्थ "सुजान चरित्र" से इस विषय पर उपयोगी एवं प्रामाणिक जानकारी मिलती है। कवि सूदन मथुरा के रहने वाले कायस्थ थे। उन्होंने ब्रज भाषा में लिखे इस वीर रस पूर्ण पद्यात्मक काव्य में सूरजमल द्वारा लड़े गए प्रमुख युद्धों का सात "जंगों" में विस्तृत वर्णन किया है। सैनिक पक्ष के अलावा सूरजमल के जीवन के अन्य पक्षों पर लेखक जानकारी देने का प्रयास नहीं करता है। वंश वर्णन के बाद कवि सीधे १७४५ ई० में असद ख़ान से उसके युद्ध का वर्णन करता है और कुम्हेर पर मराठा आक्रमण प्रारम्भ (जनवरी १७५४ ई०) होते ही यह ग्रन्थ एकाएक समाप्त हो जाता है। संभवतः इस समय कवि की मृत्यु हो जाने के कारण वह इसे पूरा नहीं कर पाया। युद्धों का वर्णन प्रत्यक्षदर्शी का है और ऐसा प्रतीत होता है कि सूरजमल द्वारा लड़े गए अधिकांश युद्धों में कवि स्वयं उपस्थित था तथा युद्ध या घटना के तत्काल बाद सम्बन्धित विवरण लिपिवद्ध कर दिया गया था। कवि द्वारा दी गई युद्ध की तिथियाँ पूर्णतः सही पाई गई हैं। इसके उपयोग के समय पाया गया कि प्रशंसात्मक शैली की उपेक्षा करके सूदन द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक तथ्यों की समकालीन फ़ारसी व मराठी स्रोतों से तुलना की जाय तो वे लगभग शत-प्रतिशत सही एवं प्रामाणिक हैं। असद ख़ान और घसेरा के राव बहादुरसिंह बड़गूजर के साथ सूरजमल के युद्ध की जानकारी देने वाला यह एकमात्र स्रोत है। सुजान चरित्र में हमें सूरजमल के प्रशासन की अल्प किन्तु मूल्यवान् सामग्री मिलती हैं। यह हमें सूरजमल के विभिन्न दुर्गों की व्यवस्था, सैन्य संगठन एवं अधिकारियों के बारे में जानकारी देता है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। इस काव्य ग्रन्थ की सबसे बड़ी उपयोगिता का आधार यह है कि सूरजमल के पक्ष को प्रस्तुत करने वाला यह अपूर्ण एवं काव्यात्मक होते हुए भी एकमात्र प्रामाणिक स्रोत है। कवि सोमनाथ के काव्य ग्रन्थ और प्रताप रासो (जाचीक जीवण कृत १७८० ई० की रचना) में केवल प्रसंगवश

ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं। किन्तु सूरजमल का दरबारी कवि होने के कारण सोमनाथ के प्रासंगिक उल्लेख भी ऐतिहासिक महत्व के हैं। इनके काव्य 'सुजान विलास' और 'रस पीयूष निधि' से हमें सूरजमल के चरित्र, युवराज-काल और प्रतापसिंह के साथ राज्य बंटवारे के सम्बन्ध में मौलिक सूचना मिलती है। एक अन्य कवि उदयराम ने अपने काव्य ग्रन्थ 'सुजान संवत्' में सूरजमल के युवराज काल और कुम्हेर के घेरे के बाद का भी वर्णन करके उस अभाव की पूर्ति का प्रयास किया है जो सुजान चरित्र में दिखाई देती है। लेकिन दुर्भाग्य से आज यह ग्रन्थ अप्राप्य है।

कवि आत्माराम कृत सवाई जयसिंह चरित का इस विषय पर पहली बार उपयोग किया गया है। कवि जयसिंह का दरबारी था और उसके द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक तथ्यों की प्रामाणिकता अन्य समकालीन स्रोतों से सिद्ध होती है। परन्तु इसकी उपयोगिता चूड़ामन और जयसिंह के थून अभियान तक ही सीमित है। १७४८ ई० में कवि जदुनाथ रचित हिन्दी पद्य काव्य 'खांडेराव रासो' का भी इस विषय में पहली बार उपयोग किया गया है, किन्तु जाटों के बारे में यह कोई उपयोगी जानकारी प्रदान नहीं करता है।

राजकीय अभिलेखागार, बीकानेर में सुरक्षित "जयपुर रिकार्ड्स" के अन्तर्गत जाट—जयपुर सम्बन्धों पर विपुल सामग्री तो मिलती है, किन्तु इने-गिने दस्तावेज़ों को छोड़कर सूरजमल के विषय में इनकी उपयोगिता अधिक नहीं है। वस्तुतः सवाई जयसिंह की मृत्यु के बाद भूतपूर्व जयपुर राज्य की ऐतिहासिक सामग्री में अप्रत्याशित रूप से कमी दिखाई देती है। सूरजमल के राजनैतिक जीवन का प्रारम्भ लगभग इसी समय से होता है, अतः इस कमी का प्रभाव प्रारम्भिक जाटों की तुलना में सूरजमल की गतिविधियों के अध्ययन पर स्पष्ट परिलक्षित होता है।

दूसरे अध्याय में विशेष रूप से चूड़ामन के इतिहास के लिए फ़ारसी अख़बारात, अर्जदाश्त, वकील रिपोर्ट, आमेर रिकार्ड, कपटद्वारा रिकार्ड, ख़तूत, फ़रमान, परवाना, हस्ब-उल-हुक्म और डिग्गी घराने के काग़जात विशेष रूप से उपयोगी एवं प्रामाणिक स्रोत सिद्ध हुए हैं। सूरजमल द्वारा माधोसिंह को लिखे कुछ ख़रीते मिले हैं, किन्तु वे विशेष उपयोगी नहीं हैं। १ फरवरी १७६२ ई० को माधोसिंह द्वारा सूरजमल को लिखा गया एक ड्राफ्ट खरीता भी मिला है। जयपुर के दीवान नन्दलाल द्वारा राजा सदाशिव को २७ सितम्बर १७५९ ई० को लिखा गया ड्राफ्ट खरीता और आमेर रिकार्ड से प्राप्त ९ जुलाई १७६२ ई० का एक महत्वपूर्ण पत्र अब्दाली के खतरे से उत्पन्न परिस्थिति में विभिन्न शासकों, विशेष रूप से सूरजमल के व्यवहार पर बहुत ही महत्वपूर्ण एवं विस्तृत जानकारी प्रदान

करते हैं। सूरजमल की नीति एवं दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति की दृष्टि से ये पत्र दुर्लभ हैं।

"दस्तूर कौमवार" दीवान-ए-हजूरी जयपुर के अन्तर्गत "स्याहा-वकाया हजूर" के तोज़ी रिकार्डस पर आधारित समकालीन दस्तावेज़ हैं। इसकी सातवीं जिल्द में जाटों के बारे में विशेष रूप से बदनसिंह और सूरजमल के विषय में उपयोगी जानकारी मिलती हैं। तिथियों एवं जयपुर शासक के साथ भेटों के विषय में यह बहुत प्रामाणिक है। दफ्तर सनद नवीस में आमिलों द्वारा जयपुर के दीवान अथवा अन्य अधिकारियों को भेजे गए पत्रों का संग्रह हैं, जिसमें जागीरी मामलातों का महत्वपूर्ण वर्णन मिलता है। सूरजमल के राजस्व प्रशासन की दृष्टि से, जिसके बारे में हमें बहुत कम जानकारी मिलती है, ये पत्र बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं और भरतपुर राज्य की विस्तार की समीक्षा के लिए भी उपयोगी पाए गए हैं।

फ़ारसी के अनेक ग्रन्थों में जाटों के सम्बन्ध में सामग्री यत्र-तत्र बिखरी हुई हैं। "फुतूहात-ए-आलमगीरी," "माआसीर-ए-आलम-गीरी," शिवदास कृत "शाहनामा," हादी कामवर खान का ',तज़किरा" और मिर्जा मोहम्मद का "इबरतनामा" प्रारम्भिक जाटों गोकुला से चूड़ामन जाट तक का प्रामाणिक इतिहास तैयार करने में प्रमुख स्रोत ग्रन्थ हैं। "अहवाल ए सलातीन" महत्वपूर्ण होते हुए भी प्रायः अन्य रचनाओं की नक़ल है। चूड़ामन के विरुद्ध जयसिंह के प्रथम थून अभियान का वर्णन मिर्जा मोहम्मद के 'इबरतनामा' से लिया गया प्रतीत होता है। हसनपुर के युद्ध का कुछ परिवर्तन के साथ विस्तृत वर्णन किया गया है। इस युद्ध में चूड़ामन की भूमिका पर "तारीख ए हिन्द" निष्पक्ष वर्णन प्रस्तुत करता है। "मजमाउल-अखबार" अच्छा संकलन है। इसके लेखक हरसुखराय का दादा बसन्त राम कई वर्षो तक आगरा का सूबेदार रह चुका था, अतः प्रारम्भिक जाटों के विषय में इसका वर्णन उपयोगी है। ग्रन्थ में कई गम्भीर भूलें भी हैं, जैसे चूड़ामन के बारूदखाने में जल मरने की कहानी।

अज्ञात लेखकों की रचनाएँ "वाकया-ए-शाह आलम सानी" (दिल्ली क्रानिकल्स), "तारीखे अहमदशाही" और "तारीखे आलमगीर सानी'' राजधानी व मुग़ल दरबार से सम्बन्धित घटनाओं के सन्दर्भ में सूरजमल का प्रामाणिक इतिहास तैयार करने में सर्वाधिक महत्व के ग्रन्थ हैं। अपेक्षाकृत संक्षिप्त उल्लेख करने पर भी सूरजमल से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों में वर्णित घटनाओं को तिथि क्रम के अनुसार सुनिश्चित करने में वाक्या-ए-शाह आलम सानी आधार ग्रन्थ सिद्ध हुआ है। तारीखे अहमदशाही अहमदशाह के शासन काल (१७५४ ई० में उसकी पदच्युति तक) का सर्वश्रेष्ठ, प्रत्यक्षदर्शी एवं विस्तृत इतिहास है। इस अवधि में दिल्ली की राजनीति में सूरजमल के प्रवेश, जावेद ख़ान की हत्या और गृह युद्ध के मध्य उसकी

गतिविधियों के विस्तृत एवं उपयोगी विवरण इस ग्रन्थ से प्राप्त होते हैं, जो अन्यत्र बहुत कम हैं। कुम्हेर का घेरा प्रारम्भ होने पर जब सूदन की रचना अधूरी रह जाती है, तब जनवरी से जून १७५४ ई० तक का प्रामाणिक विवरण हमें तारीख़े अहमदशाही से प्राप्त होता है। तारीख़े आलमगीर सानी जून १७५४ ई० से जून १७५८ ई० के बीच सूरजमल की गतिविधियों, मुग़ल, मराठा व अब्दाली के साथ उसके सम्बन्धों के विषय में व्यापक एवं मूल्यवान् सामग्री प्रदान करता है। जुलाई १७५५ ई० में जाट-वज़ीर के बीच सम्पन्न सन्धि और मार्च १७५७ ई० में जाट अभियान को स्थगित करके मथुरा से अब्दाली के लौटने के कारणों का जो धारावार एवं निष्पक्ष विवरण इस ग्रन्थ में दिया गया है वह अन्यत्र नहीं मिलता है।

१७६५ ई० में लिखित शाकिर खान का "तजकिरा" समकालीन घटनाओं की अत्यन्त संक्षिप्त किन्तु प्रामाणिक जानकारी देता है। इसका प्रमुख दोष यह है कि इसमें घटनाओं का कालक्रमानुसार और पूर्ण एवं व्यवस्थित वर्णन नहीं है। "ईद-दिवस" के षड्यन्त्र को वह जावेद खान की मृत्यु के बाद रखता है और नजीब के साथ सूरजमल के संघर्ष के बाद अब्दाली के आक्रमण एवं दत्ताजी सिन्धिया की मृत्यु का वर्णन करता है। "बयान-ए-वाकया" १७३९ ई० से १७७७ ई० तक की राजनैतिक घटनाओं के लिए समकालीन एवं उपयोगी ग्रन्थ है। साम्राज्य के गृह युद्ध में सूरजमल की भूमिका का यह विस्तृत एवं सही विवरण देता है। रतनसिंह की मृत्यु तक यह ग्रन्थ भरतपुर के जाट इतिहास पर प्रामाणिक और उपयोगी विवरण प्रस्तुत करता हैं। हरचरनदास कृत "बहार-गुलजार-ए-शुजाई" १७८४ ई० तक समकालीन घटनाओं का काफ़ी सही एवं विशद विवरण देता है, किन्तु इसमें नाम और तिथियों की अनेक गम्भीर भूलें हैं। १७६१ ई० में जाटों के समक्ष आगरा दुर्ग के क़िलेदार के समर्पण को लेखक दो वर्ष बाद फ़र्रुखबाद के क़िलेदार द्वारा किए गए समर्पण के साथ मिला देता है।

१८ वीं सदी के इतिहास के लिए सर्वाधिक लोकप्रिय एवं चर्चित ग्रन्थ 'सियार-उल-मुतख़िरीन' पर टिप्पणी करना अनावश्यक प्रतीत होता है। १७४९ ई० मीरबख़्शी के साथ सूरजमल के संघर्ष से लेकर सूरजमल की मृत्यु तक की घटनाओं का लेखक ने विस्तार के साथ सही एवं निष्पक्ष वर्णन प्रस्तुत किया है। १८०० ई० के लगभग मुहम्मद अली खान कृत 'तारीख़े मुजफ़्फ़री' प्रत्यक्षदर्शी का विवरण न होते हुए भी मौलिक एवं विश्वसनीय जानकारी प्रदान करता है। कुम्हेर के घेरे के समय सूरजमल, सम्राट, वज़ीर इन्तिज़ाम व इमाद की कूटनीतिक गतिविधियों पर यह विस्तृत एवं मौलिक सूचना देता है। १८०८ ई० में रचित 'इमाद-उस-सादात' यद्यपि अवध के नवाबों का इतिहास है, तथापि दिल्ली की घटनाओं और सूरजमल के विषय में कहीं-कहीं भ्रान्तिपूर्ण, परन्तु कहीं-कहीं उपयोगी प्रकाश डालता है।

जाट-अब्दाली सम्बन्धों पर गुलाम हुसैन सामिन कृत 'हालात-ए-अहमदशाह

दुर्रानी' महत्वपूर्ण सामयिक स्रोत है। १७५६-५७ ई० में जाट राज्य पर अब्दाली के आक्रमण का यह प्रत्यक्षदर्शी विवरण होने के कारण सर्वाधिक महत्व का प्रामाणिक स्रोत है। लेखक स्वयं आगरा व मथुरा के निकट दुर्रानी सम्राट के डेरे में था 'अन्य ग्रन्थ 'मुरसालात-ए-सहमदशाह दुर्रानी और 'तज़किरा-ए-इमाद उल मुल्क' भारत में शाह की गतिविधियों पर मौलिक सामग्री प्रदान करते हैं। 'तज़किरा-ए-इमाद उल मुल्क' जिसका प्रो० गण्डासिंह ने पहली बार उपयोग किया, से १७५७ ई० में जाटों के विरुद्ध अब्दाली के अभियान विषयक प्रामाणिक सूचना मिलती है। इन दोनों स्रोतों से अब्दाली के साथ सूरजमल के दुर्लभ पत्र-व्यवहार की भी जानकारी मिलती है। ये पत्र जाट राजा की दूरदर्शिता, साहस, बौद्धिक स्तर एवं कूटनीतिक प्रतिभा को समकालीन शासकों के बीच उच्च प्रतिष्ठा प्रदान करते हैं।

पानीपत के तीसरे युद्ध के मध्य, विशेष रूप से सूरजमल और भाऊ के बीच मतभेदों पर सर्वाधिक प्रामाणिक महत्व की जानकारी हमें काशीराज के ग्रन्थ 'अहवाल ए-जंग-ए-भाऊ-व-अहमदशाह दुर्रानी' से प्राप्त होती है। इसके अभाव में सूरजमल के प्रति भाऊ के व्यवहार और उसके मराठा पक्ष छोड़ने सम्बन्धी भाऊ बखर के वृतान्त को निरा काल्पनिक और द्वेषपूर्ण ही माना जाता। अली मुहम्मद खान कृत 'मीरात-ए-अहमदी' जिसकी रचना १७६१ ई० में ही हुई थी, इस वर्ष का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करता है। परन्तु लेखक, जो गुजरात में बैठा था, का वर्णन दिल्ली से प्राप्त मराठा दूतों की सूचनाओं पर आधारित होने से कुछ भ्रान्तिपूर्ण भी है, जैसे सूरजमल के भाऊ के शिविर को छोड़ने सम्बन्धी वृतान्त। लेखक अब्दाली के लौट जाने के तुरन्त बाद सूरजमल और नजीब के बीच दिल्ली पर अधिकार की प्रतिस्पर्धा का उपयोगी विवरण देता है। नूरुद्दीन 'कृत अहवाल-ए-नजीबुद्दौला' सूरजमल के शासन के अन्तिम वर्ष की घटनाओं, का विशेष रूप से नजीब के साथ उसके संघर्ष का इतना विस्तृत एवं प्रामाणिक विवरण प्रदान करता है कि किसी अन्य स्रोत की आवश्यकता महसूस ही नहीं होती।

भरतपुर के जाट इतिहास के बारे में फ़ारसी भाषा में लिखा गया एक महत्वपूर्ण वृतान्त फ्रैंज गोटलियब का है। लेखक पोलैण्डवासी जर्मन था, जो दिल्ली में बस गया था और बेगम समरू से निकट सम्बन्ध के कारण उसे भरतपुर के जाट राजाओं के बारे में प्रामाणिक जानकारी मिली थी और उसी आधार पर १८२६ ई० में उसने उपर्युक्त वृतान्त लिखा था। यह इतिहास बहुत ही संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण है। खेमा जाट, मोहकमसिंह जाट, राज्यारोहण के समय बदनसिंह के जागीर क्षेत्र और सूरजमल के परिवार के विषय में इस ग्रन्थ से प्रामाणिक सूचनाएं मिलती हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं, परन्तु जाट राजवंश की प्रारम्भिक वंशावली देते हुए लेखक अनेक गम्भीर भूलें करता है।

सूरजमल के इतिहास को पूर्ण बनाने में फ़ारसी के बाद सर्वाधिक महत्व मराठी स्रोतों का है। सूरजमल के राजनैतिक अभ्युदय के साथ ही उत्तर भारत में मराठा प्रसार भी तेज़ी से बढ़ने लगा था। क्योंकि मराठे अपनी गतिविधियों तथा प्रासंगिक घटनाओं की निरन्तर रिपोर्ट पेशवा व अन्य लोगो को भेजा करते थे, अतः

जाटों के सम्पर्क में आने के बाद उनके बारे में उन्होंने जो कुछ लिखा, वह सब विभिन्न प्रकार के संकलनों द्वारा ठोस ऐतिहासिक सामग्री का निर्माण करता है। बगरू के युद्ध (१७४८ ई०) से लेकर सूरजमल की मृत्यु तक जाट-मराठा सम्बन्धों, सूरजमल के विभिन्न युद्धों और राजनैतिक गतिविधियों पर ये मराठा पत्र विस्तृत एवं उपयोगी जानकारी प्रदान करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में 'पेशवा दफ्तर', 'हिंगणे दफ्तर' और 'भाऊ बखर' से प्राप्त मूल्यवान् सामयिक सामग्री का व्यापक उपयोग किया गया है।

पेशवा दफ्तर की ४५ जिल्दों में प्रमुख रूप से जिल्द संख्या II, XXI व XXVII से जाट विषयक विपुल सामग्री मिलती है और जिल्द संख्या XV व XXIX के कुछेक पत्र ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। जुलाई १७५० ई० में सूरजमल और वज़ीर सफ़दरजंग के बीच विधिवत् मैत्री समझौते की एकमात्र प्रामाणिक सूचना हमें पेशवा दफ्तर II के पत्र संख्या १५ द्वारा प्राप्त होती है। यद्यपि ये पत्र अधिकांशतः मराठा दृष्टिकोण को प्रतिबिम्बित करते हैं, किन्तु समकालीन फ़ारसी स्रोतों से तुलनात्मक आधार पर उनमें उल्लिखित तथ्यों की पुष्टि की जा सकती है। दिल्ली स्थित मराठा राजदूत हिंगणे बन्धु (बापू पुरुषोत्तम महादेव और दामोदर महादेव) और पेशवा के बीच का पत्र-व्यवहार 'हिंगणे दफ्तर' की दो जिल्दों में संकलित है। राजधानी से लिखे जाने के कारण हिंगणे के पत्रों से समकालीन घटनाओं के विषय पर अत्यधिक महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। यद्यपि अधिकांश मराठी बखर ऐतिहासिक तथ्यों से दूर हैं, किन्तु 'भाऊ बखर' इसका अपवाद है, जो प्रस्तुत विषय के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसका लेखक कृष्णाजी शामराव दिल्ली के निकट रहता था और अधिकांश घटनाओं से भलीभाँति परिचित था। कुम्हेर पर मराठा आक्रमण और पानीपत के युद्ध के पूर्व सूरजमल और भाऊ के मतभेदों पर भाऊ बखर शब्दशः प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करता है, जो सर्वाधिक महत्व का है। यह सम्भव है कि लेखक अपनी शैली के आवरण में भाऊ के प्रति द्वेष एवं शिन्दे के गौरव को छिपाने का प्रयास करता है, किन्तु इससे उसके द्वारा प्रस्तुत तथ्यों की विश्वसनीयता में कोई कमी नहीं आती है। उसके द्वारा प्रस्तुत अधिकांश तथ्यों की पुष्टि सामयिक फ़ारसी स्रोतों जैसे काशीराज, मीरात-ए-अहमदी, इमाद उस सादात आदि के द्वारा होती है।

१९०५ ई० में वि० एठले को भाऊ बखर के नाम से एक अन्य बखर का पता चला। परन्तु इसकी प्रामाणिकता सन्देहजनक प्रतीत होती है। ग्रन्थ के लेखक के अनुसार यह भाऊ के गुप्त पलायन के दिन (पौष शुक्ला ८ शक संवत् १६८२) ही मु० शेवढे (बुन्देलखण्ड) में लिख दी गई थी। इसमें सूरजमल के प्रति भाऊ के दुर्व्यवहार को उचित ठहराने के लिए सूरजमल और मल्हार राव होलकर की (संदेह जनक) घनिष्ठता को आधार बनाया गया है।

अप्रकाशित "एठले दफ्तर" प्रस्तुत विषय के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसमें १७४४ ई० से १८१६ ई० के बीच के महत्वपूर्ण पत्रों का संकलन है। इसमें अन्ताजी माणकेश्वर द्वारा लिखा गया एक महत्वपूर्ण पत्र है (पत्र संख्या ३०, २१ जनवरी १७५७ ई०), जो अब्दाली से अन्ताजी की प्रथम मुठभेड़ के दिन की दुर्दशा पर प्रकाश डालता है और भावी नीति तथा सूरजमल के प्रति मराठा

दृष्टिकोण को विस्तार से स्पष्ट करता है। "शिंदेशाही इतिहासांची साधनें" के प्रथम दो भाग विषय से सम्बन्धित है। कुम्हेर के घेरे के मध्य जयप्पा सिन्धिया द्वारा लिखे गए कुछ पत्र प्राप्त होने के बावजूद वे सम्बन्धित घटना पर कोई उपयोगी प्रकाश नहीं डालते है। १७ अप्रैल व ३० अप्रैल १७५४ ई० को मुकाम कुम्हेर से स्वयं जयप्पा सिन्धिया के द्वारा लिखे गए पत्रों (पत्र संख्या १११ व ११२ भाग प्रथम) में संक्षेप में केवल इतना ही लिखा है कि जाटों के विरुद्ध मोर्चे लगा दिए हैं, जाट की स्थिति ख़राब है और शीघ्र ही जाटों का मामला निपटा दिया जायगा। इसी प्रकार "होल्कर शाहीच्या इतिहासाची साधनें (जि० I)" में प्राप्त पत्र होल्कर व सूरजमल के सम्बन्धों पर उपयोगी सिद्ध नही हुए है। "पुरन्दरे दफ्तर" के भाग I व III में १७६० ई० एवं १७६३ ई० के बीच की अवधि के कुछ महत्वपूर्ण पत्र सूरजमल के विषय में पानीपत युद्ध के पूर्व तथा बाद की गतिविधियों पर उपयोगी प्रकाश डालते हैं। भाग प्रथम के पत्र संख्या ४१७ से सूरजमल द्वारा पानीपत युद्ध के बाद नारोशंकर को लूटने की कहानी का खण्डन होता है। राजवाडे द्वारा सम्पादित "मराठ्यांच्या इतिहासांची साधनें" की जिल्द संख्या I, III व VI प्रस्तुत ग्रन्थ के लिए महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करती हैं। प्रथम जिल्द में भाऊ द्वारा गोविन्द वल्लाल को लिखे गए कुछ महत्वपूर्ण पत्र है, जो पानीपत युद्ध के पूर्व सूरजमल के साथ पनप रहे मतभेदों की स्थिति में उसकी मनःस्थिति को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं।

इस विषय के लिए एक अन्य महत्वपूर्ण स्रोत फादर फ्रांसिस जेवियर वैण्डल का फ्रेंच भाषा में लिखा गया जाट इतिहास है, जो अप्रकाशित है। लेखक १७६४ ई० से १७६८ ई० तक सूरजमल के पुत्र व उत्तराधिकारी जवाहरसिंह जाट के राजनीतिक सलाहकार के रूप में डीग में रहा था और इस कारण जाट सम्बन्धी उसका वृतान्त काफ़ी प्रामाणिक एवं समकालीन है। सूरजमल के विषय में वैण्डल हमें अनेक प्रामाणिक सूचनाऐं देता है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

उपर्युक्त आधार ग्रन्थों के अलावा अन्य कम महत्वपूर्ण ग्रन्थों से भी अनेक प्रामाणिक विषयों पर संक्षिप्त किन्तु उपयोगी जानकारी मिलती है। यार मुहम्मद का "दस्तूर उल इंशा" बहादुरशाह के प्रारम्भिक शासन काल में जाटों की शक्ति के कारण मथुरा-दिल्ली के शाही मार्ग के बन्द हो जाने का प्रत्यक्षदर्शी विवरण देता है। सोमनाथ के काव्य "माधव जगृति" में जयपुर शासक के प्रति निष्ठा एवं वफ़ादारी बनाए रखने की बदनसिंह द्वारा सूरजमल को दी गई सीख का उल्लेख मिलता है। "गुलिस्ताने रहमत" से यह पता चलता है कि प्रथम अफगान युद्ध में रुस्तम खान सूरजमल के हाथों मारा गया था और अहमद खान बंगश ने यह तथ्य अपने सैनिकों से छिपाया था। "चन्द्रचूड दफ्तर" के एक पत्र से जाट-मराठों के आर्थिक मामलों में रूपराम कटारी की भूमिका पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इसी प्रकार "ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार" में संकलित २८ मार्च १७५३ ई० का एक पत्र वजीर-सम्राट मतभेदों व सूरजमल की भूमिका पर प्रामाणिक विवरण प्रदान करता है। श्री कृष्ण भट्ट, जो जयपुर दरबार में सूरजमल का समकालीन कवि था, अपने काव्य "पद्य-मुक्तावली" में सूरजमल के गुणों और उस समय फैली हुई उसकी ख्याति का वर्णन तो करता है, किन्तु उससे सम्बन्धित किसी ऐतिहासिक विषय की जानकारी प्रदान नहीं करता है।

अध्याय–१

जाटों की उत्पत्ति

जाटों की उत्पत्ति

अठारहवी शताब्दी का भारतीय इतिहास भावी ब्रिटिश राज की स्थापना के लिए प्रशस्त हुई प्रक्रियाओं का इतिहास है। इस शताब्दी का पूर्वार्द्ध मुग़ल साम्राज्य के विघटन के साथ ही भारत के राष्ट्रीय स्वरूप के समाप्त होने तथा उत्तरार्द्ध क्षेत्रीय एवं जातीय राज्यों के अभ्युदय के रूप में प्रतिबिम्बित होता है। इस प्रक्रिया की एक महत्वपूर्ण कड़ी भरतपुर के जाट राज्य की स्थापना है। सम्राट औरंगज़ेब के समय में साम्राज्य के निकटस्थ जाटों का शक्तिशाली उदय उतना ही महत्वपूर्ण है, जितनी कि अठारहवीं शताब्दी के मध्य में सूरजमल के नेतृत्व में दिल्ली के राजनीतिक रंगमंच पर भरतपुर के जाट राज्य की भूमिका। किन्तु इन दोनों पहलुओं के सांगोपांग अध्ययन के लिए इस नवोदित भरतपुर राज्य के इतिहास को प्रभावित करने वाले दो प्रमुख तत्वों जातीय एवं भौगोलिक विशेषताओं का अध्ययन आवश्यक है।

भौगोलिक पृष्ठभूमि का भरतपुर के इतिहास पर प्रभाव

ब्रिटिश शासन में विलय के पूर्व भरतपुर का राज्य उत्तर में गुड़गाँव, उत्तर पूर्व में मथुरा, पूर्व में आगरा, दक्षिण में धौलपुर व करौली, दक्षिण-पश्चिम में जयपुर तथा पश्चिम में अलवर से घिरा हुआ था। यह राज्य २६° ४२° तथा २७° ४६° उत्तर अक्षांश और ७६° ५४° तथा ७७° ४८° पूर्व देशान्तर में फैला हुआ था। इस क्षेत्र की लम्बाई उत्तर से दक्षिण लगभग ७६ मील और चौड़ाई पूर्व से पश्चिम ४८ मील[1] तथा क्षेत्रफल १९७४ वर्गमील, जनसंख्या ६५ लाख और राजस्व २१ लाख रुपये था।[2]

अठारहवीं शताब्दी में राजनैतिक शक्ति प्राप्त करने के पूर्व ही जाट मकड़ी के जाले की तरह चम्बल के पार सिन्धु से ग्वालियर तक एक विशाल क्षेत्र में महत्वपूर्ण जातीय तत्व के रूप में फैल चुके थे। सिन्धु के पार भी जाट जनसंख्या

---

१. ड्रेक ब्रोकमेन, गज़ेटियर ऑफ दि ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स, पृ० १; ज्वाला सहाय, हिस्ट्री ऑफ भरतपुर, पृ० १; श्यामलदास, वीर विनोद, जिल्द III, पृ० १६३५

२. जी० बी० मैलिसन, दि नेटिव स्टेट्स ऑफ इण्डिया, पृ० ९७

पेशावर, बलूचिस्तान और सुलेमान पहाड़ी के पश्चिम तक बिखरी हुई थीं।[1] विस्तार की दृष्टि से १८वीं सदी में जाटों के चार प्रमुख क्षेत्र थे—

१. पंजाब, जहाँ प्रत्येक दृष्टि से जाट वहाँ की प्रधान जाति रही है। रोज़ के शब्दों में : "व्यापक रूप से रावी नदी के पश्चिम में पंजाब के जाट मुसलमान हैं, मध्य पंजाब में ये सिक्ख हैं और दक्षिण-पूर्व में ये हिन्दू हैं।"[2]

२. उत्तर प्रदेश के उत्तरी और पश्चिमी ज़िलों में अर्थात् ऊपरी यमुना घाटी में जिसमें मेरठ, सहारनपुर, मुज़फ्फरनगर, बुलन्दशहर एवं अलीगढ़ के क्षेत्र मुख्य हैं। दिल्ली के दक्षिण में यमुना के किनारे-किनारे मथुरा व आगरा के जाट बाहुल्य इलाके आते हैं।

३. आगरा के पश्चिम में भरतपुर का प्रदेश, और

४. आगरा के दक्षिण में चम्बल तक और उसके पार ग्वालियर तक का प्रदेश।[3]

इस तीसरे प्रदेश में हिन्दुस्तान के प्रथम जाट राज्य की स्थापना हुई। यह प्रदेश सुविख्यात ब्रज मण्डल का ही एक हिस्सा है। प्राचीन समय में यह शूरसेन जनपद एवं मत्स्य देश के साथ विभाजित था।[4] राजपूताना, मेवात एवं ब्रज से सटे इस इलाक़े को जाटों के राजनैतिक उत्थान के पश्चात् जाट बाहुल्य क्षेत्र होने के कारण 'जटवाड़ा' भी कहा जाने लगा।[5] चौरस धरातल होते हुए भी इस राज्य के दक्षिण में विशाल पर्वत श्रेणियाँ हैं। उत्तर व पश्चिम में भी पहाड़ियाँ मिलती हैं। राज्य का दक्षिणी भाग जो पहाड़ी है, घाटियों से अधिक भरा हुआ होने के कारण डांग कहलाता है।[6] राज्य की राजधानी निम्न सतह की भूमि पर स्थित है। इस

---

१. ए० एच० कीन (सम्पा० रिचार्ड टेम्पिल), 'एशिया', पृ० २१०, २१८

२. ए० एच० रोज़, ए ग्लॉसरि ऑफ ट्राइब्ज एण्ड कास्ट्स ऑफ दि पंजाब, जिल्द II, पृ० ३६६-६६

३. जदुनाथ सरकार, मुग़ल साम्राज्य का पतन (हिन्दी अनु०), जिल्द II, पृ० २६०-६१

४. कनिंघम, आर्कियालाजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया, १८८२-८३ ई०, जिल्द XX, पृ० २

५. सूर्यमल्ल मिश्रण, वंश भास्कर, पृ० २८८६, २६१६; सिलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर, जिल्द XXVII, पत्र ७६

६. ज्वाला सहाय, पृ० १

भूखण्ड को काठेड़ कहा जाता था।[१] भरतपुर क्षेत्र की प्रमुख नदियाँ वाणगंगा, गम्भीर, काकुन्द व रुपारेल हैं जो सभी बरसाती हैं। यहाँ की मिट्टी व्यवसायी एवं उपजाऊ है, इसलिए कृषि उत्पादन प्रमुख रहा है।

अठारहवीं शताब्दी में भरतपुर के जाट भौगोलिक दृष्टि से पश्चिम में राजपूत राज्यों, उत्तर में मुग़ल राजधानी दिल्ली और दक्षिण में मराठों से वाधित होने के कारण आगरा व मथुरा तथा यमुना के पूर्व में ही फैल सकते थे, और जब भरतपुर के शासकों ने जाटों को संगठित करने की दिशा में प्रयत्न किए तो व्रज के अधिकांश कृषक जाट उनके झण्डे के नीचे एकत्र हो गए। चूँकि जाट क्षेत्र आगरा एवं दिल्ली के दो शाही नगरों के निकट था, अतः यह स्वाभाविक था कि भरतपुर का इतिहास दिल्ली की घटनाओं से प्रभावित रहता।

जाटों की चारित्रिक एवं सामाजिक विशेषताएं

इतिहास में जाट परिश्रमी कृषक और निर्भीक लड़ाकू के रूप में काफ़ी परिचित रहे हैं।[२] जाट मुख्यतः कृषक हैं, यही कारण है कि इस प्रजाति ने सिन्ध, पंजाब, राजपूताना और गंगा के दोआब के पश्चिमी हिस्से में कृषि-वर्ग के आधार स्तम्भ का निर्माण किया।[3] मज़बूत वर्गीय गठबन्धन तथा शासन के अपने प्रजातान्त्रिक विचारों की अटूट परम्परा के साथ, ज्येष्ठ भ्राता की विधवा के साथ विवाह का रिवाज और नियोग की मान्यता जाटों की कुछ ऐसी सामाजिक विशेषताएँ हैं, जो उन्हें हिन्दुओं की किसी भी उच्च जाति की अपेक्षा वैदिक आर्यों के सच्चे प्रतिनिधि होने के दावे को मान्य ठहराती हैं। इरविन के अनुसार, 'जाट अपने गाँवों की सरकार में राजपूतों की अपेक्षा अधिक प्रजातान्त्रिक लगते हैं। वंशानुगत अधिकार के प्रति उनका लगाव कम है और चुने हुए मुखिया को वे प्राथमिकता देते हैं।"[४]

---

१. एम० एफ० ओडायर, असेसमेन्ट रिपोर्ट ऑफ भरतपुर स्टेट, १८९८-९९ ई०, जिल्द II, पृ० २; जेम्स टॉड ने पाँचवीं शताब्दी के एक अभिलेख का उल्लेख किया है, जिसमें काठेड़ के जाट का प्रसंग आया है, जो सम्भवतः इसी भूखण्ड के लिए प्रयुक्त हुआ हो, देखें, एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द I, पृ० १२८, पा० टि० १

२. कानूनगो, हिस्टारिकल एसेज, पृ० ४५

३. वही, हिस्ट्री ऑफ जाट्स, पृ० २

४, विलियम इरविन, लेटर मुग़ल्स, जिल्द I, पृ. ८३

वास्तव में जाट एक साहसी कृषक वर्ग है, जो हल चलाने एवं तलवार चलाने में समान रूप से गर्व का अनुभव करता है। दूसरों की अपेक्षा जाट अधिक ईमानदार, अधिक परिश्रमी और अधिक शक्तिशाली होता है। ये लोग व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर बड़ा बल देते हैं। यदि जाट को कोई न छेड़े तो वह शान्ति के साथ खेती करता है और भूमिकर देता रहता है। किन्तु जब वह ग़लत मार्ग पर चलने लगता है, तब फिर कुछ भी कर बैठता है।[1] परन्तु उसे अन्याय का प्रतिकार करते हुए झगड़ा करना अधिक अच्छा लगता है। गाँव वालों को हम मुख्यत: तीन जातियों में विभक्त कर सकते हैं—राजपूत जमींदार, जाट कृषक और गूजर पशु पालक।

सामाजिक दृष्टि से जाटों का पद निश्चय ही राजपूतों के बाद रहा है। शारीरिक बनावट एवं नस्ल सम्बन्धी समानताओं के बावजूद सामाजिक मान्यताओं के कारण वह राजपूतों से काफ़ी भिन्न हो गया है। जहाँ तक सामाजिक शुद्धता का प्रश्न है, जाट गूजर एवं अहीर के बराबर हैं, फिर भी उनसे ऊपर, क्योंकि वे चरवाहा और घुमक्कड़ है, जबकि वह स्थायी कृषक है। किन्तु पंजाब में जाट हर प्रकार से अन्य प्रान्तों की प्रमुख कृषक जातियों की तुलना में उच्च प्रतिष्ठा रखता है।[2] विधवा विवाह मान्यता वाली जातियों में वह प्रथम है। जाट निरपवाद रूप से ज्येष्ठ भ्राता की विधवा से विवाह करते हैं। वैदिक काल में यह प्रथा शुद्ध आर्यो के तीन उच्च वर्णो में पाई जाती थी।[3] रसेल के अनुसार जाट, "कुलीनतन्त्र, जिसमें ब्राह्मण, राजपूत, खत्री जो राजपूतों में से निकले हैं, तथा बनिये को छोड़कर उच्चतम जाति है"।[4] कानूनगो के अनुसार शारीरिक विशेषताओं, भाषा, चरित्र, विचारों, सरकार के आदर्शो और सामाजिक संस्थाओं में वर्तमान काल के जाट असंदिग्ध रूप से हिन्दुओं की तीन उच्च जातियों के किसी सदस्य की अपेक्षा वैदिक आर्यो के श्रेष्ठतम प्रतिनिधि हैं।[5]

चारित्रिक दृष्टि से जाट कठोर, अकल्पनाशील, भावुकता से परे व्यवहारिक एवं तात्कालिक बुद्धि के साथ हठीला और दृढ़निश्चयी है। ठोस तथ्यों के अभाव में केवल शब्दों से उसे कठिनाई से ही समझाया जा सकता है। जैसा कि इब्बेट्सन ने

---

१. एटकिन्सन, गज़ेटियर नॉर्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज़ ऑफ इण्डिया, जिल्द IV, भाग I
२. आर० वी० रसेल, ट्राइब्ज एण्ड कास्ट्स ऑफ दि सेन्ट्रल प्राविन्सेज़ ऑफ इण्डिया जिल्द III, पृ० २३२
३. ए० ए० मेकडानल, हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० १२६
४. रसेल, जिल्द III, पृ० २३१
५. कानूनगो, जाट पृ० ५

उल्लेख किया, प्रबल स्वतंत्रता और धैर्यशील कठोर श्रम उसके अच्छे गुण हैं। किन्तु साथ ही वह झगड़ालू भी है। जाट चरित्र की अन्य विशेषता उसका कठोर व्यक्तिवाद है। "पंजाब की सभी जातियों में जाट, जातीय अथवा सामुदायिक नियन्त्रण के प्रति सर्वाधिक अधैर्यवान् है और जो व्यक्ति की स्वतंत्रता की सर्वाधिक दृढ़ता से रक्षा करता है,..................वह स्वतंत्र है और वह हठधर्मी है, किन्तु वह उचित है।"[1] भिन्न मत और सम्प्रदाय के बावजूद जाट आखिर एक जाट ही होता है। चाहे वह हिन्दू, सिक्ख या मुसलमान हो, वह सगोत्रीय परम्परा के साथ अपने जातीय नाम से कट्टरता के साथ चिपका रहता है। प्रतिद्वन्दी के साथ संघर्ष में उसका जातीय गठबंधन काफ़ी मज़बूत रहता है।

इस प्रकार जाट परिश्रमी किसान, और उत्कट योद्धा के रूप में एक गतिशील प्रजाति रही है, जिसने अपनी मज़बूत शारीरिक बनावट एवं जन्मजात स्वातन्त्र्य प्रेम के साथ मिलकर सत्रहवीं शताब्दी में एक ऐसे प्रभावशाली आन्दोलन को जन्म दिया, जो पहले तो राजस्व देने वाले कृषकों से राहदारी लूटमार करने वालों के रूप में और बाद में राजनीतिक शक्ति के रूप में परिवर्तित हो गया।

जाटों की उत्पत्ति सम्बन्धी विभिन्न मत

राजपूतों की ही तरह जाटों की उत्पत्ति भी अत्यधिक विवादग्रस्त विषय है। अपनी सामरिक प्रकृति और भारतीय इतिहास में क्रमबद्ध तथा स्पष्ट उल्लेख के अभाव से उत्पन्न उत्पत्ति सम्बन्धी भ्रामक परम्पराओं ने विद्वानों, विशेषकर यूरोपियन विद्वानों की पटुता को काफ़ी लुभाया। जिन्होंने अपना कार्य स्पष्टतया इस परिकल्पना के साथ प्रारम्भ किया कि राजपूत और जाट जैसी श्रेष्ठ एवं उत्साही युद्धप्रिय जातियाँ निश्चय ही अपेक्षाकृत उत्तर-पश्चिम से भारत में आने वाली नवीन जातियाँ ही रही होंगी। और उन्होंने वैदिक आर्यों के जीर्ण वंशजों पर नियन्त्रण पाकर उन्हें पूर्व तथा दक्षिण की तरफ़ धकेल दिया होगा, क्योंकि सिकन्दर से अहमदशाह दुर्रानी तक के ज्ञात ऐतिहासिक युग में विदेशी आप्रवासियों ने निरपवाद रूप से इस क्षेत्र के लोगों पर अपना शासन लादा था। इसके अलावा यह एक सुविदित तथ्य है कि अनेक विदेशी जातियाँ, जैसे शक, कुषाण, हूण आदि मध्य एशिया से १०० ई० पूर्व से लेकर ६०० ई० सन् के बीच सफलतापूर्वक भारत में प्रविष्ट हुई और वे हिन्दू समाज द्वारा आत्मसात् कर ली गई।

---

१. रोज़, पंजाब ग्लॉसरि, जिल्द II, पृ० ३६६;
इब्बेटसन, पंजाब कास्ट्स, पृ० २२१

जेम्स टॉड के इस मत का, कि जाट इण्डो-सीथियन कुल के हैं; जो ईसा से एक सदी पूर्व अपने निवास स्थान ऑक्सस घाटी से पंजाब में प्रविष्ट हो गए थे, कनिंघम [1], इब्बेटसन [2], विंसेन्ट स्मिथ [3] आदि विद्वान समर्थन करते हैं। अन्य विद्वान इलियट [4]; जैकसन [5] व कैम्पबेल [6] इनको कुषाण अथवा युह-ची जाति से सम्बद्ध करते हैं। डा० ट्रम्प तथा बीम्स ने शारीरिक तथा भाषा दोनों दृष्टि से जाटों के शुद्ध इण्डो-आर्यन वंशज होने का दावा किया। [7] किन्तु अनेक विद्वानों ने उनके दावे को यह कहकर नकार दिया कि "भाषा नस्ल की जाँच नहीं है। मिलर के अनुसार जाटों को सीथियन प्रमाणित करने में अभी काफ़ी शोध करने की आवश्यकता है, जबकि आकृति विज्ञान को महत्व दिया जाय तो उनकी आर्य उत्पत्ति पर कोई सन्देह नहीं कर सकता। [8] नेसफील्ड के अनुसार जाट शब्द यदु या जदु का ही आधुनिक हिन्दी उच्चारण है, जिसे आधुनिक जादव राजपूतों के रूप में देखा जा सकता है। [9] कानूनगो के अनुसार जब तक हम महाभारत में उल्लिखित जातृका एवं माद्रका (अध्याय, VIII, श्लोक २०३२,२०३४) की पहचान जाट के साथ स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हो जाते, जैसा कि प्रमुख विद्वान ग्रियर्सन और जेम्स कैम्पबेल ने सुझाव दिया है, तब तक हमें प्राचीन संस्कृत साहित्य में कहीं जाटों का उल्लेख नहीं मिलता है। [10]

इण्डो—सीथियन मत

इस मत का प्रतिपादक जेम्स टॉड भारतीय जाटों की पहचान मध्य एशिया के गेटे से करते हुए लिखता है, "युह-ची जिहुन (ऑक्सस) के साथ-साथ बेक्ट्रिया में स्थापित हो गए थे और प्रकारान्तर से जेता या येतान नाम धारण कर लिया जिसे गेटे कहते हैं, यूनानियों ने इन्हें ही इण्डो-सीथियन कहा है।" [11]

---

१. कनिंघम, हिस्ट्री ऑफ दि सिख्स, पृ० ५
२. इब्बेटसन, पंजाब कास्ट्स, पृ० २२०
३. जरनल ऑफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, १८९९ ई०, पृ० ५३४
४. इलियट, मेमॉयर्स ऑफ दि रेसेज़, जिल्द I, पृ० १३५
५. गज़ेटियर ऑफ दि बम्बई प्रेसीडेन्सी, जिल्द I, भाग I, पृ० २
६. वही, जिल्द IX, भाग I, पृ० ४६१
७. इलियट, मेमॉयर्स ऑफ दि रेसेज़ जिल्द I, १३५-३७
८. डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर ऑफ मुज़फ्फ़रनगर, १९२० ई०, पृ० ७९
९. एम०सी०प्रधान, दि पोलिटिकल सिस्टम ऑफ दि जाट्स ऑफ नॉदर्न इण्डिया, पृ० ३
१०. कानूनगो, हिस्टारिकल एसेज, पृ० ४३
११. विस्तृत विवेचन के लिए देखें, टॉड, जिल्द I, पृ० ७४-७६;
इलियट, सप्लीमेंट टू दि ग्लॉसरि ऑफ इण्डियन टर्म्स, पृ० ४८५ से ४९१

अपने कथन की पुष्टि में वह डी जिगने की आधिकारिक सूचना का हवाला देता है, जिसमें सिंधु पर सीथियन उत्पत्ति के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है, और यह बताया गया है कि वे हिंदू जातियों में मिश्रित नहीं हुए।[1] ईसा के प्रारम्भिक वर्षों में युह-ची सिंध प्रदेश में आकर बसे, उनका अब भी नाम जीत या जाट है, और अब भी वे सिंधु के दोनों किनारों में काफ़ी संख्या में हैं।[2] कनिंघम इन्हें स्ट्रेबो के जन्थी तथा प्लिनी व टॉल्मी के जती से पहचान करता है, और यह मान्यता रखता है कि वे ईसवी सन् के प्रारम्भ में ऑक्सस के अपने स्थान से पंजाब में प्रविष्ट हुए थे।[3] इस मत का अंतिम विद्वान विंसेन्ट स्मिथ कहता है, "जब छठी सदी के अनेक झुण्ड इण्डो-सीथियन, गूजर एवं हूण जनजातियों के समूह बस गए, तो उनके राजघराने राजपूतों की तरह स्वीकृत हो गए, और जिन्होंने स्वतंत्रतापूर्वक कृषि कार्य अपनाया वे जाट हुए।"[4]

जाटों की गेटिक उत्पत्ति के विरुद्ध जो एकमात्र आपत्ति सामने लाई गई, वह यह है कि उनका नाम भारत के ३६ राजकुलों की सूची में है इसलिए वे शुद्ध हिन्दुओं की श्रेणी में आते हैं। किन्तु टॉड यह कहकर इस तर्क को समाप्त करता है कि यद्यपि उनका नाम सूची में है, तथापि वे कभी भी राजपूत नहीं माने गए, और कोई भी राजपूत उनके साथ विवाह नहीं करता।[5] इसके अलावा जाट एवं राजपूतों की परम्परागत शत्रुता अत्यधिक संदेह पैदा करती है कि ये दोनों भारत में एक ही समय में सहयोगी की तरह प्रविष्ट हुए, जैसा कि इण्डो-सीथियन मत के समर्थक इनका निष्क्रमण क्रम प्रस्तुत करते हुए बतलाते हैं। हर कहीं हम यह पाते हैं कि भूमि पर अधिकार करने वाले प्रारम्भिक जाटों का स्थान नये राजपूत शरणार्थियों ने ले लिया था। मालवा में परमारों ने उन्हें हटा दिया था और तँवरों ने उनसे दिल्ली छीन ली थी। राठौड़ों ने उनसे बीकानेर छीन लिया और भाटियों ने जैसलमेर पर अपना शासन स्थापित किया।[6]

पंजाब के लगभग सभी जाट गोत्रों की परम्परा पूर्व या दक्षिण पूर्वी राजपूताना एवं केन्द्रीय प्रान्तों को अपने मूल स्थान के रूप में इंगित करती है।[7] लोक परम्परा

---

१. एलफिन्स्टन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० २४९-५०

२. वही, पृ० २४९; इलियट अपने इण्डियन ग्लॉसरि के सप्लीमेंट में यह दावा करते हैं कि सिंधु के जाट और भरतपुर के जाट एक ही उत्पत्ति से हैं, पृ० ४८९

३. कनिंघम, आर्कि० सर्वे०, जिल्द II, पृ० ५१-६१

४. जे० आर० ए० एस०, १८९९ ई०, पृ० ५३४

५. टॉड, जि० I, पृ० १२७

६. कानूनगो, जाट, परिशिष्ट 'अ' पृ० ३२४

७. रोज़, पंजाब ग्लॉसरि, जि० II, पृ० ५६ व ४७२, जि० III, पृ० ५६

की दृष्टि से जाट इण्डो-आर्यन हैं, जो पूर्व से पश्चिम की ओर निष्क्रमित हुए, न कि इण्डो-सीथियन जो कि ऑक्सस घाटी से उतरे थे। निस्संदेह जाटों का एक निश्चित वर्ग भाटियों के साथ भारत के बाहर निष्क्रमित हुआ, और अनेक शताब्दियों के पश्चात ईरान की सीमाओं से होकर सिन्धु के पूर्व में पुनः प्रविष्ट हुआ, किन्तु इसी कारण से वे विदेशी आक्रान्ता नहीं कहे जा सकते।[1] कानूनगो लिखते हैं, अगर केन्द्रीय एशिया के गेटे किसी प्रकार आर्यन जदु या जाट हो सकते हैं, तो विपरीत क्रिया से भारतीय जदु भी केन्द्रीय एशिया के गेटे के रूप में विकृत हो सकते हैं।"[2]

नृवंशीय व्याख्या

हरवर्ट रिज़ले ने शारीरिक बनावट की दृष्टि से भारतीय लोगों को सात मुख्य समूहों में विभक्त किया है। इनमें द्वितीय इण्डो-आर्यन शैली है, जो पंजाब, राजपूताना व कश्मीर में है, और राजपूत खत्री तथा जाट इसके चारित्रिक सदस्य हैं। यह वर्ग परम्परागत भारतीय उपनिवेशिक आर्यों के अत्यधिक निकट है।[3] वर्तमान में पंजाब व राजपूताना में इनका अस्तित्व एक निश्चित शारीरिक बनावट लिए हुए है, जिनका प्रतिनिधित्व जाट व राजपूत करते हैं। इनकी विशेषता अपेक्षाकृत लम्बा सिर, सुन्दर सपाट नाक, लम्बा सुडौल संकीर्ण चेहरा, पूर्ण विकसित ललाट, चेहरे का ऊँचा कोण, ऊँचा कद एवं आकृति की सामान्य बनावट है। पूरे समूह में चमड़ी का प्रभावी रंग हलका साफ़ भूरा है।[4]

रिज़ले आगे लिखते हैं कि सीथियन मत का आधार फिल्मी सादृश्यता तथा सन्दिग्ध धारणा है, जिसमें जाटों की पहचान हेरोडोटस के गेटे के साथ की गई है। इस तथ्य से अलग, कि नामों की साम्यता अधिकतर भ्रान्ति पैदा करती है (उदाहरणतः इन गेटे की रोमन पहचान गोथ के साथ की जाती है), हमारे पास यह विश्वास करने के अच्छे ऐतिहासिक कारण हैं कि भारत में आने वाले सीथियन आक्रमणकारी ऐसे क्षेत्र से आए थे जो बड़े सिर वाले नस्ल के व्यक्तियों द्वारा अधिकृत था और निश्चय ही वे स्वयं इसी श्रेणी से संबंधित रहे होंगे। सभी विवरणों से वे लोग घुड़सवारों के झुण्ड, विशाल चेहरा, गाल की ऊंची उठी हड्डियाँ, छोटे व मजबूत कद के और धनुष के प्रयोग में प्रवीण थे। मध्य एशियाई घास के मैदानों के अपने मूल स्थान में उनके जीवन का तरीक़ा खानाबदोश पशु-चरवाही का था और उनकी नैसर्गिक प्रवृत्ति लूटमार की थी। इसलिए प्रत्यक्षतः यह असम्भावित लगता है कि

---

१. कानूनगो, जाट, परिशिष्ट 'अ' पृ० ३२४

२. वही, पृ० ३२७

३. हरवर्ट रिज़ले, दि पीपुल ऑफ इण्डिया, पृ० ३३

४. वही, पृ० ४६

उनके वंशज ऐसे कबीले में देखे जायें जो आवश्यक रूप से लम्बे सिर वाले, घुड़सवार की स्वाभाविक इच्छा के विपरीत लम्बे एवं भारी व्यक्ति है और जो भूत में खानाबदोश तथा लुटेरी परम्परा के बिना कृषक के रूप में बस गए थे। ये ऐसे विरोधाभास हैं जो सीथियन की जाट व राजपूतों के साथ पहचात में बाधक है।[1]

इब्बेटसन के अनुसार मूलत: जाट व राजपूत भारत में दो पृथक आव्रजक लहरों का प्रतिनिधित्व करते है, और उनकी भिन्नता नृवंश की अपेक्षा सामाजिक है। रसेल लिखते हैं कि अगर इब्बेटसन का विवरण स्वीकार कर लिया जाय तो जाट निश्चय ही आक्रमणकारी लोगों का मुख्य दल रहा है, चाहे वे आर्य हों या सीथियन, जिनमें राजपूत नेता थे।[2]

महाभारत कालीन उल्लेख

अधिकांश विद्वानों द्वारा जाट शारीरिक और भाषा की सम्मिलित जाँच द्वारा शुद्ध आर्य घोषित किए गए हैं। जहाँ तक सामाजिक और धार्मिक आचारों का सम्बन्ध है, सभी पर्यवेक्षक सामान्यतया सहमत है कि इन मामलो में जाट आर्य उत्पत्ति की अन्य स्वीकृत हिन्दू जातियों से अधिक भिन्न नही है। किन्तु जाटों की इण्डो-आर्यन उत्पत्ति में प्रमुख बाधा प्राचीन संस्कृत साहित्य में उल्लिखित आर्य कबीलों के साथ निश्चित पहचान का अभाव है।

ऐतिहासिक युग में जाट लोगों के निवास स्थान सिन्ध व पंजाब के विभिन्न कबीलों का वर्णन महाभारत मे आया है। उसमें जार्तृका के नाम से पहचाने जाने वाले लोगों का उल्लेख माद्रका के साथ है। दोनों का चरित्र बहिका (बाहरी या विदेशी) कहा गया है। जेम्स कैम्पबेल और ग्रियर्सन ने इसे सस्कृत साहित्य में जाटों का प्रथम उल्लेख माना है। महाभारत के इस संदर्भ[3] में बहिका जार्तृकों का चरित्र काफी निन्दनीय बताया गया है, जो जाटों के साथ उनकी पहचान में महत्वपूर्ण आपत्ति है। इब्बेटसन के अनुसार उपर्युक्त विवरण मे उल्लिखित प्रदेश स्पष्टत: पंजाब है, और यहाँ के लोग बहिका या जार्तृका जाट लगते है, तथा यह विवरण उस युग का सन्दर्भ प्रकट करता है, जब वे नऐ-नऐ पंजाब में बसे थे और हिन्दू प्रभाव में नहीं आए थे।[4] किन्तु कानूनगो ने इसका खण्डन करते हुए लिखा है कि

---

१. हरबर्ट रिजले, दि पीपुल आफ इण्डिया, पृ० ६०-६१

२. रसेल, जि० III, पृ० २२८-२६०; इब्बेटसन, पंजाब कास्ट्स, पृ० २२०

३. महाभारत, कर्ण पर्व, अध्याय ४४, श्लोक १०

४. रसेल, जि० III, पृ० २२७

केवल जातीय नामों की ध्वनिगत समानता के अलावा प्रस्तावित पहचान का कोई ठोस आधार नहीं है।[1]

जठर और जाट

जिस प्रकार यूरोपियन विद्वानों ने कुछ साहित्यिक उल्लेखों एवं ध्वनिगत समानता पर आधारित विभिन्न काल्पनिक मत प्रकट किए, उसी प्रकार कुछ भारतीय विद्वानों ने भी उत्पत्ति की पौराणिक कथाओं को खोज निकालने का प्रयास किया। एक ऐसे ही मत के अनुसार महादेव की जटा से उत्पन्न होने के कारण ये लोग जाट कहलाए।[2] इसी प्रकार अलीगढ़ के एक जाट संस्कृत विद्वान पं० गिरिवर प्रसाद के लिए अंगद शर्मा द्वारा लिखित 'जठरोत्पत्ति' नामक ग्रन्थ में इस मत की स्थापना की गई है। वह मुख्यतः जाटों के काल्पनिक पूर्वज जठरों पर केन्द्रित ध्वनि की समानता पर निर्भर रहा है। यह सभी प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित जाठर कबीले की एक शृंखला है, जिसकी उत्पत्ति का वर्णन पद्म पुराण में इस प्रकार आता है[3]: "जब भृगु के पुत्र (परशुराम) ने सभी योद्धा वर्ग (क्षत्रिय) को नष्ट कर दिया तो उनकी पुत्रियों ने यह देखकर कि विश्व क्षत्रियों से शून्य हो गया है, पुत्र पाने की इच्छा से ब्राह्मणों को धारण किया और अपने गर्भ (जठर) में पड़े वीज को सर्तकतापूर्वक संजोते हुए क्षत्रिय पुत्रों को पैदा किया जो जाठर कहलाए।"

ग्राउसे के मतानुसार इस कल्पना में कोई बड़ी असम्भावना नहीं है कि जाठर शब्द जाट में घटा दिया गया हो, किन्तु यह अत्यधिक विचित्र है कि ऐसा तथ्य पहले कभी उल्लिखित नहीं किया गया।[4] शास्त्री के मत का सटीक उत्तर देते हुए कानूनगो लिखते हैं, 'ध्वनि-साम्यता के अलावा जाट व जाठर को जोड़ने का कोई भी सूत्र या परम्परा नहीं है। इसके अलावा जाठर अगर पूर्णतः विलुप्त लोग रहे होते तो कोई भी इस दावे की विसंगति की ओर से आँखें मूँद लेता, किन्तु वे अब भी जाटों के साथ विना किसी सम्पर्क का दावा करते हुए दक्षिण भारत में उपस्थित हैं।[5]

---

१. कानूनगो, जाट, पृ० १३

२. इलियट, सप्लीमेन्ट ग्लॉसरि, पृ० ४८८

३. क्षत्रशून्ये पुरालोके भार्गवेन यदाकृते।
विलोक्याक्षत्रियां धात्रीं कन्यास्तेषां सहस्रशः॥
ब्राह्मणान् जगृहुस्तस्मिन् पुत्रोतपादन लिप्सया।
जठरे धारितं गर्भ सरंक्ष्य विधिवत पुरा।
पुत्रान सुषुविरे कन्या जाठरान क्षत्रवंशजान॥

४. एफ० एस० ग्राउसे, मथुरा ए डिस्ट्रिक्ट मेमॉयर, भा० । पृ० २१–२२

५. कानूनगो, जाट, पृ० १७

जाटों की यादव उत्पत्ति

जाटों की परम्परा सिन्धु के पश्चिम क्षेत्र में अपना उद्‌गम [१] और अपने को यदुवंशी मानती है। पाँचवी शताब्दी का एक अभिलेख उनके ३६ राजकुलों में होने और उनके यदुवंशी होने के दावे को सुदृढ़ करता है। [२] यद्यपि ध्वनिगत कठिनाई जाटों की यादव उत्पत्ति के रास्ते में भी है, तथापि इसका निराकरण जाटों की पहचान हैहय यादवों की एक शाखा जात के साथ करने से हो जाता है। [३] यद्यपि इसमें भी एक कठिनाई यह है कि हैहयों का निवास दक्षिण में नर्मदा के किनारे था, जबकि जाट सदा से पश्चिमी भारत के निवासी रहे हैं।

यदुवंशी निश्चय ही श्री कृष्ण के वंशज होने का दावा करते हैं, जिनके बारे में महाभारत व पुराणों में विस्तृत जानकारी मिलती हैं। ऋग्वैदिक काल में यदु सप्तसिंधु भूमि में रहते थे और साहसी प्रवृत्तियाँ तथा असनातनी विश्वास उनकी विशेषताऐं थीं। इस कबीले की किंवदन्ती के अनुसार यदु राजा ययाति का ज्येष्ठ पुत्र था। [४] ११ वीं सदी में अलबेरुनी श्रीकृष्ण के बारे में लिखता है, "तब मथुरा शहर में शासक कंस की बहन से वासुदेव के यहाँ एक बच्चे का जन्म हुआ। वे जट्ट परिवार, पशुपालक, निम्न शूद्र लोग थे।" [५]

प्राचीन यादवो की आधुनिक जाटों के साथ तुलना में हमें कबीलीय स्थिति की एक समान विशेपता दृष्टिगोचर होती है। जिस प्रकार यदु की संतति की बहुप्रजा अण्डक, भोज, कुकुर, दर्शणा आदि विभिन्न कबीलों की सम्बद्धता द्वारा मिश्रित यादव जाति उभरती है, वैसे ही जाटों में भी सिनसिनवार, सोगर, खूंटेल, तेनवा, देशवाल आदि विभिन्न गोत्रों की उत्पत्ति की पृथक परम्पराएँ हैं, जो मिलकर जाट जाति को एकरूपता प्रदान करती है। जैसे डेरा गाजीखान के बाब्बर भी अपने को जाट कहते हैं, [६] जो स्पष्ट रूप से यदु वंश से सम्बद्ध बाहरी प्रदेश के लोग थे। [७] इसका समर्थन भागवत पुराण के एक उद्धरण से होता है, जिसमें कहा गया है कि

---

१. वाल्टर हेमिल्टन, दि ईस्ट-इण्डिया गजेटियर, जि० I, पृ० २३३

२. टॉड, जि० I, पृ० १२७-२८

३. विष्णु पुराण से पता चलता है कि विख्यात कार्त्तवीर्य अर्जुन के सौ पुत्रों में से एक जयध्वज था। उससे हैहय वंशियों की पाँच बड़ी शाखाएँ प्रचलित हुई, जिनमें से एक का नाम जात या सुजात था।
विष्णु पुराण, अंग्रेजी अनु० एच० एच० विलसन, पृ० ३३५, पा० टि० २०

४. आर० पी० चन्दा, इण्डो-आर्यन रेसेज़, पृ० १६

५. अलबेरूनी का भारत (हिन्दी अनु०), पृ० २८७

६. गजेटियर ऑफ दि डेरा गाजीखान डिस्ट्रिक्ट (१८८३–८७ ई०), पृ० ५८

७. रोज़, पंजाब ग्लॉसरि, जि० II, पृ० ५६, ४७२

राजा सागर ने हैहयों का नाश करने के वाद शक, यवन और वारवरों के विरुद्ध शस्त्र उठाए, जो हैहयों के मित्र रूप में उसके पूर्वजों के विरुद्ध लड़े थे।[1]

एक अन्य मान्यता के अनुसार परशुराम के फरसे से वचने के लिए यदु वंश के अनेक लोगों ने भी पहाड़ों में शरण ली अथवा निम्न जातियों के वीच अपने को छिपा लिया था। विना उचित संस्कार के वे शूद्रों की तरह विकसित हुए और वाद में ऋषि कश्यप ने उनका उद्धार करके उन्हें क्षत्रिय पद पर पुनः प्रतिष्ठित किया। यह सम्भवतः क्षत्रिय वर्ग का प्रथम निर्माण था, जैसा कि वाद के युग में अग्निकुल का हुआ। इसी कारण कश्यप गोत्री जाट राजपूत रक्त के दावे के साथ, अपने संरक्षक संत के प्रति अच्छी सेवाओं के लिए, प्राचीन यादवों के साथ अपना सम्वन्ध जोड़ते हैं।[2]

यदि ये लोग मूलतः यदु थे तो इन्होंने जाट नाम कव और क्यों धारण किया, इसकी प्रामाणिक व्याख्या ठीक उसी प्रकार से नहीं की जा सकती, जिस प्रकार से क्षत्रियों के राजपूत कहलाने के वारे में स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता। टॉड ने इसका एक कारण यह वताया है कि यदु वंश की शाखाओं ने जाटों के साथ अन्तर्विवाह किया, उस कारण उनका सामाजिक दर्जा घट गया, और उनकी मिश्रित संतान ने माता का नाम ग्रहण कर लिया होगा।[3]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जव भाषायी या नृवशीय आधार पर जाटों की इण्डो-आर्यन उत्पत्ति को चुनौती नहीं दी जा सकती तव उनकी यदु वंशी परम्परा[4] की विवेक संगत मान्यता को इस आधार पर स्वीकार किया जा सकता है कि इसमें कालक्रमानुसार वाहरी जातियाँ भी शामिल हो गई होंगी। भारतीय

---

१. भागवत पुराण, नवम स्कन्ध, अध्याय VIII, श्लोक ५

२. कानूनगो, जाट, पृ० २२

३. टॉड, जि० I, पृ० १२६ पा० टि० २

४. लगभग सभी प्रारम्भिक जाट शासकों के वंश वर्णन का उल्लेख करते हुए समकालीन कवि उन्हें यदुवंशी वतलाते हैं, देखें, कवि सूदन, सुजान चरित्र, पृ० ४, कवि सोमनाथ, सुजान विलास (पा० लि०), पृ० १३३ व, कवि उदयराम सुजान संवत् में लिखता है—

तीन जाति जादवन की, अंधक विस्नी, भोज।
तीन भाँति तेई भये, ते फिर तिनहो पेज॥
पूर्व जन्म ते जादव विस्नी, तेई प्रकटे आइ सिनसिनी॥

देखें, मोतीलाल गुप्त, मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन, पृ० २१५

इतिहास में वर्ण व्यवस्था के विघटन एवं नए वर्गो के उदय और उत्तर-पश्चिमी सीमान्त से प्रविष्ट होने वाली विदेशी जातियों की विभिन्न लहरों[1] को देखते हुए जातीय मिश्रण की ऐसी सम्भावनाओं को निर्मूल नहीं कहा जा सकता।

भरतपुर का शासक परिवार

भूतपूर्व भरतपुर राज्य के शासक मूलतः अपने को श्रीकृष्ण के वंशज एवं यादव (यदुवंशी) क्षत्रिय मानते हैं। करौली व भरतपुर दोनों के शासकीय घराने सिन्दपाल को अपना संयुक्त पूर्वज मानते है। सिन्दपाल से १२वें क्रम में तहनपाल के अनेक पुत्र थे, जिनमें से ज्येष्ठ धर्मपाल से करौली और उसके तीसरे पुत्र मदनपाल से भरतपुर के परिवार निकले हैं। यदुवंशी कृष्ण के पौराणिक उल्लेखों के बाद कुछ-कुछ वास्तविक इतिहास धर्मपाल से शुरू होता है, जो तिथिक्रमकों की सूची के अनुसार कृष्ण के ७७वें वंशज थे। उसकी सम्भावित तिथि ८०० ई० है। कहा जाता है कि वह और उसके उत्तराधिकारी बयाना में रहे थे।[2]

भरतपुर परिवार मदनपाल के वंशज बालचन्द से अपनी उत्पत्ति बतलाता है, जो सिन्दपाल से १९वाँ उत्तराधिकारी था। बालचन्द से सम्बन्धित कहानी इस प्रकार है—एक दिन बालचन्द अपनी परम्परानुसार लूटपाट के लिए गया। मार्ग में वह हिण्डौन के एक डोगर वंशी जाट से मिला। यह जाट होडल से अपनी पत्नी को गाँव ले जा रहा था। बालचन्द ने जाट व उसकी पत्नी दोनों को बन्दी बना लिया और उन्हें अपने गाँव सिनसिनी ले गया। बालचन्द के अपनी पत्नी से कोई सन्तान नहीं थी, इसलिए उसने इस जाट औरत को अपनी रखेल बना लिया, जिससे बिज्जी और सिज्जी दो पुत्र हुए। इन्हें राजपूत समाज से बहिष्कृत कर दिया गया और जाट माना जाने लगा। अपना स्वयं का कोई गोत्र न होने के कारण उन्होंने अपने पैतृक गाँव सिनसिनी से सिनसिनवार नाम धारण किया और उनके वंशज प्रसिद्ध सिनसिनवार जाट कहलाए। बालचन्द के जाट वंशजों में सर्वप्रथम ख्याति प्राप्त करने वाला ऐतिहासिक व्यक्ति सिनसिनी के जमीदार खानचन्द का पुत्र बृज था।[3]

---

१. ए० एच० बिंगले, जाट्स एण्ड गूजर, पृ० ९
२. ग्रोकमेन, पृ० २९; ज्वाला सहाय, पृ० २५; इस वंश क्रम की सूची के लिए देखें, आर्कि० सर्वे०, जि० XX, पृ० ६ (१८८२-८३ ई०)
३. ग्रोकमेन, पृ० २९; ज्वालासहाय, पृ० २५; औडायर, फाइनल रिपोर्ट, (१९००-१९०१ ई०), पृ० २६; अर्सकिन, इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, प्राविन्सियल सिरीज़ : राजपूताना, १९०८ ई०, पृ० ३२२; सी० यू० एटचीसन, ए कलेक्शन ऑफ ट्रीटीज, इंगेजमेन्ट्स एण्ड सनद्स, जि० III, पृ० १७५; बृज के पूर्वजों के वंशानुक्रम के लिए देखें, सुजान चरित्र, पृ० ४-५ और रामकवि का छन्दसार (मत्स्य की देन, पृ० ७७)

अध्याय–२

जाट शक्ति का उदय

जाट शक्ति का उदय

प्रारम्भिक इतिहास

ऐतिहासिक दृष्टि से ७वीं तथा ११वीं शताब्दी में मुस्लिम इतिहासकारों के वृत्तान्तों में हम सर्वप्रथम जाटों के विषय में सुनते हैं। सातवीं शताब्दी में सिन्ध में जाटों को ब्राह्मण वंश द्वारा शासित पाते हैं।[1] पेशे की दृष्टि से जाट इस क्षेत्र में मुख्यतः कृषक ही थे, यद्यपि सैनिक क्षेत्र में भी वे अग्रणी थे। १०२५ ई० में सोमनाथ से लौटती हुई गजनी के सुल्तान महमूद की सेना पर जाटों का साहसिक आक्रमण सर्वविदित है, जिन्हें दण्डित करने के लिए उसे भारत पर एक और आक्रमण करना पड़ा था।[2] ११९२ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक को जटवान के शक्तिशाली विद्रोह का सामना करना पड़ा, जो सम्भवतः हरियानवी जाटों का जातीय स्तर पर प्रथम संगठित विद्रोह था।[3] बलबन के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में शेर खाँ को हम भटनेर के आसपास जाटों का दमन करते हुए पाते हैं। मुहम्मद बिन तुग़लक को भी इस क्षेत्र में जाटों के विरुद्ध प्रयाण करना पड़ा था।[4] तैमूर ने जब पंजाब पर आक्रमण किया तो उसे भी जाटों का सामना करना पड़ा था।

मुग़ल सम्राट बाबर जाटों को नीलाम और भेरा की पहाड़ियों के बीच निवास करते पाता है, जहाँ वे गक्खर सरदारों के प्रभुत्व में थे। सियालकोट के बाबर के शिविर के निकट जब इन लोगों ने उद्दण्डता प्रदर्शित की, तो बाबर ने उन्हें कठोर दण्ड दिया था।[5] बाबर की मृत्यु के बाद के अस्थिर युग में कोट कबुलाह

---

१. चचनामा, इलियट द्वारा उद्धृत भारत का इतिहास (हिन्दी), जि० I, पृ० १३५
२. इस अभियान के विस्तृत विवरण के लिए देखें, निज़ामुद्दीन अहमद की तबकात-ए-अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद), जि० I पृ० १९
३. ताजुल-मआसीर, इलियट, जि० II, पृ० १५९
४. बरनी की तारीख़-ए-फीरोज़शाही, इलियट, जि० III, पृ० ७३ व १७४
५. तुज़ुक-ए-बाबरी, इलियट, जि० IV, पृ० १७७ व १८२

(मुल्तान के समीपवर्ती) के एक साहसी डकैत सरदार फ़तह खान जाट ने लाखी जंगल (रावी-सतलज का मध्यवर्ती क्षेत्र) के सारे इलाके पर अपना अधिकार कर लिया और लाहौर से पानीपत के राजमार्ग को लूटमार एवं उपद्रव द्वारा जामन में रखा। शेरशाह ने १५४३ ई० में पंजाब के गर्वनर हैबत खान नियाज़ी को इस विप्लव को दबाने के लिए भेजा, जो अनेक अभियानों के बाद उसे समाप्त करने में सफल रहा।[1]

औरंगज़ेब के शासन काल में जाट विद्रोह

लगभग एक शताब्दी की सम्मोहक शान्ति के बाद औरंगज़ेब के शासन काल में मुस्लिम शासन के विरुद्ध जाटों का संगठित विद्रोह, जो धार्मिक असहिष्णुता और भूमि सम्बन्धी अभियानों के विरोध के रूप में शुरू हुआ था, एक अलग घटना नहीं थी। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में औरंगज़ेब की धर्मनिष्ठ गतिविधियों और प्रशासनिक उत्पीड़न के अभद्र तरीक़ों से विचलित हिन्दू भारत ने करवट बदली। अनजाने में ही यह सम्राट हिन्दू राष्ट्रवाद के पुनरुत्थान का कारण बना। दूर महाराष्ट्र में जिस नये जीवन का स्पंदन हुआ, उसने उत्तर की तरफ़ बढ़कर हिंदू समाज के गतिहीन अंगों में संचार फूंक दिया। सशक्त जाट विद्रोह भी पहले से चला आ रहा एक प्रभावशाली आन्दोलन था, जो पहले तो राजस्व देने वाले कृषकों से राहदारी व लूटमार करने वालों के रूप में और बाद में राजनीतिक शक्ति के रूप में परिवर्तित हो गया था।

मथुरा व आगरा का कृषक-विद्रोह

निस्सन्देह मथुरा व आगरा के किसान इस युग में बदनाम करदाता रहे थे और प्राय: बल प्रयोग द्वारा ही उनसे राजस्व की वसूली होती थी।[2] किन्तु जब राजस्व संग्रहकों और फ़ौजदारों ने अपने प्रदत्त अधिकारों का दुरुपयोग व्यक्तिगत आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए करना शुरू किया, तो उसकी प्रतिक्रिया ने कृषक जाटों के आन्दोलन को शक्ति तथा संगठित होने की प्रेरणा प्रदान की। इस प्रतिकारात्मक आन्दोलन का पहला शिकार शाहजहाँ के समय में मथुरा, महावन और कामां पहाड़ी का फ़ौजदार मुर्शिद कुली खान था, जो अपने दुर्दान्त काश्तकारों के विरुद्ध

---

१. कानूनगो, शेरशाह और उसका समय (हिन्दी अनु०), पृ० ३१२-१५

२. जदुनाथ सरकार, हिस्ट्री ऑफ औरंगज़ेब, जि० III, पृ० २६१; फ़ारुक़ी, औरंगज़ेब एण्ड हिज टाइम्स, पृ० १२५

अभियानों का उपयोग अपनी कामलिप्सा की सन्तुष्टि के लिए करता था।[1] १६३८ ई० में वह जाटों की एक सुदृढ़ वस्ती पर आक्रमण के दौरान गोली लगने से मारा गया था।[2] शाही आदेशानुसार मिर्ज़ा राजा जयसिंह को हम १६३७ ई० में हिण्डौन, १६४७ ई० में महावन और १६५० ई० में कामां, पहाड़ी तथा खोह के विद्रोही किसान जाटों का दमन करते हुए पाते हैं।[3] शाहजहाँ के शासन के अन्तिम वर्षों में उत्तराधिकार युद्ध से उत्पन्न अव्यवस्था से लाभ उठाकर मथुरा, आगरा व अलीगढ़ के किसानों ने अशान्ति फैला दी और मार्गो पर लुटेरों का राज्य हो गया था।[4] ठेनवा जाटों ने अपने मुखिया नन्दराम के नेतृत्व में राजस्व देना बन्द कर दिया, यद्यपि युद्ध समाप्त होते ही १६६० ई० के लगभग उसे सम्राट औरंगज़ेब के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ा।[5] किन्तु इनकी गतिविधियाँ जारी रहीं और जून १६६२ ई० में अलीगढ़ ज़िले में इतनी अशान्ति फैल गई थी कि राजधानी से उनके दमन हेतु सेना भेजी गई।[6]

---

१. इससे सम्बन्धित एक घटना का वर्णन माआसीर-उल-उमरा में इस प्रकार किया गया है "श्री कृष्ण के जन्म-दिवस पर मथुरा के सामने यमुना पार गोवर्धन (गोकुल) में हिन्दू स्त्री-पुरुष एक विशाल मेले में इकट्ठे होते थे। हिन्दुओं की तरह माथे पर तिलक लगाकर और धोती पहनकर ख़ान (मुर्शीद कुली ख़ान) भीड़ में चला जाता था, और जब किसी सुन्दर रमणी को देखता तो उस पर मेमनों के झुण्ड पर झपटने वाले भेड़िए की भाँति झपटता और उन्हें पकड़कर, नाव में बिठाकर, जिसे उसके आदमी यमुना किनारे तैयार रखते थे, आगरा भगा ले जाता था। शर्म के मारे हिन्दू कभी यह प्रकट नहीं करते कि उनकी पुत्रियों के साथ क्या हुआ।" माआसीर-उल-उमरा (हिन्दी अनु०), जि० IV, पृ० ४८६

२. यह युद्ध शाहजहाँ के शासन के ११ वें वर्ष में सम्भल के अन्तर्गत जटवाड़ में हुआ था, मा० उल-उमरा, जि० I, पृ० १२० पा० टि० ४

३. ए डिस्क्रिप्टिव लिस्ट ऑफ फ़रमान, मन्सूर एण्ड निशान, फ़रमान संख्या ३४ (४ जून १६३७) व ५८ (१ जुलाई १६५० ई०)

४. फ्रैंकोइस वर्नियर, ट्रैवल्स इन दि मुग़ल एम्पायर, पृ० ४

५. वी० एस० भार्गव का यह कथन अप्रमाणिक लगता है कि सम्राट ने इस समय नन्दराम को अलीगढ़ का फ़ौजदार नियुक्त कर दिया जो मृत्युपर्यन्त वहीं रहा, क्योंकि लेखक ने जिस स्रोत (मा० आ०, पृ० ५२) का हवाला दिया है, वहाँ पर ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है, देखें, राइज ऑफ दि कच्छावाज इन ढूंढाड़, पृ० १२२

६. सरकार, औरंगज़ेब, जि० III, पृ० २०-२१

संगठित प्रतिरोध का उदय—गोकुला जाट

सम्राट औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति[1] और उसके अधिकारियों की अवैध एवं बलपूर्वक वसूली ने[2] १६६६ ई० के आरम्भ में सरकार मथुरा के किसानों को प्रतिरोध के लिए व्यापक जनाधार पर संगठित होने की आवश्यकता दिखाई। इसका प्रारम्भ राजस्व की अदायगी रोक देने, जागीर व खालसा भूमि पर ज़बर्दस्ती अधिकार करने, शाही मार्ग को लूटने और सरकारी अधिकारियों का प्रतिरोध करने से हुआ था। सैनिक व नौकरशाही के दमन से यह आर्थिक असन्तोष बढ़कर स्थापित सत्ता के विरुद्ध एक संगठित प्रतिरोध में विकसित हो गया। ठीक इसी समय तिलपत[3] के जमींदार गोकुला ने संगठित प्रतिरोध का नेतृत्व अपने हाथ में लिया और १६६६ ई० के प्रारम्भ में चारों ओर लूटमार द्वारा अपनी उपस्थिति का प्रदर्शन किया। पहली बार जाटों और देहातियों के व्यापक समर्थन के बल पर उसे एक बड़ा गिरोह खड़ा करने में महत्वपूर्ण सफलता मिली।[4] इसी बल पर मथुरा, आगरा क्षेत्र में सुलग रही जन असन्तोष की ज्वाला की मशाल उसके हाथों में जा पहुँची।

मथुरा के फ़ौजदार अब्दु नबी ख़ान ने इन विद्रोहियों को दण्डित करने के लिए अप्रैल १६६६ ई० में उनके एक प्रमुख गढ़ मौजा सोहरा पर आक्रमण किया। लेकिन प्रत्याक्रमण के दौरान बन्दूक की एक गोली से वह स्वयं मारा गया, इसके परिणामस्वरूप मुग़ल दस्तों को लौट जाना पड़ा।[5] इस विजय से उत्साहित होकर गोकुला जाट के दस्तों ने सादाबाद क़स्बे को बुरी तरह से लूटकर जला दिया और

---

१. मथुरा के केशवराय मन्दिर को क्षति पहुँचाने के प्रयास के बारे में देखें, सरकार, औरंगजेब, जि० III, पृ० २६३, इसी प्रकार एक हिन्दू सन्त ऊधव बैरागी को सम्राट द्वारा दण्डित किए जाने के बारे में देखें, साक़ी मुस्तैद खाँ की माआसीर-ए-आलमगीरी, जदुनाथ सरकार कृत अँग्रेजी अनुवाद, पृ० ५३-५४

२. मथुरा के फ़ौजदार अब्दु नबी ख़ान द्वारा अर्जित विशाल सम्पत्ति यह प्रदर्शित करती है कि उसका आधार कहीं न कहीं किसानों से अवैध वसूली रहा होगा, देखें, मा० आ०, पृ० ५३

३. दिल्ली के १२ मील दक्षिण पूर्व में।

४. ईसरदास नागर, फ़ुतूहात-ए-आलमगीरी (सीतामऊ प्रति), पृ० ५३ अ

५. मा० आ०, पृ० ५३; मा० उल उमरा, जि० I, पृ० १२०-२१; लेटर मुग़ल्स, जि० I, पृ० ३२१; हादी कामवर ख़ान, तज़किरात-उस-सलातीन-ए चग़ताई (सीतामऊ प्रति), पृ० १६३

इस प्रकार आगरा में अनेक स्थानों पर अव्यवस्था फैला दी ।[1] नवम्बर तक संकट इतना वढ़ गया कि स्वयं औरंगज़ेव को प्रभावित क्षेत्र की ओर जाना पड़ा, और हसन अली ख़ान के नेतृत्व में शाही सेना को रीवाड़ा, चन्द्ररवा व सरखुद के विद्रोहियों पर महत्वपूर्ण सफलता मिली । इस सफलता के कारण उसे सफ़ शिकन ख़ान के स्थान पर मथुरा का फ़ौजदार नियुक्त करके गोकुला जाट के दमन का कार्य सौंपा गया ।[2]

तिलपत का युद्ध

गोकुला भी अपने २० हज़ार लोगों के साथ तिलपत से २० मील दूर एक स्थान पर आ डटा, जहाँ दिसम्वर के अन्तिम सप्ताह में शाही सेना के साथ उसका घमासान युद्ध हुआ । जाट किसानों की अप्रशिक्षित सेना ने अभूतपूर्व साहस का प्रदर्शन किया, किन्तु साहस मुश्किल से ही अनुशासन एवं शस्त्र सामग्री के अभाव की पूर्ति कर सका । जाट तिलपत लौट पड़े, जहाँ अन्तिम संघर्ष हुआ । युद्ध की भीषणता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि पाँच हज़ार विद्रोहियों को मारने में शाही सेना को अपने चार हजार सैनिक खोने पड़े ।[3] इस विजय के वाद ही सम्राट मथुरा से कूच करके एक जनवरी १६७० ई० को आगरा पहुँचा ।

गोकुला अपने परिवार तथा सात हजार साथियों के साथ वन्दी वना लिया गया था । विद्रोहियों को सवक सिखाने के उद्देश्य से, शाही आदेश से आगरा कोतवाली के चवूतरे पर गोकुला के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिए गए । उसके परिवार को वलपूर्वक इस्लाम में परिवर्तित कर दिया गया ।[4] किन्तु गोकुला का वलिदान व्यर्थ नही गया, उसने जाटों के दिलों में स्वतन्त्रता के नये अंकुरित पौधे को सींचा था ।

निर्भीक नेतृत्व-राजाराम जाट (१६८६-८८ ई०)

एक नेता की समाप्ति से संकट समाप्त नहीं हुआ और सम्राट की कठोर दमन तथा धार्मिक उत्पीड़न की नीति[5] ने गोकुला के वलिदान की आभा को जाज्वल्यमान वनाए रखा। यद्यपि अगले कुछ वर्षो तक शान्ति वनी रही, किन्तु

---

१. सरकार, औरंगज़ेव, जि० III, पृ० २६४

२. मा० आ०, पृ० ५७

३. मा० आ०, पृ० ५८; इस युद्ध के विस्तृत विवरण के लिए देखें, ईसरदास, पृ० ५३ अ व ५३ व

४. मा० आ० ५८; मा० उल उमरा, जि० I, पृ० १२१ व जि० V पृ० ४२४

५. मा० आ०, पृ० ६० व ६२-६३

जून १६८१ ई० में एक बार फिर ग्रामीणों ने हथियार उठाए, जिसमें आगरा परिसर का फ़ौजदार मुल्तफ़त ख़ान मारा गया।[1]

संघर्ष का क्षेत्र अब शाही नगर आगरा से हटकर अधिक सुरक्षित स्थल वर्तमान भरतपुर क्षेत्र में सिनसिनी[2] बन गया। सिनसिनी के जमींदार खानचन्द के पुत्र बृज ने अपने सगोत्रीय बन्धुओं को संगठित करके इस क्षेत्र में सर्वप्रथम शाही सेना से टक्कर लेकर ख्याति प्राप्त की थी।[3] शीघ्र ही सिनसिनी के जाटों को राजाराम के रूप में एक योग्य और साहसी नेता मिला, जो बृज के भाई भगवन्त या भज्जा[4] का पुत्र था। उत्पीड़ित जाट किसानों में नेतृत्व की आवश्यकता और सम्राट

---

१. वही, पृ० १२८

२. भरतपुर से १६ मील उ० प० में तथा डीग से ८ मील दक्षिण में।

३. सुजान चरित्र, पृ० ५; मजमाउल अख़बार, इलियट, जि० VIII, पृ० २७१; ज्वाला सहाय लिखता है कि वह प्रारम्भ में केवल २०० अनुयायियों का नेता था, और उसने शाही दस्तों पर हमला करके अऊ (डीग के ४ मील द० पूर्व में, सिनसिनी इसी अऊ परगने के अन्तर्गत था) के महत्वपूर्ण दुर्ग पर अधिकार कर लिया था, भरतपुर, पृ० २५

४. समकालीन फ़ारसी ग्रन्थों द्वारा चूड़ामन व राजाराम के पिता का एक ही नाम 'भज्जा' बतलाए जाने से बृज एवं भगवन्त के एक ही व्यक्ति होने के बारे में भ्रान्ति पैदा हो गई है। ईसरदास एकमात्र प्रारम्भिक समकालीन लेखक है, जो चूड़ामन को राजाराम के भाई का पुत्र बतलाता है (फ़ुतूहाते आलमगीरी, १३५ ब), किन्तु अन्य कोई भी स्रोत इसका समर्थन नहीं करता है। इसके बाद माआसीर-ए-आलमगीरी और मुन्तख़ब-उल-लुबाब महत्व के ग्रन्थ हैं, जो चूड़ामन के पिता का नाम भज्जा बतलाते हैं। फ्रेंज गोटलियब के मतानुसार भुण्टा (बृज या भज्जा के लिये प्रयुक्त अपभ्रंश) के दो पुत्र हुए—भावसिंह तथा चूड़ामन (पर्शियन हिस्ट्री ऑफ़ जाट्स, मूल पृष्ठ १४ ब, अंग्रेजी अनु० बंगाल पास्ट एन्ड प्रेज़ेण्ट—दिसम्बर १९५५ ई०)। हरसुखराय के अनुसार सिनसिनी के जमींदार भज्जा के तीन पुत्र थे—चूड़ामन, वदनसिंह (भावसिंह होना चाहिए) और राजाराम (मजमाउल अख़बार, इलियट, VIII, पृ० २७१)। ऐसा प्रतीत होता है कि बृज तथा भगवन्त (भज्जा) का भ्रातृत्व प्रेम एवं पारिवारिक सूत्र इतना घनिष्ठ था कि समकालीन फ़ारसी लेखकों ने चूड़ामन व राजाराम की भिन्न पैतृकता को न समझकर दोनों के पिता के लिए सुनी हुई सूचना के आधार पर एक ही शब्द 'भज्जा' का प्रयोग किया। सूरजमल का समकालीन कवि अखैराम अपने काव्य 'सिंहासन बत्तीसी' में स्पष्ट लिखता है, "बृज भगवत ना वंश में उपजे सुप के नोक।" (मत्स्य की देन, पृ० २००) बाद के एक अन्य कवि चतुरा राय ने लिखा है—

खानचन्द के भयो कुँवर ब्रजराज महीपति,
ताकै सुत छः भए जान्यो प्रताप अति।
भावसिंह अतिराम और चूरामनि ठाकुर,
बुधसिंह, गजसिंह, कुशलसिंह भयो-दिवाकर। पथैना रासो (पा० लि०), पृ० १

इन विवरणों से स्पष्ट है कि चूड़ामन और भावसिंह (वदनसिंह का पिता) बृज की सन्तान थे, और राजाराम सम्भवतया बृज के भाई भज्जा का पुत्र था। बाद के सभी लेखक इसी मान्यता का पालन करते हैं।

औरंगज़ेब की उत्तर भारत से निरन्तर अनुपस्थिति ने राजाराम को, जिसे अपने परिवार से नेतृत्व एवं लूटमार की स्वाभाविक शिक्षा मिली थी, अपनी क्षमता के प्रदर्शन का सुनहरा अवसर प्रदान किया। राजाराम न केवल सिनसिनवार जाटों का सर्वमान्य नेता बन गया, बल्कि उसने सोगर[१] दुर्ग के स्वामी रामचेहरा[२] के नेतृत्व में सोगरिया जाटों को भी अपने साथ मिला लिया। राजाराम का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य यह था कि उसने जाटों के विभिन्न गोत्रों तथा गुटों के बीच एकता स्थापित की, और प्रत्येक जाट किसान को सैनिक प्रशिक्षण प्रदान करके, उन्हें हथियारों से लैस करके एक सशक्त एवं नियमित सैनिक संगठन की स्थापना की।[3]

आगरा के निकट तक और शाही मार्गों पर तेज़ी से बढ़ते हुए जाट उपद्रवों के कारण सम्राट ने ३ मई १६८६ ई० को सेनापति ख़ान-ए-जहाँ को राजाराम के विरुद्ध रवाना किया।[४] राजाराम ने इसी समय धौलपुर के निकट प्रसिद्ध तूरानी योद्धा अगहर ख़ान के काफ़िले पर हमला करके ख़ान को मार डाला,[५] और शीघ्र ही जाट शक्ति केन्द्रों सिनसिनी व सोगर को नष्ट कर देने की ख़ान-ए-जहाँ की योजना का करारा जवाब दिया।[६] राजाराम के दुःसाहस तथा ख़ान-ए-जहाँ की

---

१. भरतपुर के ४ मील उत्तर में व सिनसिनी के १४ मील पूर्व में।

२. वैण्डल द्वारा फ्रैंच में लिखा गया जाट इतिहास ही एकमात्र स्रोत है जो रामचेहरा का उल्लेख करता है (सरकार द्वारा उद्धृत)। यह सम्भव है कि यह रामचरन जाट हो, १६८८ ई० में जिसके द्वारा खुर्जा व पलवल की लूट का समाचार केशोराय द्वारा रामसिंह को भेजी गई रिपोर्ट में दिया गया है। देखें, फ़ारसी वकील रिपोर्ट, जि० I, संख्या ११७

३. कानूनगो, जाट, पृ० ४०; वूल्जले हेग, कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ० ३०५

४. मा० आ०, पृ० १६८; कामवर, पृ० २२३; इन दोनों स्रोतों तथा बाद की घटनाओं से इस बात की पुष्टि होती है कि इस कार्य के लिए ख़ान-ए-जहाँ का चुनाव राजधानी के ठीक नाक के नीचे जाट विद्रोह की गम्भीरता का ही परिणाम था न कि दक्षिण से उसकी उपस्थिति से छुटकारे का, जैसा कि एम० अतहर अली (औरंगज़ेब कालीन मुग़ल अमीर वर्ग, पृ० १५३) ने लिखा है।

५. विस्तृत विवरण के लिए देखें, ईसरदास, पृ० १६४ व; ख़ाफ़ी ख़ाँ के अनुसार यह घटना १६९१ ई० की है (मुन्तख़ब-उल-लुबाब, जि० II, पृ० ३९४, इलियट द्वारा उद्धृत), जबकि सरकार एवं कानूनगो के अनुसार यह राजाराम के समय की ही घटना है, जो परिस्थितिजन्य प्रमाणों के अनुसार अधिक युक्तिसंगत है।

६. अर्जदाश्त, पोष कृष्णा ११ वि० सं० १७४३ और कार्तिक कृष्णा ४ वि० सं० १७४४

विफलता ने सम्राट की चिन्ता को बढ़ा दिया, अतः दिसम्बर १६८७ ई० में शहज़ादे बेदार बख्त को जाटों के विरुद्ध सर्वोच्च कमान सौंपकर पहले आमेर के राजा रामसिंह को तथा बाद में उसके उत्तराधिकारी बिशनसिंह को मथुरा की फ़ौजदारी स्वीकृत कर उसकी सहायता का आदेश दिया।

किन्तु जब तक बेदार बख्त पहुँचता, राजाराम विभिन्न छापामार आक्रमणों तथा भारी लूटमार द्वारा व्यवहारतः आगरा जिले में मुग़ल सत्ता का अन्त कर चुका था। २७ फरवरी १६८८ ई० को उसने सिकन्दरा स्थित अकबर के मक़बरे को लूटकर मुग़ल प्रतिष्ठा को भारी आघात पहुँचाया।[1]

राजाराम की मृत्यु और सिनसिनी का पतन

बेदार बख्त के पहुँचने के पूर्व ही राजाराम की अप्रत्याशित मृत्यु ने इस अभियान की विशाल तैयारी के अनुरूप शक्ति परीक्षण की वास्तविक कसौटी को समाप्त कर दिया था। लगभग इसी समय मेवात में बागथेरिया[2] में जमींदारी के मामलों को लेकर चौहान व शेखावतों के बीच हुए संघर्ष में राजाराम ने चौहानों के पक्ष में भाग लिया।[3] ४ जुलाई १६८८ ई० को बीजल[4] गाँव के निकट हुए इस भीषण युद्ध में सिपहदार खाँ (मेवात का फ़ौजदार, जिसकी एक टुकड़ी शेखावतों के पक्ष में युद्ध कर रही थी) के एक बन्दूकची की गोली से राजाराम मारा गया। जो लोग गोकुला को दिए गए क्रूर दण्ड को भूल गए थे, उन्हें सबक सिखाने के उद्देश्य

---

१. ईसरदास, पृ० १३२ ब; निकोलाओ मनूची, स्टोरिआ डो मोगोर (इरविन कृत अँग्रेजी अनुवाद), जि० II, पृ० ३२०; तारीख़ के लिए, फ़ा०व० रि०, जि० I, संख्या ११५, केशोराय द्वारा रामसिंह को।

२. अलवर के २४ मील उत्तर पूर्व में।

३. बेदार बख्त के नेतृत्व में दक्षिण से जो विशाल सेना राजाराम का दमन करने के लिए भेजी गई थी उसका इस युद्ध में भाग लेना सम्भव नहीं था, क्योंकि उसने २७ जून १६८८ ई० को नर्मदा पार की थी (फ़ा० व० रि० I, संख्या १३६, ८ रमजान १०९९ हिज्री)। मथुरालाल शर्मा ने इस युद्ध में कोटा व बूँदी के शासकों के भाग लेने की जो बात लिखी है, वह सही नहीं है (कोटा राज्य का इतिहास, जि० I, पृ० २०७), क्योंकि स्वयं उन्होंने जिस स्रोत का उल्लेख किया है (वंश भास्कर, पृ० २८८७ पर वि० संवत् १७४६ चैत्र शुक्ला), उसके अनुसार यह साल भर बाद सिनसिनी में लड़े गए युद्ध का वृतान्त है।

४. रेवाड़ी से १८ मील दक्षिण व तिजारा से २० मील पूर्व में स्थित बीजवर।

से सम्राट औरंगज़ेब ने राजाराम के सिर को भी आगरा की कोतवाली पर लटकाने के आदेश दिए।[1]

राजाराम की मृत्यु और वेदार बख्त के आगमन ने मुग़ल अभियानों में नई जान फूँक दी। दिसम्बर में सोंख का दुर्ग जीत लिया गया तथा फरवरी १६८६ ई० में सिनसिनी का घेरा डाल दिया गया, जिसकी रक्षा का भार राजाराम के ज्येष्ठ पुत्र जोरावर के कन्धों पर था।[2] किन्तु एक ओर विशनसिंह के साथ वेदार बख्त के मतभेदों ने तथा दूसरी ओर मथुरा-महावन, कामां-पहाड़ी तथा दोआव में खैर के विद्रोही जाटों ने सिनसिनी पर मुग़ल दवाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।[3] अन्ततः प्रवल प्रतिरोध के पश्चात् जनवरी १६६० ई० में शाही सेना सिनसिनी पर अधिकार करने में सफल हुई।[4] जोरावर गिरफ्तार करके दक्षिण भेज दिया गया।[5]

---

१. ईसरदास, पृ० १३४ अ व ब; मा० भा० (युद्ध का वर्णन नहीं है), पृ० १८६; फ़ा० व० रि०, I, संख्या १४४, ३० जुलाई १६८८ ई०; वैण्डल का यह वृतान्त सही नहीं है कि रामचेहरा शहज़ादे के हाथों में पड़ गया और राजाराम पीछे हटता हुआ गम्भीर रूप से घायल हो गया और घावों के कारण कुछ ही समय वाद उसकी मृत्यु हो गई। रामचेहरा का सिर काट लिया गया और सार्वजनिक रूप से आगरा क़िले के सामने वाजार के ऊपर विशाल दरवाज़े पर लटका दिया गया (सरकार द्वारा उद्धृत, औरंगज़ेब जि० V, पृ० २६६ पा० टि०)। साक़ी मुस्तैद खाँ और ईसरदास समान रूप से रामचेहरा की उपेक्षा करते हैं, और कहते हैं कि वह राजाराम था, जिसका सिर आगरा कोतवाली पर लटकाया गया था।

२. हमीदउद्दीन ने औरंगज़ेब के पत्र के हवाले से लिखा है कि इस समय वेदार बख्त ने राजाराम जाट के पास, सिनसिनी के घेरे के दौरान यह मौखिक सन्देश भिजवाया था कि वह अपने भाई की कन्या शहज़ादे को देकर स्वयं क़िले के वाहर चला आवे (अहकाम-ए-आलमगीरी, मूल पृ० २१ ब व २२ अ, सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद से उद्धृत)। वस्तुतः यह सन्देश राजाराम के पुत्र जोरावर को भिजवाया होगा।

३. विस्तृत विवरण के लिए देखें, कानूनगो, हिस्ट्री ऑफ दि बेरोनिकल हाउस ऑफ डिग्गी, पृ० ८० से ६० (अप्रकाशित टंकण प्रतिलिपि, सीतामऊ)।

४. मा० आ०, पृ० २०२; ईसरदास, पृ० १३६ ब १३७ अ;

५. कामवर, पृ० २३१; उपेन्द्रनाथ शर्मा का यह कथन सही नहीं है कि दक्षिण में सम्राट औरंगज़ेव के शिविर में उसका निर्दयतापूर्वक कत्ल कर दिया गया (जाटों का नवीन इतिहास, पृ० १४२)। क्योंकि पाँच वर्ष वाद ही हम उसे शाही शिविर से छूटकर आने के वाद सिनसिनी की मुक्ति के लिए प्रयास करते हुए पाते हैं, देखें, श्यामसिंह की अर्ज़दाश्त, श्रावण कृष्णा १४ वि० संवत् १७५४ (७ जुलाई १६६७ ई०)।

जाट कछवाहा संघर्ष की विभीषिका (१६९०-१६९५ ई०)

सिनसिनी की विजय के बाद जाटों के विरुद्ध मुग़ल अभियान की बागडोर कछवाहा राजा बिशनसिंह को सौंप दी गई। बिशनसिंह ने ६ महीनों में जाटों को नष्ट करने का लिखित आश्वासन दिया था, परन्तु इस कार्य में उसे ६ वर्ष लग गए। इस अभियान के सफल संचालन का श्रेय उसके अतालिक और मुख्य सेनापति हरीसिंह खंगारोत को है, जिसने मृत्युपर्यन्त (१६९५ ई०) सैकड़ों युद्धों में अभूतपूर्व साहस एवं क्षमता का प्रदर्शन किया था। दूसरी तरफ़ जाटों ने अब सिनसिनी को अपनी स्वतन्त्रता का प्रतीक बनाकर सामूहिक नेतृत्व में व्यापक संघर्ष छेड़ दिया। बृज, उसके पुत्र भावसिंह, अनिराम (या अतिराम), चूड़ामन तथा राजाराम के द्वितीय पुत्र फ़तहसिंह[1] ने सिनसिनी के चारों ओर प्रत्येक मौजे व नगले को संघर्ष के लिए तैयार किया। दोआब में अमरसिंह जाट और नन्दा जाट ने सिनसिनी के जाटों से सम्पर्क बनाए रखा। जमींदारियों के प्रलोभन में इस क्षेत्र के अधिकांश जमींदारों ने जाटों का साथ दिया। करौली के यादव राजपूतों, नदबई में हरकिशन चौहान, बयाना, हिण्डौन, भुसावर में रणसिंह व श्योंसिंह पंवार तथा कामां, पहाड़ी व मेवात में मेव व नरुकों ने जाटों का साथ दिया।

आमेर के दीवान रामचन्द्र के एक पत्र से जाट आक्रमणों में व्यापक पैमाने पर वृद्धि एवं आतंक पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।[2] मई १६९१ ई० में कछवाहा सेना को जाटों के दूसरे सुदृढ़ दुर्ग सोगर में आश्चर्यजनक सफलता मिली।[3] किन्तु अवार का दुर्ग उनके लिए दूसरी सिनसिनी सिद्ध हुआ, जो कठिन एवं लम्बे संघर्ष

---

१. सिनसिनी के पतन के बाद कुछ वर्षों तक तो फतहसिंह ने संघर्ष जारी रखा, किन्तु बाद में इस्लाम अंगीकार करके ३०० ज़ात व १०० सवार का मुग़ल मनसब स्वीकार कर लिया और उसका नाम फ़तहउल्लाह हो गया (फ़ारसी अख़बारात, २६ नवम्बर १७०६ ई०)। कानूनगो का यह अनुमान सही नहीं है कि वह अक्तूबर १६९२ ई० में पिंगोरा गढ़ी की रक्षा करते हुए मारा गया (हिस्टारिकल एसेज, पृ० ५५), क्योंकि हम उसे १७०२ ई० में नन्दा जाट के विरुद्ध लड़ते हुए पाते हैं (फ़ा० अख़०, २२-२३ अप्रेल १७०२ ई०)।

२. अर्ज़दाश्त, मार्गशीर्ष कृष्णा ८, वि० सं० १७४७।

३. मा० आ०, पृ० २०५; ईसरदास लिखता है, 'जब कछवाहा राजा सोगर पहुँचा तब संयोग से दुर्ग के दरवाज़े अन्न प्रवेश के लिए खुले हुए थे। आक्रमणकारियों ने सरपट अन्दर प्रवेश करके प्रतिरोध करने वालों को मौत के घाट उतारकर ५००विद्रोहियों को बन्दी बना लिया।' फ़ुतूहाते आलमगीरी, पृ०१३७ अ व ब।

के वाद मार्च १६६२ ई० में जीत लिया गया।[1] वर्षा ऋतु में कासोट व पिंगोरा तथा १६६३ ई० के प्रारम्भ में जाटों को सोंख, रायसीस, वनी वाथोली व भटौली की गढ़ियाँ खोनी पड़ी। १६६४ ई० में कछवाहा सेना को आगरा—वयाना क्षेत्र में अनेक रक्त रंजित युद्धों में जाट विद्रोहियों को कुचलने और खदेड़ने में उल्लेखनीय सफलताएँ मिली। विशनसिंह का अन्तिम महत्वपूर्ण अभियान नन्दा जाट के विरुद्ध था। एक लम्बे और विकट संघर्ष के वाद, जिसके वीच ५ अप्रेल १६६५ ई० को हरीसिंह को अपने प्राण खोने पड़े, कछवाहा सेना मई में जावेर की गढ़ी पर अधिकार करने में सफल हुई, फिर भी नन्दा जाट वहाँ से वच निकलने में सफल हो गया और १७०८ ई० तक शाही सेना से संघर्ष करता रहा।[2]

स्वतन्त्र जाट शक्ति की स्थापना : चूड़ामन जाट (१६९५-१७२१ ई०)

जाटों का नवीन नेता सिनसिनी के जाट जमींदार वृजराज का पुत्र चूड़ामन था। जाट जाति को राजनैतिक महत्त्व दिलाने वाला वह प्रथम जाट था, जो जाटों द्वारा चुना हुआ नेता था।[3] अव तक चले आ रहे जाट आन्दोलन को उसने अपनी अभूतपूर्व संगठन क्षमता, राजनैतिक विलक्षणता और चतुराई के वल पर एक राज्य की रचना में वदल दिया। सही अर्थों में वह भरतपुर के प्रथम ऐतिहासिक जाट राज्य का निर्माता था। चूड़ामन जाट का जीवन-चरित स्वतन्त्रता के लिए जाट संघर्ष का ज्वलन्त वृतान्त है, जिसका प्रारम्भ सादावाद के गोकुला जाट के विद्रोह से हुआ था। कानूनगो के शब्दों में, "वह असफल देशभक्त और सफल विद्रोही था, जो यथार्थतः स्वतन्त्रता में मरा था, यद्यपि उसे राजोचित सम्मान और पदवियाँ प्राप्त नहीं थी।"[4]

---

१. फ़ा० व० रि०, I, संख्या ३१३, १६ जून १६६२ ई०

२. कानूनगो, हिग्गी, पृ० १४०-४७; नरेन्द्र सिंह, थर्टी डिसाइसिव वैटल्स ऑफ जयपुर, पृ० ६२; उपेन्द्र शर्मा का यह कथन सही नहीं है कि इस समय (१६६५ ई०) नन्दा जाट मारा गया (जा० न० इ०, पृ०८५), क्योंकि फ़ा०अख०, २२-२३ अप्रैल १७०२ ई० में उसकी गतिविधियों का विवरण मिलता है। श्रीकृष्ण भट्ट विरचित ईश्वर विलास (पृ० ३८) का यह संदर्भ भी सही प्रतीत नहीं होता, जिसमें वि० संवत् १७४६ (१६८६ ई०) में विशनसिंह द्वारा जुआर (जावेर) दुर्ग को नष्ट करने का उल्लेख है, जवकि यह घटना १६६५ ई० की है, देखें, फ़ा० व० रि०, I, संख्या ६२८, १३ जुलाई १६६५ ई०

३. ज्वाला सहाय, पृ० २६; जे० ए० देवनीश, दि भवन्स एण्ड गार्डन पेलेसेज ऑफ डीग, पृ० २

४. कानूनगो, एसेज, पृ० ५०

चूड़ामन में संगठन की तथा अवसरों का चतुरतापूर्वक लाभ उठाने की प्रतिभा थी।[1] उसके चरित्र में जाटों की हठधर्मी, मराठों की चालाकी और राजनैतिक दूरदर्शिता का सम्मिश्रण था।[2]

इमाद का लेखक चूड़ामन के प्रारम्भिक जीवन के बारे में लिखता है, "उसने अपने जीवन का प्रारम्भ गाड़ियों और राहगीरों को लूटने वाले बटमारों के दल के नेता के रूप में किया था। थोड़े ही समय में उसने अपनी कमान में ५०० घोड़े और १००० पैदल इकट्ठे कर लिए थे। नन्दा जाट भी अपने १०० घुड़सवारों के साथ उसके साथ शामिल हो गया था। व्यापारिक गाड़ियों की लूटमार से चलने वाला संगठन जब काफी विशाल हो गया तो उसने परगनों को लूटना शुरू किया।"[3] वैण्डल के अनुसार, "अपने पूर्वजों से अधिक साहसी होने के कारण उसने न केवल अपने सैनिकों की संख्या बढ़ाई, बल्कि उन्हें बन्दूकचियों व घुड़सवार सेना से मजबूत बनाया, जिन्हें शीघ्र ही मैदान में उतारकर, मार्ग में दरबार के अनेक मन्त्रियों को लूटा, उसने शाही तोपखाना और प्रान्तों से भेजे जाने वाले राजस्व को भी लूटा।"[4]

जाटों का सर्वमान्य नेता

चूड़ामन के इतिहास को दो भागो में बाँटा जा सकता है—(१) १६६५ ई० से, जब वह जाटों के सर्वमान्य नेता के रूप में उभर कर सामने आया, १७०७ ई० में औरंगज़ेब की मृत्युपर्यन्त, (२) १७०८ ई० में मुग़ल मनसब स्वीकार करने से लेकर १७२१ ई० में अपनी मृत्यु तक। १६६५ ई० के पूर्व सिनसिनी के घेरे के समय (जनवरी १६६० ई०) वह बच निकलने में सफल हो गया था और उसका नाम विद्रोही नेताओं की उस सूची में दर्ज था, जिन्हें जीवित या मृत पकड़ना था।[5] जाट-कछवाहा संघर्ष के दौरान अपनी योग्यता एवं साहस के बल पर उसने अपनी नेतृत्व शक्ति प्रमाणित कर दी थी। जून १६६४ ई० में रतनगढ़ पर कछवाहा सेना के अधिकार के बाद उसे चम्बल के दक्षिण में कहीं शरण लेनी पड़ी थी। यह चूड़ामन के जीवन का सर्वाधिक संकटप्रद समय था, जब वह अविजित इच्छा शक्ति एवं ज़हर की खुराक के अतिरिक्त सब कुछ खो चुका था।[6]

---

१. जदुनाथ सरकार का लेख, 'जाट और गौड़' मॉडर्न रिव्यू, अक्तूबर १६२३ ई०
२. कानूनगो, जाट, पृ० ४५
३. गुलाम अली, इमाद-उस-सादात, पृ० ५५ (कानूनगो द्वारा उद्धृत)
४. वैण्डल, पृ० ४१
५. डिग्गी कलेक्शन, शीट संख्या २६१, १७ मई १६६४ ई०
६. कानूनगो, एसेज, पृ० ५६

किन्तु मार्च १६६५ ई० में हरीसिंह के मारे जाने और जुलाई १६६६ ई० में वेदारवख्त के साथ विशनसिंह के काबुल चले जाने पर चूड़ामन को अपनी शक्ति को पुनः संगठित करने का अवसर मिला और उसने थून[1] (जाटौली थून) में सिनसिनी से भी अधिक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण करके उसे अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया।[2] इस बीच सम्भवतः १८ वीं सदी के प्रारम्भ में वृज और उसका पुत्र भावसिंह मुग़लों से अपने पैतृक गाँव सिनसिनी की रक्षा करते हुए मारे गए।[3] अन्ततोगत्वा १७०४ ई० में चूड़ामन सिनसिनी को मुक्त कराने में सफल हुआ,[4] किन्तु यह सफलता क्षणिक सिद्ध हुई और ९ अक्टूबर १७०५ ई० को आगरा के नाज़िम मुख्त्यार खान ने दूसरी वार सिनसिनी पर शाही अधिकार स्थापित कर लिया।[5]

जाजऊ का युद्ध और शाही दरबार में प्रवेश

सम्राट औरंगज़ेब ने जब दक्षिण में अपनी निढ़ाल आँखें बन्द की तो चूड़ामन को अपनी शक्ति का विस्तार करने का सुअवसर मिला। जाजऊ के युद्ध क्षेत्र (जून १७०७ ई०) से उसका भाग्योदय हुआ, जहाँ उसने आज़म और मुअज़्ज़म की सेनाओं को समान रूप से लूटा।[6] लूट की विशाल सम्पत्ति को सुरक्षित बनाए रखने के लिए उसने नवीन सम्राट के प्रति निष्ठावान रहने का निश्चय किया। अतः उसने १५ सितम्बर १७०७ ई० को आगरा में सम्राट बहादुरशाह को नज़र एवं पेशकश भेंट की।[7] बहादुरशाह ने अपनी 'दण्डित न करने और समझौते की नीति' के अनुरूप,

---

१. सिनसिनी के ८ मील पश्चिम में।

२. टॉड (III, १३५८); ओडायर (II, २५) और ग्राउसे (I, २२) के अनुसार चूड़ामन ने थून और सिनसिनी के दो दुर्गों का निर्माण किया था। वस्तुतः चूड़ामन ने सिनसिनी दुर्ग का केवल पुनर्निर्माण ही किया था। गोकुल चन्द दीक्षित के अनुसार चूड़ामन ने थून में जो अपना पृथक राज्य क़ायम किया, उसमें प्रारम्भ में केवल ८० गाँव थे, वृजेन्द्र वंश भास्कर, पृ० २०

३. ज्वाला सहाय, पृ० २६; ओडायर, जि० III, पृ० २५; देशराज, जाट इतिहास, पृ० ६३३

४. कानूनगो, जाट; पृ० ४७; सरकार, औरंगज़ेब, जि० V, पृ० ३०३

५. मा० आ०, पृ० २६५-६६; फ़ा० अख़०, २४ रजब, १११७ हिज्री; इनायतुल्ला, अहकाम-ए-आलमगीरी (सीतामऊ प्रतिलिपि), जि० I, पृ० ६६ ब

६. ख़ाफ़ी ख़ाँ, II, ७७६; मा० उल उमरा, I, १२३; लेटर मुग़ल्स, I, २७; बी०एस०भटनागर, हिस्ट्री ऑफ राजपूताना (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), पृ०१६२

७. फ़ा० अख़०, २८ जमादि-उल-अव्वल, १११६ हिज्री

न कि इनाम के वतौर, चूड़ामन को क्षमा प्रदान कर उसे १५०० ज़ात व ५०० सवार का मनसव तथा दिल्ली आगरा शाही मार्ग का दायित्व सौंपा।[1] किन्तु जब चूड़ामन ने शाही मनसव की आड़ में सिनसिनी को पुनः हस्तगत कर लिया, और राहजनी द्वारा शाही मार्गों पर भारी आतंक स्थापित कर लिया, [2]तो सम्राट के आदेश से रजा वहादुर कौल के नेतृत्व में शाही सेना ने उसे पराजित कर १३ दिसम्बर १७०७ ई० को तीसरी बार सिनसिनी दुर्ग को नष्ट कर दिया।[3]

विद्रोही गतिविधियों को कूटनीतिक कवच

एक व्यवहारिक राजनीतिज्ञ की भाँति चूड़ामन ने एक वार फिर मुनीम ख़ान की सहायता से वहादुरशाह के कोप को शान्त किया, जिससे एक ओर वह शाही आवरण में टूटती हुई मुग़ल सत्ता से अपनी शक्ति का विस्तार कर सके, वहीं दूसरी ओर अपने मुख्य प्रतिद्वन्द्वी आमेर के कछवाहा राजा सवाई जयसिंह से अपने राज्य की सुरक्षार्थ, राजनैतिक स्तर पर सामना कर सके। अपनी विद्रोही गतिविधियों पर राजभक्ति का आवरण चढ़ाने के लिए उसने शाही अभियानों में वढ़ चढ़कर भाग लिया। जयसिंह के विरुद्ध मेवात के फ़ौजदार सैय्यद हुसैन ख़ान के नेतृत्व में पहले शाही सेना में शामिल हो जाना और वाद में ३ अक्तूवर १७०८ ई० के सांभर युद्ध में भाग न लेना उसकी कूटनीति का ही अंग था।[4] नवम्वर में कामां के युद्ध में चूड़ामन ने मुग़ल सेवा में अपने रक्त की प्रथम वूँद वहाई थी।[5]

---

१. लेटर मुग़ल्स, I, ३२२; सतीशचन्द्र, पार्टीज एण्ड पॉलिटिक्स ऐट दि मुग़ल कोर्ट, पृ० १२२; जगदीश नारायण सरकार लिखते है कि आज़म की सेना को लूटने पर वहादुरशाह ने इनाम में यह मनसव दिया, ए स्टडी ऑफ दि एटीन्थ सेन्चुरी इण्डिया, पृ० ३८१।

२. वहादुरशाह के प्रारम्भिक शासन काल में शाही मार्ग के ख़तरों का जीवित चित्रण यार मुहम्मद द्वारा किया गया है। मथुरा व दिल्ली के वीच शाही मार्ग पूर्णतया दो महीनों के लिए ठप्प हो गया था (इरविन द्वारा उद्धृत दस्तूर-उल-इंशा, पृ० १३०)।

३. फ़ा० अख़०, १८ रमजान, १११९ हिज्री।

४. अर्ज़दाश्त, जैत्रसिंह द्वारा जयसिंह को, कार्तिक कृष्णा ६, वि०सं०१७६५; भटनागर राजपूताना, पृ० १००; राम पाण्डे ने सांभर युद्ध में चूड़ामन के भाग लेने और युद्ध की तिथि का जो वर्णन किया है (भरतपुर अप टु १८२६, पृ० १४), वह प्रामाणिक सिद्ध नहीं होता है।

५. फ़ा० अख़० २२-२७ नवम्वर १७०८ ई०; डिसाइसिव वैटल्स, पृ ७८

सांभर और कामां के युद्धों में राजपूतों की विजय तथा बहादुरशाह द्वारा उनके साथ समझौते की सम्भावना को ध्यान में रखते हुए, जनवरी १७०६ ई० में चूड़ामन ने जयसिंह के साथ एक समझौता कर लिया।[१] किन्तु इस समझौते की आड़ में चूड़ामन ने राजपूत जमींदारियों के उन्मूलन और कछवाहों द्वारा अधिकृत जाट क्षेत्रों को मुक्त कराने का अभियान तेज़ कर दिया। अक्तूबर १७०६ ई० में उसने सोगर एवं भुसावर जीत लिया,[२] और शीघ्र ही कामां, खोहरी, कोट, खूँटहेड़े, ईंटहेड़ा, जाड़िला तथा चौगड़दा सहित अनेक स्थानों पर अपने थाने क़ायम करने मे सफलता प्राप्त की।[3]

जून १७१० ई० में चूड़ामन बहादुरशाह के सिक्ख अभियान में शामिल हो गया। दिसम्बर में साधौरा तथा लोहागढ़ के युद्धों में उसने बढ़ चढ़कर भाग लिया और फिर सम्राट के साथ लाहौर तक पहुँचा।[४] लाहौर के उत्तराधिकार युद्ध में वह अज़ीमुश्शान का साथी था।[५] किन्तु इस पक्ष की पराजय पर नए सम्राट जहाँदारशाह से संशकित चूड़ामन ने अपने क्षेत्र में लौटकर शाही राजमार्ग पर पुनः लूटमार प्रारम्भ कर दी, जिसके परिणामस्वरूप राजधानी तक अशान्ति फैल गई।[६] फ़र्रुख़सियर के आगरा की ओर बढ़ने के समाचार से भयभीत, सुरा और सुन्दरी के दास नवीन सम्राट ने चूड़ामन को बिना शर्त क्षमा प्रदान कर उसे पुराना मनसब लौटा दिया।[७] इस प्रकार जहाँदारशाह चूड़ामन को अपनी सेना में शामिल करने में सफल हुआ।[८] किन्तु जनवरी १७१३ ई० के युद्ध में चूड़ामन ने अपनी चिर-परिचित शैली में दोनों पक्षों को समान रूप से लूटा और लूट की विशाल सामग्री के साथ थून लौट आया।[९]

---

१. अर्ज़दाश्त किसनसिंह व जालिमसिंह की, फाल्गुन कृष्णा २, वि० सं० १७६५ (१६ जनवरी १७०६ ई०)
२. अर्ज़दाश्त, श्यामसिंह द्वारा जयसिंह को, कार्तिक कृष्णा ११, वि० सं० १७६६
३. अर्ज़दाश्त, कार्तिक कृष्णा १४, पोप कृष्णा १० व १५ वि० सं० १७६६
४. लेटर मुग़ल्स, I, पृ० ३२३
५. पार्टीज, पृ० १२२; कानूनगो का यह मत सही नहीं है कि उसने जहाँदारशाह का पक्ष लिया था (एसेज, पृ० ५६)।
६. मा० उल उमरा, I, पृ० १२४; डच दूत वेलेन्टीन के प्रत्यक्षदर्शी विवरण के लिए देखें, लेटर मुग़ल्स, I, पृ० ३२१ पा० टि०
७. पार्टीज, पृ० ७६; ख़ुतूत महाराजगान, ११ रजब, ११२४ हिज्री
८. जोनाथन स्काट, मेमॉयर्स ऑफ इरादत ख़ान, पृ० ८६.
९. अर्ज़दाश्त जगजीवनदास द्वारा जयसिंह को, माघ कृष्णा १ वि० सं० १७६६; ग़ुलाम हुसैन, सियार-उल-मुतख़िरीन, जि० I, पृ० ३४; कानूनगो, जाट, पृ० ५०; कैम्ब्रिज हिस्ट्री, पृ० ३२८-२६; वी० एस० भटनागर, लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सवाई जयसिंह, पृ० ६६

राह्‌जन से राह्‌दार

सम्राट फर्रुखसियर ने चूड़ामन को दण्डित करने के आदेश के साथ पहले तो राजा छवीलाराम नागर को और वाद में खान-ए-दौरां को आगरा का सूवेदार नियुक्त किया।[१] खान-ए-दौरां और अमीर-उल-उमरा (वख्शी उल मुल्क) ने, जिसने अपने लिए मथुरा की फौजदारी प्राप्त कर ली थी, अपने-अपने क्षेत्र में शान्ति वनाए रखने के उद्देश्य से चूड़ामन को शाही दरवार में उपस्थित होने के लिए तैयार किया।[२] २७ सितम्वर १७१३ ई० को चूड़ामन सम्राट के समक्ष उपस्थित हुआ, फलस्वरूप उसके पद में वृद्धि, राव की उपाधि और वारापुला से सिकन्दरा तक के शाही मार्ग की राहदारी उसे प्रदान की गई।[3] इस प्रकार कानूनगो के शब्दों में: "एक भेड़िए को रेवड़ की निगरानी के लिए नियुक्त करके लूट को कानूनी रूप दे दिया गया।"[४]

थून राज्य के निर्माण की ओर

सम्राट की दुर्वलता को भाँपकर तथा सैय्यदों की मित्रता और शाही प्रतिष्ठा अर्जित करके चूड़ामन पुनः अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने लगा। उसने शाही मार्ग पर प्राप्त कानूनी सत्ता को अराजकता में वदल दिया। स्वतन्त्र राज्य के निर्माण की आकांक्षा के साथ उसने थून का दुर्गीकरण किया और अपने राज्य के विस्तार के लिए एक वार फिर पुराने प्रतिद्वन्द्वी कछवाहा राजा को चुनौती दी। जुलाई १७१४ ई० में उसने भोजपुर से कछवाहा सेना को खदेड़ दिया और अलवर,

---

१. अजायव-उल-अफाक (सीतामऊ संग्रह), पृ० ५५-५७ इसमें छवीलाराम की विफलता तथा स्थानान्तरण में दरवारी राजनीति पर रोचक प्रकाश डाला गया है।

२. लेटर मुग़ल्स, I, पृ० २६२ व ३२३; परवाना वख्शी उल मुल्क द्वारा श्यामसिंह को, आषाढ़ कृष्णा १४, वि० सं० १७७०

३. फ़ा० अख़० कार्तिक कृष्णा १०, १२ व शुक्ला १३ वि० सं० १७७०; कामवर, पृ० ३९९; लेटर मुग़ल्स, I, पृ० ३२३; पार्टीज, पृ० १२३; ज्वाला सहाय (भरतपुर, पृ० २७) और दीक्षित (वृजेन्द्र वंश भास्कर, पृ० २५) के अनुसार सम्राट ने चूड़ामन को पाँच परगने-नुगुर, कठुमर, नदवई, अऊ एवं हेलक तथा उसके साथी खेमा जाट को रूपवास का परगना और भरतपुर के चार गाँव जागीर में दिए।

४. कानूनगो, जाट, पृ० ५१

हिण्डौन, बयाना के अनेक स्थानों पर अपने थाने व गढ़ियाँ क़ायम की।[1] १७१६ ई० के प्रारम्भ में शाही दरबार में यह शिकायत पहुँची कि चूड़ामन परगना थून के ज़मींदारों व मनसबदारों के सभी गांवों से प्रति गांव दो रुपया नज़राना के रूप में वसूल कर रहा है।[2] जून १७१६ ई० में मेवात के फ़ौजदार के विरुद्ध मेव विद्रोहियों की सहायतार्थ सेना भेजकर, सितम्बर में सौंखर सहित १५ गांवों पर अधिकार करके और ४ अक्टूबर को फ़तहपुर सीकरी के मोजा दुलाहरा को लूटकर चूड़ामन ने मुग़ल सत्ता को भी एक बार फिर खुली चुनौती दी।[3]

सवाई जयसिंह का प्रथम थून अभियान

चूड़ामन को दण्डित करने और सैय्यद बन्धुओं के विरुद्ध अपनी स्थिति सुदृढ़ करने हेतु सम्राट फ़र्रुख़सियर ने सितम्बर १७१६ ई० में सवाई जयसिंह को जाटों के विरुद्ध सर्वोच्च कमान सौंपी।[4] उसकी सेना में कोटा का भीमसिंह, बूँदी का बुद्धसिंह, नरवर का राजा गजसिंह,[5] नागौर का राव इन्द्रसिंह, बायज़ीद ख़ान मेवाती आदि अनेक मनसबदार नियुक्त किए गए और बाद में ख़ान-ए-जहाँ को भी एक विशाल सेना देकर उसकी सहायतार्थ भेजा गया।[6] दशहरा के दिन १५

---

१. अर्ज़दाश्त, मोहनसिंह व हरीसिंह की, श्रावण कृष्णा १ वि० सं० १७७१; वाकया, १७ ज़िक़दा, ११२६ हिज्री; इस समय चूड़ामन के राजनैतिक दांवपेंचों के सम्बन्ध में जयपुर के एक दूत दुलीचन्द के एक पत्र से दिलचस्प जानकारी मिलती है। वह लिखता है कि किस प्रकार, "राजपूत भी महाराजा के दुश्मन होते जा रहे हैं। चूड़ामन जाट ने जो भयंकर उपद्रव कर रखा है, उसके साथ नरुका व बाँकावत भी शामिल हैं। जब बादशाह के पास कोई मामला पेश करते हैं तो वह कहता है सैय्यद के पास जाओ, अतः जाट मामले में यहाँ आने के पूर्व महाराजा (सवाई जयसिंह) इस बात पर पूरी तरह से विचार करें। चूड़ामन बादशाह का बन्दा बनकर राजसिंह व खानदौरां के मार्फ़त प्रदेश को लूट रहा है.......।" खतूत अहलकारान, दुलीचन्द द्वारा निहालचन्द को, मार्गशीर्ष कृष्णा ११, वि० सं० १७७२

२. वाकया, २४ सफर, ११२८ हिज्री

३. वाकया, १६ व २९ रबी-उस-सानी, १९ व २८ शव्वाल, ११२८ हिज्री

४. सियार, I, पृ० १३९; कवि आत्माराम, सवाई जयसिंह चरित, पृ० ५६; अहवाल-ए-सलातीन-ए-मुतख़रीन (सीतामऊ प्रति), पृ० ५९

५. कवि जदुनाथ, खांडेराव रासो (पा० लि० सीतामऊ प्रति), I, २८८ एवं II, ३९९।

६. शिवदास, शाहनामा-ए-मुनव्वर-उल-कलाम (इरविन द्वारा उद्धृत), पृ० ११ ब; वंश भास्कर, पृ० ३०५९; मा० उलउमरा, I, पृ० १२४; ख़ान-ए-जहाँ सैय्यद मुज़फ़्फ़र ख़ान अजमेर का सूबेदार तथा सैय्यद बन्धुओं का मामा था, जो जून १७१७ ई० में थून के लिए रवाना हुआ था, लेटर मुग़ल्स, I, पृ० ३२५

सितम्बर को जयसिंह थून के लिए रवाना हुआ, और होडल, पलवल, सराय छाता मथुरा होते हुए कामां की ओर बढ़ा।[१]

चूड़ामन ने भी थून व डीग सहित अनेक दुर्गों को युद्ध सामग्री से सुसज्जित कर युद्ध की तैयारी की।[२] कहा जाता है कि उसने थून के क़िले के अन्दर इतनी खाद्य-सामग्री एकत्र कर ली थी, जो बीस वर्षों के लिए पर्याप्त थी।[३] मेवाती तथा अफ़गान सैनिकों को उसने अपनी सेना में भरती किया।[४] शक्ति प्रदर्शन जारी रखने, शाही सेना को छकाने और संघर्ष को थून में केन्द्रित न होने देने के लिए उसने अपने भतीजे बदनसिंह, रूपसिंह व तुलाराम[५] तथा पुत्रों मोहकमसिंह व जुलकरण और अपने महत्वपूर्ण साथी खेमा जाट,[६] दयाराम[७] आदि के नेतृत्व में छापामार सैनिक दस्तों को बीहड़ जंगलों व शाही मार्गों पर छित्तरा दिया। चूड़ामन स्वयं सात हज़ार सेना के साथ थून दुर्ग के भीतर जा बैठा।

थून पहुँचने के पूर्व जयसिंह को १३ अक्तूबर को बहरोड़ में मोहकमसिंह[८] और १७ तारीख को राधाकुण्ड में बदनसिंह की सेना[९] का सामना करना पड़ा। ६ नवम्बर को लगभग ५० हज़ार सेना के साथ जयसिंह ने थून का घेरा आरम्भ किया,[१०] जो अप्रैल १७१८ ई० तक चलता रहा। २१ नवम्बर (१७१७) को मूँड़हेड़ा के भीषण युद्ध में चूड़ामन का भाई अनीराम मारा गया और भतीजा रूपसिंह घायल हुआ।[११]

---

१. मुतफ़र्रिक महाराजगान, जयसिंह द्वारा शम्सुद्दौला व कुतुबुलमुल्क को, १६ व १६ शव्वाल, ११२८ हिज्री; जयसिंह चरित, पृ० ५७
२. सियाहा, २ ज़िकदा ११२८ हिज्री; वाकया, १३ जिकदा ११२८ हिज्री
३. कामवर, पृ० १६८; शिवदास, पृ० १२ ब; लेटर मुग़ल्स, I, पृ० ३२४
४. पार्टीज, पृ० १२४
५. राजाराम जाट का पुत्र, दस्तूर कौमवार, जि० VII, पृ० ३८५
६. यह तुहिया सरदार रुस्तम सोगरिया का पुत्र था, जिसने वर्तमान भरतपुर के स्थान पर मिट्टी का दुर्ग बनाया था और प्रारम्भ से ही अपने पुत्र खेमा को चूड़ामन के दल में सम्मिलित होने के लिए थून भेज दिया था, ज्वाला सहाय, पृ० २७
७. नन्दा जाट का पौत्र एवं भूरेसिंह का पुत्र, ख़तूत अहलकारान, मार्गशीर्ष कृष्णा १, वि० सं० १७७५
८. वाकया, ८ ज़िकदा, ११२८ हिज्री
९. सियाहा, १२ ज़िकदा, ११२८ हिज्री
१०. कामवर, पृ० ४१८
११. वाकया, १७ ज़िलहिज्ज, ११२८ हिज्री; जयसिंह चरित, पृ० ५७-५८

चूड़ामन का फौलादी प्रतिरोध एवं कूटनीतिक सफलता

जयसिंह की मन्थर गति से अधीर होकर सम्राट फ़र्रुख़सियर ने उसे तुरन्त कार्यवाही करने पर ज़ोर डाला।[१] उसकी सहायतार्थ आगरा के नायब सूबेदार नुसरत यारख़ान[२] को भेजा तथा भारी मात्रा में शस्त्र सामग्री एवं बड़ी तोपें भेजी गईं।[३] १७१७ ई० में मई-जून के भीषण युद्धों के बावजूद वह कोई निर्णायक सफलता प्राप्त करने में असफल रहा।[४] इसके विपरीत उसके मोर्चे, रसद और शाही मार्ग जाटों की निरन्तर लूटपाट के शिकार बने रहे।[५]

निस्सन्देह कछवाहा राजा सवाई जयसिंह एक विशाल सेना एवं शस्त्र सामग्री के साथ सेनापतित्व के श्रेष्ठ गुणों से सज्जित था, किन्तु उसका सामना एक ऐसे जन्मजात विद्रोही से था, जो अपने पूर्ववर्ती जाट नेताओं की अपेक्षा अधिक सैनिक एवं राजनीतिक योग्यता रखता था, जो युद्ध एवं कूटनीति की मुग़ल शैली से पूर्ण परिचित था और जिसमें सैनिक संगठन की आश्चर्यजनक क्षमता थी। डेढ़ वर्ष तक सफल फौलादी प्रतिरोध एवं आक्रमण की निरन्तरता बनाए रखकर जीवट चूड़ामन ने नवोदित जाट राज्य के लिए सुरक्षा की ऐसी मिसाल क़ायम की, जिसके बल पर ही आने वाले समय में जाट मराठों के विरुद्ध कुम्हेर तथा लार्ड लेक के विरुद्ध भरतपुर की रक्षा कर सके थे।

सामरिक क्षेत्र में जब जयसिंह थून की दुर्जेय दीवार को तोड़ने की असफल कोशिशों में जी जान से जुटा हुआ था, तभी चूड़ामन ने अपने आपको राजनैतिक दृष्टि से सुरक्षित करने के प्रयास प्रारम्भ कर दिए थे। इस दृष्टि से दरबारी गुटबन्दी में सैय्यद बन्धुओं से उसका गठजोड़ उसकी मुक्ति के लिए वरदान सिद्ध हुआ। स्वयं वज़ीर अब्दुल्लाह ख़ान, जो जयसिंह से इस बात पर रुष्ट था कि सम्राट का समर्थन पा जाने पर उसने उसकी उपेक्षा की, ने भी प्रारम्भ से ही उसकी सफलता के मार्ग में रुकावटें डाली।[६] सैय्यद मुज़फ़्फ़र ख़ान को थून भिजवाना

---

१. पार्टीज, पृ० १२४; एच० सी० टिक्कीवाल, जयपुर एण्ड दि लेटर मुग़ल्स, पृ० ६०
२. फ़रमान, कपटद्वारा, संख्या १५६ आर०
३. लेटर मुग़ल्स, I, पृ० ३२५; सियाहा, ७ जमादि-उस-सानी व १० रजब, ११२६ हिज्री
४. इन दो महीनों में प्रतिदिन के युद्धों का विस्तृत विवरण बीकानेर अभिलेखागार में सुरक्षित विभिन्न पत्रों (सियाहा एवं वाकया) से मिलता है।
५. सियार, I, पृ० १३६; सियाहा, १० रजब, ११२६ हिज्री
६. मिर्जा मोहम्मद, इबरतनामा (सीतामऊ प्रति), पृ० १७५

वस्तुत: घेरे को विफल करने की उसकी योजना का ही अंग था।[1] अन्ततोगत्वा चूड़ामन ने जयसिंह को वार्ता से अलग रखने की शर्त पर समझौते की इच्छा प्रकट की। थून के प्रश्न पर गतिरोध[2] के पश्चात् सम्राट ने भी अनमने भाव से इस समझौते को स्वीकृति प्रदान की[3] और एक फ़रमान जारी करके जयसिंह को युद्ध बन्द करने के आदेश दे दिए।[4] इससे जयसिंह को अत्यधिक मानसिक पीड़ा हुई, क्योंकि वह यह समझ रहा था कि विजय उसकी पकड़ में थी, तभी विजय का फल उससे छीन लिया गया।[5] ६ अप्रैल को चूड़ामन दरवार में उपस्थित हुआ। सम्राट उपेक्षापूर्वक उससे मिला और ५० लाख रुपया शाही कोष में जमा कराने की शर्त पर चूड़ामन को क्षमा कर दिया गया।[6]

सम्राट निर्माताओं का साथी

थून के युद्ध ने चूड़ामन की सैय्यद वन्धुओं से मित्रता को सुदृढ़ किया, जो ठोस राजनैतिक हितों की अनिवार्यता पर आधारित थी। चूड़ामन को सैय्यदों के रूप में दरवार में उच्च स्तर पर एक ऐसा संरक्षक मिल गया, जिनके वल पर वह अपने मुख्य प्रतिद्वन्द्वी कछवाहा राजा, जिसे सम्राट का समर्थन प्राप्त था, की किसी भी चाल को विफल कर सकता था, जवकि सैय्यदों को सम्राट के विरुद्ध भावी संघर्ष के लिए चूड़ामन के रूप में एक सशक्त समर्थक मिल गया था।

सम्राट फ़र्रुखसियर की पदच्युति से लेकर मोहम्मदशाह को सिंहासन पर विठाने के सैय्यद वन्धुओं के कार्य में चूड़ामन ने अपनी पूरी निष्ठा एवं शक्ति से उनका साथ दिया। आगरा में नेकुसियर के विद्रोह के दमन कार्य में चूड़ामन को

१. अजायव उल अफ़ाक, पृ० १२३; मिर्जा मोहम्मद का यह आरोप द्वेषपूर्ण लगता है कि मुज़फ़्फ़र ख़ान ने वज़ीर के इशारे से चूड़ामन को गुप्त रूप से रसद व वारूद भेजकर सहयोग किया, देखें, इवरतनामा, पृ० १७६

२. मूँड़हेड़ा की जाट युद्ध परिषद् ने विना लड़े थून दुर्ग समर्पित न करने का निर्णय किया था (खतूत अहलकारान, मार्गशीर्ष कृष्णा १० वि० सं० १७७५), किन्तु ख़ानेजहाँ के विरोध के कारण चूड़ामन को झुकना पड़ा था, अजायव उल अफ़ाक, पृ० ८३

३. ख़ाफ़ी ख़ाँ, II, पृ० ७७६

४. शिवदास (पृ० १४ व-१५ व) ने सम्वन्धित फ़रमान व हस्व-उल-हुक्म की नक़ल दी है।

५. भटनागर, जयसिंह, पृ० १२८

६. मिर्जा मोहम्मद, पृ० १७८; सियार, I, पृ० १४०; अहवाल सलातीन, पृ० ५६, मा० उल उमरा, I, पृ० १२५

एक महत्वपूर्ण पद पर नियुक्त कर दिया गया था, जिसकी सफलता पर उसे दिल्ली से ग्वालियर तक के शाही मार्ग की राहदारी पुनः सौंप दी गई।[1] इस समय चूड़ामन अपनी शक्ति के शिखर पर था। राज निर्माताओ के सहयोग से उसने न केवल अपनी तथा अपने साथियों की पुरानी जमीदारियाँ पुनः प्राप्त की, वल्कि नवीन जागीरें प्राप्त करके उसने अपने राज्य का अधिकतम विस्तार कर लिया था।[2]

हुसनपुर का युद्ध

२८ सितम्बर १७२० ई० को शाही डेरे में हुसैन अली की हत्या के समय चूड़ामन अधिक कुछ नही कर सका[3] और विपरीत परिस्थितियों में उसने कपटपूर्वक सम्राट के साथ ही रहने का निश्चय किया।[4] १ नवम्बर को हसनपुर के मैदान में चूड़ामन ने अपनी योजना के अनुसार शाही पक्ष त्यागने के पूर्व, वारूदखाने में आग लगाने का भरसक प्रयास किया, किन्तु सफलता नहीं मिली।[5] युद्ध के दिन (३ नवम्बर) उसने अपने भीषण हमलों व लूटमार द्वारा शाही सेना और डेरे के अनुयायियों को आतंकित कर दिया था। किन्तु जैसे ही वज़ीर अब्दुल्लाह खान की पराजय निश्चित जान पड़ी, वह अपनी पुरानी शैली के अनुसार दोनो पक्षों को लूटते हुए अपने प्रदेश की ओर चल पड़ा।[6]

हसनपुर के युद्ध के वाद सम्राट के प्रतिशोध को अवश्यम्भावी जानकर चूड़ामन अब खुले तौर पर स्वतन्त्र राजा की तरह आचरण करने लगा। १७२१ ई०

---

१. कानूनगो, जाट, पृ० ५५; लेटर मुग़ल्स, I, पृ० ४१३-१४; सतीशचन्द्र, वालमुकुन्दनामा, पृ० १०२-१०३

२. अर्जदाश्त, श्रावण शुक्ला ८, वि० सं० १७७६ (वायजीद खान द्वारा जयसिंह को); कामराज (इवरतनामा, पृ० ६८ अ) के अनुसार चूड़ामन को इस समय उपहार में जो प्रदेश दिया गया, उसे पार करने में वीस दिन लगते थे और जो दिल्ली के वाहर वारापुला से लेकर ग्वालियर की सीमा तक फैला हुआ था। यह उल्लेख संभवतः उसे इस प्रदेश की राहदारी दिए जाने के सन्दर्भ में किया गया है, देखें, लेटर मुग़ल्स, I, पृ० ४१३

३. मुहम्मद कासिम लाहौरी, इवरतनामा, पृ० ३५४; खुशालचन्द, नादिर-उज़-जमानी, पृ० १००६ व (इरविन द्वारा उद्धृत)

४. कासिम, पृ० ३६६

५. सियार, I, पृ० २६३; अहवाल सलातीन, पृ० १०५; ख़ाफ़ी खां, II, पृ० ९१७; मा० उल उमरा, I, पृ० १२५

६. 'रुस्तम अली' तारीख़-ए-हिन्द (सीतामऊ प्रति), पृ० ४८८-८९; सियार, I, पृ० २७१; ख़ाफ़ी खां, II, पृ० ९२१

में उसने सआदत ख़ान के विरुद्ध अजीतसिंह राठौड़ और बाद में इलाहाबाद के सूबेदार मुहम्मद ख़ान बंगश के सेनापति दिलेर ख़ान के विरुद्ध बुन्देलों की सहायतार्थ सेना भेजी।[१] आगरा के नवनियुक्त सूबेदार सआदत ख़ान के निर्देश पर उसका नायब नीलकण्ठ नागर जाटों को दण्डित करने गया। १६ सितम्बर १७२१ को फ़तहपुर सीकरी के निकट युद्ध में चूड़ामन के पुत्र मोहकमसिंह के हाथों शाही सेना पराजित हुई और नीलकण्ठ नागर मारा गया।[२]

चूड़ामन की मृत्यु (सितम्बर १७२१ ई०)

लगभग इसी समय चूड़ामन के पुत्र मोहकमसिंह और भतीजे बदनसिंह के बीच सम्पत्ति और जमींदारी के बंटवारे को लेकर महत्वाकांक्षाओं का संघर्ष फूट पड़ा। जब चूड़ामन ने न्यायोचित ढंग से अपने पुत्र को समझाने का प्रयास किया तो उसे अपने उग्र स्वभावी पुत्र द्वारा अपमानित होना पड़ा।[३] इस अपमान और पारिवारिक फूट को सहन न कर पाने के कारण सितम्बर १७२१[४] ई०के अन्त में चूड़ामन ने विष खाकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी।

---

१. लेटर मुग़ल्स, II, पृ० १२१; पार्टीज, पृ० १७७

२. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, फ़र्स्ट टू नवाब्स ऑफ अवध, पृ० २६; लेटर मुग़ल्स, II, पृ० १२१; गुलाम हुसैन का विवरण भ्रान्तिपूर्ण है, देखें, सियार, I, पृ० ३२८

३. गुलाम हुसैन लिखता है, "मोहकमसिंह अपने पिता के प्रति सम्मान को भूल गया और अपशब्दों का प्रयोग किया। पिता पुत्र को दण्डित करने की अपेक्षा, स्वयं जहर लेकर मृत्यु को प्राप्त हुआ।" (सियार, I, पृ० ३२९) शिवदास (पृ० ७८ ब) और गुलाम अली (मुकदम ए शाह आलमनामा, पृ० ४६ ब) इसकी पुष्टि करते हुए एक नई कहानी जोड़ते हैं, जिसके अनुसार सम्पत्ति को लेकर जुलकरण व मोहकम के बीच संघर्ष और बाद में मोहकम व चूड़ामन के बीच उत्तेजनात्मक वाद विवाद हुआ। किन्तु फ्रैंज गोटलियब (पृ० १४ ब १५ अ) के विवरण और बाद की घटनाओं (जिनमें मोहकम द्वारा बदनसिंह की गिरफ्तारी भी है) से पता चलता है कि इस पारिवारिक संघर्ष के मूल में मोहकम तथा बदनसिंह की प्रतिद्वन्द्विता ही थी।

४. मिर्ज़ा मोहम्मद के अनुसार चूड़ामन ज़िलहिज्ज (सितम्बर-अक्टूबर) मास में, जब वह अपने पुत्रों थानसिंह व मोहकमसिंह, जो लड़ रहे थे, के बीच समझौता कराने गया, मारा गया (तारीख़-ए-मुहम्मदी, पृ० ११३३)। रिवज्र खान (सवाना-ए-खिज्र) व हरसुखराय का यह कथन गलत है कि जयसिंह के थून पर दूसरे आक्रमण के बाद चूड़ामन की मृत्यु हुई। ख़ाफ़ी ख़ाँ व शिवदास जैसे सामयिक इतिहासकारों के विवरणों से यह निश्चित है कि चूड़ामन की मृत्यु थून पर द्वितीय आक्रमण के पूर्व हो चुकी थी। दस्तूर कौमवार (जि० VII, पृ० ३५५) से पता चलता है कि कार्तिक कृष्णा ६ वि० सं० १७७८ को जब जुलकरण दिल्ली स्थित जयसिंह के डेरे पर गया तो उसे चूड़ामन की मातमी का सिरोपांव प्रदान किया गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि चूड़ामन की मृत्यु ३० सितम्बर १७२१ ई० के पूर्व ही हो चुकी थी।

जयसिंह द्वारा थून का द्वितीय अभियान

चूड़ामन की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी मोहकमसिंह ने सर्वप्रथम अपने प्रतिद्वन्द्वी बदनसिंह को क़ैद में डाल दिया, जो प्रमुख जाट सरदारों के हस्तक्षेप के बाद ही मुक्त हो सका।[1] गिरफ्तारी के दौरान अपनी रिहाई और मोहकम से अपने अपमान का बदला लेने हेतु बदनसिंह ने अपने भाई रूपसिंह को सआदत ख़ान के पास आगरा[2] और अपने पुत्र सूरजमल को सवाई जयसिंह के पास दिल्ली[3] भेजा था। जाटों की इस पारिवारिक फूट ने जयसिंह को एक बार फिर जाट दमन के कार्य को हाथ में लेकर पुराने कलंक को धो डालने के लिए प्रोत्साहित किया। यह कार्य उसने ख़ान-ए-दौरां के मार्फ़त किया।[4]

शाही दरबार से जाट अभियान की कमान और आगरा की सूबेदारी मिलने पर अगस्त १७२२ ई० के अन्त में सवाई जयसिंह लगभग ५० हजार सेना के साथ थून की ओर चल पड़ा।[5] २४ सितम्बर को जब वह थून के निकट पहुँचा तब

---

१. फ़ैज गोटलियब, पृ० १४ब-१५ब; जयसिंह चरित (पृ० ६७) से पता चलता है कि जयसिंह के आक्रमण की ख़बर मिलने के बाद ही मोहकम ने बदनसिंह को छोड़ा था।

२. लेटर मुग़ल्स, II, पृ० १२१; फ़र्स्ट टू नवाब, पृ० २७; सूदन के निम्न दोहे से पता चलता है कि सम्भवतः इसी समय रूपसिंह और सआदत ख़ान की मित्रता स्थापित हुई थी। सफदरजंग सूरजमल को कहता है—

रूपसिंह तेरा चचा और सआदत ख़ान।
है सलूक दर पुस्त से दूना किया सुजान। सुजान चरित्र, पृ०६७

३. दस्तूर कौमवार, जि० VII, पृ० ३५५ व ५३५

४. फ़रमान, कपटद्वारा, संख्या ११६; गुलाम अली, पृ० ४६ अ; सियार, I, पृ० ३२६; कवि आत्माराम लिखता है—

बदनसिंह को मोहकमां, छल करि लीन्हों धारि।
ताके लोगनि भूप सौं, करी फिरादि पुकारि॥
महाराज तब साहि सौं, कही कथा यह जाई।
हुकुम होय तो थूनि फिरि, दीजै तूरि वहाई॥
जयसिंह चरित, पृ० ६६

५. फ़रमान, कपटद्वारा, संख्या ३६;
लेटर मुग़ल्स, II, पृ० १२३;
भटनागर, जयसिंह, पृ० १६३

बदनसिंह अपने पूरे दलबल के साथ आकर उससे मिल गया।[1] इस बार जाट के विरुद्ध जाट था,[2] अतः जयसिंह का कार्य आसान हो गया। मोहकमसिंह थून में बुरी तरह से घिर गया और बदनसिंह उसके अनेक साथियों को तोड़ने में सफल हुआ। मोहकम ने अपने पिता के मित्र जोधपुर के राजा अजीतसिंह को भी सहायतार्थ शीघ्र सेना भेजने का अनुरोध किया।[3] अत्यधिक निराशाजनक परिस्थितियों में, क़िले में सुरंगें व बारूद्ध फैलाकर, १७ नवम्बर की रात्रि को मोहकम थून के दुर्ग से निकल भागा।[4] अगले दिन जयसिंह ने विजेता के रूप में बदनसिंह के साथ दुर्ग में प्रवेश किया[5] और पिछली पराजय के प्रतिशोध के रूप में दुर्ग को मिट्टी में मिलाकर उस पर गधे चलवा दिए।[6]

---

१. दस्तूर कौमवार, जि० VII, पृ० ४३५;
   जयसिंह चरित, पृ० ६७
२. मैलिसन, पृ० ६८
३. अर्ज़दाश्त, पंचोली रायचन्द द्वारा जयसिंह को, कार्तिक कृष्णा १५, वि० सं० १७७६ (२८ अक्टूबर १७२२ ई०)
४. फ़ैंज गोटलियब, पृ० १७ अ व ब; सियार, I, पृ० ३३०; ख़ाफ़ी ख़ाँ, II, पृ० ६४४; मा० उल उमरा, I, पृ० १२७; कवि आत्माराम के अनुसार दक्षिण से निज़ामुल्मुल्क के आने की ख़बर मिलने पर मोहकम थून से निकल भागा—

   चलत कलीजहि दच्छिन राह। व्हाँ ते कूचु कियौ नरनाह।
   आइ सीकरी डेरा पर्‌यौ। सुनत मोहकमाँ बहुर्‌यौ डर्‌यौ॥
   भज्यौ तहाँ ऊं तें अकुलाई। निकस्यौ उतै पोहरी जाइ।
   जयसिंह चरित, पृ० ६६

   सूर्यमल्ल मिश्रण इस घटना का वर्णन इस प्रकार करता है—

   चूड़ामनि सुत मुहकम्म जट्ट, इन दिनन बहुरी लग्गो कुवट्ट।
   करि लूट मुल्क सिर छाल्लि धत्त, मरूईस सरन मरूदेसपत्त॥
   जयसिंह बदन जट्टहि सहेत, बहुभुव दिवाय थूहनि समेत।
   व्है साह हितु मुहकम हराम, यातें पलाय गय धन्व धाय॥
   वंश भास्कर, पृ० ३०८०-८१
५. सुरंगें फटने के ख़तरे की चेतावनी देकर बदनसिंह ने जयसिंह के दुर्ग में तत्काल प्रवेश को रोककर उसके जीवन की रक्षा की थी (फ़ैंज गोटलियब, पृ० १८ अ व ब)। कहा जाता है कि तभी से थून का क़िला 'औंधा थून' कहलाता है। थून के इस युद्ध के बारे में एक रोचक दोहा प्रचलित है—

   लेन चहति है दिल्ली आगरा घर की थून दई।
   बन्धु वैर अनबन के कारण कैसी कुमति ढई॥
   बृजेन्द्र वंश भास्कर, पृ० ३०
६. मजमाउल अख़बार (इलियट, जि० VIII, पृ० २७१);
   फ़ैंज गोटलियब, पृ० १८ ब।

अध्याय—३

जाट राज्य की स्थापना
और
सूरजमल का प्रारम्भिक जीवन
(१७२२—१७४८ ई०)

जाट राज्य की स्थापना और सूरजमल का प्रारम्भिक जीवन (१७२२-१७४८ ई०)

जाट राज्य का संस्थापक बदनसिंह

थून की विजय के बाद चूड़ामन की जमींदारी और जाटों का नेतृत्व बदनसिंह को प्राप्त हुआ। बदनसिंह ने २३ नवम्बर १७२२ ई० को औपचारिक रूप से अपने को जयपुर दरबार का विनम्र एवं निष्ठावान सामन्त बना दिया और सवाई जयसिंह की मार्फ़त शाही अधीनता स्वीकार की।[1] नवगठित जाट राज्य की राजधानी थून के स्थान पर डीग बना दी गई। जयसिंह ने बदनसिंह को राजा (ब्रजराज) की उपाधि से सम्मानित किया, किन्तु शाही मान्यता के अभाव में उसने अपने को ठाकुर कहलवाना ही पसन्द किया।[2] जयसिंह ने जो उस समय आगरा का सूबेदार था[3], बदनसिंह को नगाड़ा, निशान व पंचरंगी झण्डे के प्रयोग की अनुमति, और आगरा क़स्बे की कोतवाली प्रदान की।[4] इसके अलावा उसे मथुरा, वृन्दावन, महावन, हिसार, छाता, कोसी व होडल इत्यादि परगने, जिनकी कुल राजस्व आय ५०-६० लाख रुपये थी, जागीर में दिए गए।[5] १९ जून १७२५ ई० को सम्पन्न

१. दस्तूर कौमवार, जि० VII, पृ० ४३६; कपटद्वारा दस्तावेज़ संख्या १४०६
२. जदुनाथ सरकार, हिस्ट्री ऑफ दि जयपुर स्टेट (अप्रकाशित, सीतामऊ संग्रह), पृ० २३-२४; १७३० ई० में जब सरबुलन्द खाँ ने गुजरात से आगरा की यात्रा के दौरान जाट क्षेत्र में पड़ाव डाला था, तब बदनसिंह ने उससे राजा की पदवी दिलाने की प्रार्थना की थी, देखें, लेटर मुग़ल्स, जि० II, पृ० २१३-१४
३. सरकार, जयपुर, पृ० २१
४. शर्मा, जयपुर, पृ० १४४; टिक्कीवाल, पृ० ६४; फ्रेंज गोटलियब (पृ० १८ ब) लिखता है कि उसे सिक्के ढालने का अधिकार भी दिया गया।
५. फ्रेंज गोटलियब, पृ० १८ ब

समझौते के अनुसार बदनसिंह ने जयसिंह को प्रतिवर्ष ८३,००० रुपये पेशकश देना स्वीकार किया।[1]

उदार शासन की स्थापना

इस प्रकार बदनसिंह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य मुग़लों से मान्यता प्राप्त शान्तिप्रिय जाट राज्य की स्थापना था। दीर्घकाल के पश्चात् इस क्षेत्र में संघर्ष एवं अराजकता का दौर समाप्त हुआ और किसान शान्तिपूर्वक कृषिकार्य की ओर प्रवृत हुए। सरकार का यह कथन भ्रान्तिपूर्ण है कि राजाराम व चूड़ामन के कार्य का चिन्ह भी नहीं बचा और बदनसिंह को सब कुछ नये सिरे से शुरू करना पड़ा।[2] इसके विपरीत बदनसिंह की दूरदर्शिता ने न केवल नवोदित जाट राज्य को पूर्ण विनाश से बचाया, बल्कि अब तक विकसित जाट शक्ति को कानूनी जामा पहनाकर उसे पूर्ण सुरक्षा प्रदान की।

ठाकुर बदनसिंह का कार्य अपने पूर्वजों द्वारा अधिकृत क्षेत्र को एक वैध शासन के साथ व्यवस्थित राज्य में परिणित करने का था। यह कार्य आसान नहीं था, फिर भी वह इस कार्य में वर्षों के धैर्य-पूर्वक परिश्रम एवं युक्तिपूर्ण प्रशासन के बाद मुख्य रूप से सफल रहा। 'हम ऐसा कुछ नहीं सुनते हैं कि उसने कोई कूटनीतिक गतिविधि अथवा हथियारों से शानदार महान् कार्य किया हो।[3] वस्तुत: वह विजयों की अपेक्षा राज्य के शान्तिपूर्ण विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण की नीति में अधिक विश्वास रखता था।

बदली हुई परिस्थितियों में बदनसिंह की नई नीति जाट राज्य के लिए हितकर सिद्ध हुई। मोहकमसिंह के हठीले स्वभाव से उत्पन्न जाट फूट को उसने अपने उदार व्यवहार से जाट एकता में बदल दिया।[4] अपनी विनम्रता, सदाशयता एवं निष्ठा द्वारा उसने सवाई जयसिंह के दिल को जीत लिया। इसी कृपा के बल पर उसे चूड़ामन की जमींदारी का अधिकांश भूभाग तनख्वाह जागीर के रूप में मिल गया था।

---

१. कपटद्वारा दस्तावेज़ संख्या १४०६

२. सरकार, पतन, ।।, पृ० २८७

३. कानूनगो, जाट, पृ० ६०

४. इसके बाद मोहकमसिंह और खेमा जाट के व्यक्तिगत विरोध के अलावा जाटों में आन्तरिक फूट का कोई उदाहरण नहीं मिलता। अधिकांश जाट सरदारों ने बदनसिंह के नए नेतृत्व के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त कर दी थी।

जाट-कछवाहा सम्बन्धों में नया मोड़

बदनसिंह की राजनीति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू जाट-कछवाहों की पुश्तैनी शत्रुता का घनिष्ठ मैत्री मे परिवर्तन था। यद्यपि बदनसिंह जाट राज्य की प्राप्ति के कारण जयसिंह का आभारी था, तथापि उसने इस तथ्य को भलीभांति समझा कि मुग़ल दरबार की अस्थिर गुटबन्दी में उलझने की अपेक्षा कछवाहों की स्थाई मित्रता प्राप्त करना सही क़दम रहेगा। इसके अलावा खेमा जाट का निरन्तर विरोध[1] तथा राठौड़ों की सहायता से मोहकम द्वारा अपनी जागीर की वापसी के प्रयासों का ख़तरा[2] अभी भी बदनसिंह के सामने जीवित था। अतः बदनसिंह ने संरक्षक स्वामी के रूप में सवाई जयसिंह के प्रति पूर्ण निष्ठाभाव रखा और बदले में जयसिंह ने भी उसके प्रति सम्मान एवं मैत्रीभाव प्रदर्शित किया।[3] जयसिंह के अन्य

---

१. चूड़ामन का अभिन्न साथी खेमकरण जाट बदनसिंह के लिए भारी ख़तरा बना हुआ था। इस शक्तिशाली जाट सरदार ने बदनसिंह से विरोध जारी रखा और १७२६ ई० में उसके आतंक के कारण बदनसिंह को जयपुर से तुरन्त सैन्य सहायता की याचना करनी पड़ी, देखें, आमेर रिकार्ड, शिवदास द्वारा राजा अयामल को, वैशाख शुक्ला ४ वि० स० १७८३।

२. १८ नवम्बर १७२२ ई० को थून से भागकर मोहकम ने सीधे मारवाड़ के राठौड़ राजा (अपने पिता के मित्र) अजीतसिंह के यहां शरण ली थी। बाद में वह दक्षिण जाकर होल्कर की सेना में शामिल हो गया था। दिसम्बर १७५३ ई० में उसने शाही राजधानी में अकीबत महमूद के मार्फ़त वजीर इमाद से मित्रता की और उसे सूरजमल से अपनी जागीर की वापसी के बदले दो करोड़ रुपया देने का वायदा करके सम्राट अहमदशाह से भेंट की। बाद में इमाद के साथ वह कुम्हेर पहुँचा और सूरजमल के विरुद्ध मराठा आक्रमण में सम्मिलित हो गया। किन्तु घेरे की विफलता के बाद असहाय अवस्था में वह सूरजमल के पास आया। सूरजमल ने पूरे सम्मान के साथ उसका स्वागत किया और अपने राज्य के सभी तालुकों से प्रति गांव एक रुपया उसे देना निश्चत किया। देखें, लेटर मुग़ल्स, ।।, पृ० १२४; फ़ैंज गोटलियब, पृ० १६ ब; तारीख़-ए-अहमदशाही (सरकार प्रतिलिपि), पृ० ६४ ब एवं १०३ अ

३. कवि सूदन के अनुसार ईश्वरीसिंह सूरजमल को विदा करते समय बदनसिंह के लिये निम्न संदेश देता है—

ज्यों जैसाहि नरेस करत कृपा तुव देश पैं।
त्यों व्रजेस बदनेस करत रहौ हम पर कृपा ।।१५।।

सुजान चरित्र , पृ० ४०

सामन्तों तथा वदनसिंह की स्थिति में एक महत्वपूर्ण अन्तर यह था कि वदनसिंह जयपुर राजा के भूभाग में सामन्त नहीं था, बल्कि उसे मुग़ल साम्राज्य के खालसा भूभाग में जमींदारी दी गई थी।

वदनसिंह प्रायः जयसिंह के दशहरा दरबार में उपस्थित रहा करता था और उसने जयसिंह की नई राजधानी में अपने निवास के लिए हवेली का निर्माण भी करवाया। उसकी हवेली के आसपास का क्षेत्र उसके नाम पर वदनपुरा कहलाने लगा। जयसिंह भी मुग़ल दरबार में आते जाते वक्त वदनसिंह से मिजने अवश्य जाता था।[1] किन्तु वैण्डल के अनुसार जब कभी मुगल सम्राट वदनसिंह को अपने दरबार में बुलाता था, तब वह यह कहकर क्षमा मांग लिया करता था कि मैं तो साधारण किसान हूं।[2] एक मार्च १७३१ ई० को जयसिंह ने मथुरा में वदनसिंह को राव का ख़िताब प्रदान किया।[3] ६ अप्रेल १७३२ ई० को उनकी भेंट का विवरण समकालीन स्याहा वकाया काग़ज़ात में इस प्रकार मिलता है, "संवत् १७८८ मिती वैशाख वदी ७ ने मुकाम थूणी च्यार घड़ी दिन चढ़या श्री जी सवार होय वदनसिंह जाट के डीग में डेरे पधारया बदनसिंह पावंड़ा किया मोहर नौ हज़ार व हाथी व घोड़ा तोरा गाँव वगैरह नज़र किया अरज करी महाराजा सलामत सारी वस्त नज़र छै दस बीघा धरती व घोड़ी एक चढ़वाने पानु जब महाराज फरमाई नजर मांही की छै मोहर में सूं मोहर एक उठाय राखी तोरा मांही चौरो एक आपणा हाथ सों उठाय वदनसिंह के माथे बांध्यो अर सारी नजर माफ़ करी घड़ी एक विराज्या पाछै सवार होय थूण का डेरा आय विराज्या।"[4] दोनों के मध्य अन्तिम भेंट का विवरण ५ फरवरी १७४१ ई० का मिलता है, जब जयसिंह वदनसिंह के डीग स्थित डेरे पर गया था।[5]

---

१. इन भेंटों का विवरण इस प्रकार मिलता है : २ सितम्बर १७२५ ई० (सीकर), ४ अप्रैल १७२७ ई० (सहार व डीग), ३ जुलाई १७२७ ई० (टोड़ा), २४ सितम्बर १७२७ ई० (आमेर), ६ फरवरी व २४ अक्टूबर १७२६ ई० व मार्च १७३१ ई० (मथुरा), ६ अप्रैल १७३२ ई० (थून), १२ अक्टूबर १७३४ ई० एवं २४ सितम्बर १७३५ ई०, १२ नवम्बर १७३७ ई०, १६ मार्च १७३६ ई० और ५ फरवरी १७४१ ई० (डीग), दस्तूर कौमवार, जि० X, पृ० १२२०; भटनागर, जयसिंह, पृ० १६५

२. सरकार, पतन, II, पृ० २६८

३. दस्तूर कौमवार, जि० VII, पृ० ४४०

४. वही, जि. VII, पृ० ४४२

५. वही, जि. VII, पृ० ४४४

प्रभाव क्षेत्र का विस्तार

मुग़लों से प्राप्त वैधानिक सरक्षण और सवाई जयसिंह की मैत्रीपूर्ण सुरक्षा की छाया में बदनसिंह ने अपने राज्य का सुदृढ़ीकरण किया और जब भी अवसर मिला, उसके विस्तार की दिशा में अग्रसर रहा। उसने डीग में न केवल सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण करवाया बल्कि वहाँ अनेक भव्य महलों की स्थापना कर उसे जाट राजधानी के उपयुक्त बनाया। इसी प्रकार थून व सिनसिनी के पुराने क़िलों के स्थान पर अब कुम्हेर और वैर में सैनिक महत्व के नवीन दुर्गों के निर्माण के आदेश दिए गए। वैवाहिक सम्बन्धों के द्वारा भी बदनसिंह को अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने में मदद मिली। उसने कामर के धनी एव प्रभावशाली व्यक्ति चौधरी महाराम की पुत्री और सहार के जमींदार की पुत्री से विवाह करके व्यवहारतः अपने को मथुरा जिले का स्वामी बना दिया।[1]

१७२३ ई० में सवाई जयसिंह ने आगरा के सूबेदार की हैसियत से शाही मार्गों की गश्त और राहदारी वसूल करने का कार्य जाटों को सौंप दिया था, इस कारण जाटों को एक बार फिर दिल्ली-आगरा के निकट अपना प्रभाव बढ़ाने की खुली छूट मिल गई।[2] यद्यपि बदनसिंह की स्वयं की लुटेरे जीवन में कोई रुचि नहीं थी, किन्तु वह जाटों की परम्परागत लूटमार की प्रवृत्ति को पूरी तरह से नहीं रोक पाया। रुस्तम अलीखान के विवरण से पता चलता है कि इस समय बन्तरशाह के नेतृत्व में कुछ जाट दस्ते महावन और फिरोजाबाद में लूटमार कर रहे थे।[3] जयसिंह का नायब कीरतसिंह, जिसे हिण्डौन, बयाना, भुसावर व टोडाभीम की जागीरों की देखभाल का कार्य सुपुर्द था, बदनसिंह का मित्र और आरामतलब व्यक्ति था। इसलिए जाटों को इस क्षेत्र में अपने प्रभाव विस्तार के अवसर मिलते रहे। १७२७ ई० में बयाना में जाट सेना द्वारा ऐसी ही भयंकर लूटमार का उदाहरण हमें मिलता है।[4] किन्तु कुल मिलाकर बदनसिंह की नीति अधिक से अधिक प्रदेश इजारे में प्राप्त करने की थी। १७२७ ई० में उसे परगना अकबराबाद इजारे में प्राप्त करने में सफलता मिली।[5] इसी प्रकार भुसावर[6] और हिण्डौन[7] का बहुत सा भाग भी उसने

---

१. कानूनगो, जाट, पृ० ६१; वृजेन्द्र वंश भास्कर, पृ० ३८; ग्राउसे, I, पृ० २३
२. सरकार, पतन, II, पृ० २९०; तारीख़-ए-हिन्द, पृ० ५४३
३. तारीख़-ए हिन्द, पृ० ५७६
४. दफ्तर सनदनवीस (परगना जयपुर), चिट्ठी, वैशाख कृष्णा १० वि० सं० १७८४
५. कपटद्वारा दस्तावेज़ संख्या, १४४५
६. दफ्तर सनदनवीस (परगना जयपुर), चिट्ठी, चैत्र कृष्णा ३ व आश्विन शुक्ला ३ वि० सं० १७८३
७. कपटद्वारा दस्तावेज़ संख्या १२२३

इजारे में प्राप्त कर लिया। सवाई जयसिंह की सहायता से १७२६ ई० में बदनसिंह को फ़रीदाबाद, पलवल और मेवात की राहदारी भी मिल गई।[1]

सैनिक दृष्टि से बदनसिंह एक निष्प्राण शासक था, किन्तु जाटों के सौभाग्य से उनकी सैनिक कमान उसके ज्येष्ठ एवं योग्यतम पुत्र सूरजमल के हाथों में रही, जिसने अपने पिता के शासन काल में और बाद में जाटों के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना तक सैनिक गतिविधियों का सफल संचालन किया। वस्तुतः बदनसिंह के राजकार्य से निवृत्ति के बहुत पहले ही शासन की बागडोर अप्रत्यक्ष रूप से सूरजमल के हाथों में पहुँच चुकी थी।

मेवात पर अधिकार

मुग़ल एवं आमेर राज्य से घिरे जाटों को अपने विस्तार के लिए मेवात उपयुक्त भूभाग दिखाई दिया। मेव विद्रोहियों से परेशान स्वयं कछवाहा राजा ने अपनी जागीर की सुरक्षार्थ जाट सेना की मदद चाही, तो इस क्षेत्र में जाटों का हस्तक्षेप आसान हो गया। जहाँ बदनसिंह शान्तिपूर्ण तरीक़ों द्वारा जयसिंह से अधिक से अधिक भूभाग इजारे में प्राप्त करने के प्रयत्नों में लगा हुआ था,[2] वहीं उसका पुत्र सूरजमल बड़े ही युक्तिपूर्ण तरीक़ों से मेवात में जयपुर के आमिलों को बेदख़ल करके अपने थाने स्थापित कर रहा था।[3] जयपुर के एक आमिल विजयराम के पत्र से इस विषय में सूरजमल की भूमिका पर बड़ा ही रोचक प्रकाश पड़ता है।[4] कहीं पर मेव विद्रोहियों के साथ गुप्त सहयोग करके, कहीं पर मेवों के विरुद्ध जयपुर के आमिलों को सहायता न पहुँचाकर और कहीं पर उनके साथ प्रत्यक्ष संघर्ष में आकर जाटों ने मेवात में अपने प्रभाव विस्तार के प्रयास जारी रखे। जाटों के विरुद्ध जब आमिलों की शिकायतें जयपुर दरबार में पहुँचती थी, तो बदनसिंह अपने विनीत आचरण द्वारा मामले को शान्त करने हेतु तत्पर रहता था। इस प्रकार बदनसिंह मेवात में जाटों के लिए १८ लाख रुपये वार्षिक आय की जागीर प्राप्त करने में सफल हुआ।[5]

माण्डूगढ़ का युद्ध (१७२६ ई०)

अक्टूबर १७२६ ई० में मालवा की सूबेदारी मिलने पर सवाई जयसिंह ने

---

१. वही, संख्या १४२६
२. दफ्तर सनदनवीस (परगना जयपुर), चिट्ठी, चैत्र शुक्ला १५ व श्रावण कृष्णा ८, वि० संवत् १७८४
३. ड्राफ्ट खरीता, मार्गशीर्ष कृष्णा ११, वि० सं० १७८८
४. आमेर रिकार्ड, मार्गशीर्ष शुक्ला १४, वि० सं० १७८८
५. इमाद, पृ० ५५

मराठों के विरुद्ध प्रस्थान किया।[1] वर्ष के अन्त में माण्डू के निकट मराठों के साथ हुए युद्ध में कछवाहा सेना ने उल्लेखनीय साहस का प्रदर्शन किया।[2] सूरजमल के दरबारी कवि सूदन के वर्णन से पता चलता है कि इस महत्वपूर्ण युद्ध में जाट सेना ने सूरजमल के नेतृत्व में भाग लिया था।[3] अन्त में मराठों के साथ सम्पन्न समझौते के अनुसार माण्डू (माण्डवगढ़) जयसिंह को मिल गया।[4]

भोपाल का युद्ध (१७३७ ई०)

इसी प्रकार इस बात के पुष्ट प्रमाण मिलते है कि पेशवा बाजीराव के विरुद्ध निजामउलमुल्क की सहायतार्थ जयसिंह ने अपने पुत्र ईश्वरी सिंह और दीवान राजा अयामल के नेतृत्व में जो सेना भेजी थी, उसके साथ भी बदनसिंह ने अपने दूसरे पुत्र प्रतापसिंह के नेतृत्व में एक जाट सेना भेजी थी।[5] २४ दिसम्बर को दोनों पक्षों के मध्य युद्ध आरम्भ हुआ और शीघ्र ही निजाम भोपाल के निकट बुरी तरह से घिर गया। अन्त में ६ जनवरी १७३८ ई० को दोराहा नामक स्थान पर दोनों के बीच सन्धि सम्पन्न हुई।

गंगवाना का युद्ध (२७ मई १७४१ ई०)

मई १७४१ ई० में जब जयसिंह धौलपुर में पेशवा बालाजी बाजीराव से

---

१. भटनागर, जयसिंह, पृ० २०४
२. खांड़ेराव रासो, II, पृ० ४०२
३. पुनि मांड़ोगढ़ मालुवै जीत्यो सिंह सुजान। सुजान चरित्र, पृ० ७
४. रघुवीर सिंह, मालवा इन ट्रांजिशन, पृ० १८०
५. प्रतापसिंह के आश्रयदाता कवि सोमनाथ ने इस घटना का वर्णन अपने काव्य में इस प्रकार किया है—
दच्छिन तैं निजनाम जाय बचाई के मीर निजामंहि लायौ ॥४७॥
रामचरित रत्नाकर, किष्किन्धा काण्ड (हस्तलिखित प्रति)
कवि सूदन लिखता है—
संग निजामुलमुलुक कौ गढ़ भूपाल मंझार।
जीत्यौ बाजीराव सौं सिंह प्रताप कुवांर ॥ सुजान चरित्र, पृ० ५
श्रीराम शर्मा ने बाजीराव के एक पत्र का उल्लेख किया है जिसमें इस युद्ध में जाटों के निजाम के पक्ष में युद्ध करने का वर्णन है, भारत में मुगल साम्राज्य (हिन्दी अनु०), पृ० ६३७; इरविन (II, पृ० ३०३) व सरदेसाई (मराठों का नवीन इतिहास, हिन्दी अनु०, जि० II, पृ० १५८-६२) ने इस युद्ध में जाटों के भाग लेने का उल्लेख नहीं किया, किन्तु ब्रह्मेन्द्र स्वामी चरित्र (परिशिष्ट ३३-३६) में इसका उल्लेख मिलता है।

वार्ता में व्यस्त था, तभी उसे बख्तसिंह राठौड़ द्वारा आमेर पर चढ़ाई की सूचना मिली। जयसिंह तुरन्त जयपुर लौटकर, ५०,००० सेना के साथ, जिसमें भरतपुर के जाट भी शामिल थे, उसका सामना करने के लिए चल पड़ा। अजमेर के निकट गंगवाना[1] नामक स्थान पर बख्तसिंह केवल ५,००० राठौड़ सैनिकों के साथ जयपुर सेना पर टूट पड़ा। यद्यपि बख्तसिंह की पराजय हुई और उसे मात्र ७० बचे हुए सैनिकों के साथ नागौर भागना पड़ा, किन्तु कछवाहा सेना को इससे भी अधिक दुर्दशा एवं विनाश का सामना करना पड़ा।[2] यह युद्ध २७ मई १७४१ ई० को लड़ा गया था।[3] टॉड ने इस युद्ध में जाटों के भाग लेने का उल्लेख किया है, किन्तु ओझा श्यामलदास, सूर्यमल्ल चित्रण इत्यादि लेखकों ने ऐसा उल्लेख नहीं किया है। समकालीन स्रोत दस्तूर कौमवार से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि सूरजमल के नेतृत्व में जाट सेना ने इस युद्ध में भाग लिया था।[4]

बदनसिंह द्वारा राजकार्य से निवृत्ति

लगभग सभी समकालीन स्रोत एकमत से इस बात की पुष्टि करते हैं कि कुछ वर्ष शासन करने के उपरान्त दुःसाध्य नेत्र रोग से पीड़ित होने के कारण बदन सिंह शासन सूत्र अपने ज्येष्ठ पुत्र सूरजमल को सौंपकर राजकार्यो से निवृत हो गया था।[5] लेकिन ऐसा उसने कब और किस तरह से किया, इस सम्बन्ध में कहीं निश्चित उल्लेख नहीं मिलता।

---

१. अजमेर के ८ मील उ० प० में

२. गौ० ही० ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, II, पृ० ६५५-५७; वीर विनोद, II, पृ० ८४८; वंश भास्कर, पृ० ३३०४-१२; डिसाइसिव बैटल्स, पृ० १०३-६; सरकार, पतन, I, पृ० १५१-१५३; टॉड (II, पृ० १०४९-५१) का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है। दीक्षित का बदनसिंह के इस युद्ध में भाग लेने का वर्णन गलत है, बृजेन्द्र वंश भास्कर, पृ० ३६।

३. तारीख़ के विषय में वीर विनोद और जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० II, पृ० १५३) श्रेष्ठ आधार हैं। इन दोनों के अनुसार यह युद्ध आषाढ़ कृष्णा ६ वि० सं० १७९८ को लड़ा गया था।

४. दस्तूर कौमवार, जि० VII, पृ० ४५८ पर उल्लेख है कि सूरजमल जाट को, जो जयसिंह की फ़ौज में शामिल था, भाद्रपद शुक्ला १२ वि० सं० १७९८ (११ सितम्बर १७४१ ई०) को विदा किया गया।

५. वैण्डल (सरकार, पतन, II, पृ० २६६); फ्रैंज गोटलियब लिखता है, "बीस वर्ष तक सिंहासन पर रहने के बाद बदनसिंह अन्धेपन से पीड़ित हो गया, उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र सूरजमल को सिंहासन पर बिठाया और स्वयं सांसारिकता

बदनसिंह के हरम में अनेकों स्त्रियाँ थीं और उसके २० पुत्र थे।[1] उसके पुत्रों में सूरजमल और प्रतापसिंह अत्यधिक योग्य एवं ख्याति प्राप्त थे। यद्यपि सूरजमल ज्येष्ठ तथा अनेकों गुणों से सम्पन्न था,[2] किन्तु बदनसिंह का अपने दूसरे पुत्र प्रतापसिंह पर अधिक स्नेह था, और उसने उसकी अभिरुचि एवं संस्कारों के शासकीय ढंग से विकास में विशेष रुचि ली थी।[3] भावी गृह कलह की आशंका[4] को निर्मूल

त्यागकर ईश्वर भक्ति में दिन बिताने लगा। उसने केवल परगना डीग में कसावली गाँव का राजस्व दान देने हेतु अपने हाथ में रखा, शेष सारा राज्य व कोप सूरजमल को दे दिया।" पर्शियन हिस्ट्री ऑफ जाट्स, पृ० २० अ; हरसुखराय लिखता है, "बदनसिंह प्रतिदिन एक पैसे भर पारा निगला करता था। जीवन के अन्तिम दिनों में उसकी नेत्र ज्योति में विकार आ गया था। अपने पुत्रों में उसने सूरजमल को बुद्धिमान समझा और शासन सूत्र उसके हाथों में देकर वह राजकार्य से निवृत हो गया।" मजमाउल अख़बार (इलियट, VIII, पृ० २७२)

१. फ़ँज गोटलियब, पृ० १९ अ; हरसुखराय (इलियट, VIII, पृ० २७२); बाद के लेखक २६ पुत्रों का उल्लेख करते हुए उनमें से ४ के प्रारम्भ में ही मृत्यु को प्राप्त होने का वर्णन करते हैं। राधारमण चौबे के अनुसार इनमें दो धर्म पुत्र सुने जाते हैं, भरतपुर का इतिहास, पृ० ८; सूदन जो इस विषय में सर्वाधिक प्रामाणिक है, बदनसिंह के पुत्रों का नामोल्लेख इस प्रकार करता है—सूरजमल, प्रतापसिंह, जोधसिंह, देवीसिंह, मेदसिंह, भवानीसिंह, अर्खसिंह, सुल्तानसिंह, शोभाराम, रामसबल, मानसिंह, गुमानसिंह, दलेलसिंह, बीरनारायण, रामकिशन बलराम, खुशालसिंह, लालसिंह, उदयसिंह (सुजान चरित्र, पृ० ५-६), एक अन्य पुत्र उम्मेदसिंह का उल्लेख फ़ँज गोटलियब (पृ० १९ अ) एवं दस्तूर कौमवार जि० VII, पृ० ३१८) करते हैं।

२. बदनसिंह महाराज के सुन्दर पुत्र अनेक,
जेठो सूरजमल है मंडित चारु विवेक।
सोमनाथ, सुजान विलास (पा० लि०), पृ० १३४ ब

३. इमाद का लेखक हमें बतलाता है कि इस युवा व्यक्ति का विकास (चालढाल एवं भद्रता में) सुरुचिपूर्ण भाषण और उत्कृष्ट शिष्टाचारों के साथ एक अभिजात्य मुस्लिम के रूप में हुआ था। अपनी पगड़ी बांधने की शैली, अपनी वेशभूषा के शौक के साथ-साथ मनपसन्द पकवानों में उसने दिल्ली के तरीक़ों का अनुसरण किया, कानूनगो, जाट, पृ० ६३ पा० टि०

४. चूड़ामन के प्रति उसके पुत्रों के कलहपूर्ण व्यवहार को देखते हुए सम्भवतः बदनसिंह ने पहले से ही ऐसी व्यवस्था की हो तो कोई आश्चर्य नहीं, यद्यपि वह इस दृष्टि से बड़ा भाग्यशाली था कि उसके ये दोनों पुत्र अत्यधिक निष्ठावान पितृभक्त थे।

करने के उद्देश्य से ही उसने कुम्हेर में सूरजमल के लिए[1] तथा वैर में प्रतापसिंह के लिए[2] पृथक-पृथक सुदृढ़ दुर्गों एवं महलों का निर्माण करवाया। अपने गिरते हुए स्वास्थ्य ने बदनसिंह को विवश कर दिया कि उत्तराधिकार के प्रश्न पर वह अनिश्चयात्मक स्थिति को शीघ्र समाप्त करें। सूरजमल की ज्येष्ठता, योग्यता एवं जाट सेना के बीच उसकी लोकप्रियता की उपेक्षा करना कठिन था, इसलिए अनुमान है कि १७३८-४० ई० के लगभग बदनसिंह ने वैर का राज्य प्रतापसिंह को प्रदान कर दिया, और सूरजमल को युवराज घोषित कर, शेष जाट राज्य का शासन प्रबन्ध उसे सौंप दिया।[3] राज्य के इस बँटवारे के बावजूद अगले कुछ वर्षों तक बदनसिंह डीग में राजसभा की अध्यक्षता करता रहा। किन्तु २ नवम्बर १७४५ ई० को अपने प्रिय पुत्र प्रतापसिंह की असामयिक मृत्यु[4] से विक्षुब्ध एवं नेत्र रोग की भयंकरता से पीड़ित बदनसिंह ने तत्काल राजकार्यों से पूरी तरह से निवृत होने का निश्चय किया। इस कारण नवम्बर १७४५ ई० में युवराज सूरजमल शासन संचालन के पूरे

---

१. कवि शिवराम के 'ग्रन्थ नवधा भक्ति रागसार' से पता चलता है कि १८ वीं सदी के चौथे दशक (१७३५ ई० के लगभग) में सूरजमल कुमार के रूप में कुम्हेर में रहता था, मत्स्य की देन, पृ० ४४-४५

२. कवि सोमनाथ के रस पीयूष निधि से पता चलता है कि बदनसिंह ने वैर का दुर्ग प्रतापसिंह के लिए बनाया था, मत्स्य की देन, पृ० ५२

३. बुधि के आठौ अंग अरु चौदह गुन राज के,
तामै जानि सुढंग सुत सूरज युवराज किय।
सुजान विलास (पा० लि०), पृ० १३४ ब

समझ कुमर परताप को, निपुन राज के काज।
दियौ वैरि गढ़ हरष के, बदनसिंह महाराज॥
रस पीयूष निधि (मत्स्य की देन, पृ० ५२)

ग्राउसे के अनुसार बदनसिंह नवनिर्मित वैर का दुर्ग और उसके साथ का जिला प्रतापसिंह को विशेष रूप से सौंपकर शेष जाट राज्य के शासन का भार ज्येष्ठ सूरजमल को सौंप कर मृत्यु के कुछ वर्ष पूर्व सार्वजनिक जीवन से निवृत हो गया था, मथुरा, I, पृ० २३; दीक्षित के अनुसार भोपाल युद्ध में विजय पाने के कारण प्रतापसिंह को वैर का राज्य प्राप्त हुआ, बृजेन्द्र वंश भास्कर, पृ० ३६; टॉड (III, पृ० १३५९) तथा मैलिसन (नेटिव स्टेट्स, पृ० ९८) के मतानुसार पहले प्रतापसिंह के पक्ष में उपाय करने के बाद बदनसिंह ने ज्येष्ठ पुत्र सूरजमल के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया था।

४. दस्तूर कौमवार, जि० VII, पृ० ४८१

अधिकारों के साथ जाट राज्य का वास्तविक शासक बन गया था।[1] अगले ही महीने अलीगढ़ के नवाब फ़तह अली ख़ान द्वारा सैन्य सहायतार्थ अपने दूत को सूरजमल के पास भेजे जाने के विवरण से भी उपर्युक्त निष्कर्ष की पुष्टि होती है कि इस समय जाट राज्य का वास्तविक संचालक सूरजमल ही था।[2] जदुनाथ सरकार भी लिखते हैं कि बदनसिंह के पिछले वर्षों में भरतपुर का इतिहास वास्तव में सूरजमल का इतिहास है।[3]

बदनसिंह का अन्तिम समय

बदनसिंह के जीवन के अन्तिम दिन अधिकांशतः डीग अथवा सहार[4] में व्यतीत हुए थे। साहित्य एवं स्थापत्य के प्रति बदनसिंह की प्रारम्भ से ही रुचि रही थी। उसने डीग दुर्ग का सौन्दर्यीकरण किया और उसके बनवाए हुए महल अब 'पुराने महल' कहलाते हैं। बदनसिंह ने कुम्हेर तथा वैर में नवीन दुर्गों के साथ क़स्बे के चारों ओर परकोटे तथा अनेक इमारतों का निर्माण करवाया। सहार में, जो उसके जीवन की सन्ध्या में उसकी रुचि का निवास स्थान था, उसने सुन्दर इमारतें बनवाई एवं वाटिका लगवाई। वृन्दावन के धीर समीर घाट पर उसने एक मन्दिर बनवाया।[5] बदनसिंह स्वयं कवि और कवियों का आश्रय दाता था। उसके रचे हुए कुछ स्फुट छन्द मिलते हैं, जिनमें 'बदन' अथवा 'बदनेश' लिखा हुआ मिलता है।[6] प्रसिद्ध कवि सोमनाथ को बदनसिंह मथुरा से लाया था और उसे दरबार में सम्मानजनक स्थान देकर सूरजमल का शिक्षक नियुक्त किया था।[7] ७ जून १७५६ ई० को डीग में बदनसिंह की मृत्यु हो गई।[8]

१. सूदन के निम्नलिखित वर्णन से इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है—

> ठारे सै रु दुहोतरा अगहन मास सुजान
> बैठि सजल गढ़ नौहि के किय आखेट-विधान
> एक दिवस दरबार करि बैठयो सिंह सुजान
> आस पास भूपतिनु के बैठे तनय अमान

सुजान चरित्र, पृ० ७-८

२. सुजान चरित्र, पृ० ९-१०
३. सरकार, पतन, II, पृ० २६९
४. मथुरा से १८ मील उ० प० में
५. ग्रोकमेन, पृ० १३ व १७; ग्राउसे, I, पृ० २३; कानूनगो, जाट, पृ० ६४; प्रभुदयाल मीतल, व्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ५०९
६. व्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ५०९; मिश्रबन्धु विनोद, II, पृ० ८३७
७. विष्णुचन्द्र पाठक, सोमनाथ आचार्य और कवि (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), पृ० १५
८. सरकार, दिल्ली क्रानिकल्स (अप्रकाशित, सरकार संग्रह), पृ० ७३

सूरजमल का प्रारम्भिक जीवन

ठाकुर बदनसिंह का उत्तराधिकारी सूरजमल जाट राज्य का सर्वाधिक योग्य शासक था, जिसके प्रभावशाली नेतृत्व में यह नव स्थापित राज्य शीघ्र ही अपने उत्कर्ष पर पहुँच गया। गुलाम अली के शब्दों में वह "जाट कबीले का प्लेटो था" और यद्यपि वह एक किसान की वेशभूषा पहनता था तथा केवल अपनी ब्रज भाषा ही जानता था, फिर भी विवेक तथा बुद्धि में, राजस्व की व्यवस्था करने की योग्यता तथा नागरिक मामलों में निज़ाम आसफजहाँ बहादुर के अतिरिक्त हिन्दुस्तान के सरदारों में उसके बराबर कोई व्यक्ति नहीं था।[१] सियार का लेखक लिखता है, "नजीब का अगला पड़ौसी जाट कबीले की आँख और उसको बाँधने वाला तेजस्वी राजा सूरजमल था, जिसने अपने आपको शासन संचालन के श्रेष्ठ ज्ञान एवं विजयों के साथ-साथ शिष्ट व्यवहार एवं नागरिक विभाग के संचालन द्वारा प्रसिद्ध बना दिया था और बराबर के हिन्दू राजाओं में ऐसी योग्यता कोई नहीं रखता था।"[२]

वैण्डल के अनुसार, "सूरजमल मध्यम ऊँचाई के ऊपर, हृष्ट-पुष्ट आकृति के साथ, वृद्धावस्था में मोटापे की ओर झुका हुआ तथा श्याम वर्ण लिए हुए था। उसकी आँखें साधारणतया चमकदार थी और उसकी सारी उपस्थिति (रूप, रंग में) एवं उसके आचरण, जो कि अत्यधिक मधुर एवं सुनम्य थे, अत्यधिक तेज प्रकट करते थे।"[3] किन्तु उसके दरबारी कवि सोमनाथ ने सूरजमल की आकृति का वर्णन करते हुए उसे गौर वर्ण का बतलाया है।[४] उसका पुस्तकीय ज्ञान थोड़ा था और दरबारी शिष्टाचार में वह अपरिष्कृत था, फिर भी साजिश और कूटनीति के उस युग में उसने कपटी मुग़लों एवं चतुर मराठों दोनों को समान रूप से निष्फल कर दिया था। अपने पिता के समय से ही जाट राज्य की युद्धनीति एवं कूटनीति का संचालन उसके हाथों में था। अपनी जन्मजात प्रतिभा, स्पष्ट दूरदृष्टिता, अदम्य उत्साह, अटल साहस, कुशाग्र बुद्धि एवं राजनीतिक विलक्षणता के बल पर उसने जाट राज्य को उस बिन्दु पर पहुँचा दिया, जहाँ हिन्दुस्तान की बड़ी शक्तियाँ उसकी सहायता की अपेक्षा करती थी और बड़ी से बड़ी विपत्ति के समय वह स्वयं अपनी शक्ति, क्षमता एवं सूझ-बूझ के बल पर उसकी सुरक्षा कर सकता था।

---

१. इमाद, पृ० ५५

२. सियार, IV, पृ० २७

३. वैण्डल, पृ० ५१

४. सुजान विलास, पृ० १३६ ब

जन्म और पैतृकता

सूरजमल के जन्म तथा बाल्यकाल के विषय में कोई निश्चित विवरण उपलब्ध नहीं है। वैण्डल मृत्यु के समय सूरजमल की आयु ५५ वर्ष बतलाता है।[1] समकालीन पत्रों में सूरजमल का प्रथम उल्लेख ११ मार्च १७२१ ई० को मिलता है, जब वह राजनैतिक उद्देश्य से अपने पिता के दूत के रूप में सवाई जयसिंह से मिलने उसके दिल्ली स्थित डेरे पर गया था।[2] दूसरा महत्वपूर्ण उल्लेख २६ नवम्बर १७४३ ई० में उसके ज्येष्ठ पुत्र जवाहरसिंह के विवाह का है।[3] यदि हम जयसिंह से उसकी भेंट के समय उसकी उम्र लगभग १४ वर्ष मानें, तो मृत्यु के समय उसकी सम्भावित आयु ५५ वर्ष ठहरती है, जो काफ़ी युक्तिसंगत लगती है और वैण्डल के कथन से सिद्ध भी होती है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रमाण इस सम्बन्ध में स्वयं सूरजमल का वक्तव्य है। मार्च १७५७ ई० में अहमदशाह अब्दाली को लिखे एक पत्र में सूरजमल कहता है, "मैं जीवन की पचास सीढ़ियाँ पार कर चुका हूँ.......।"[४] इस आधार पर सूरजमल की जन्म-तिथि १७०७ ई० ही प्रामाणिक ठहरती है।

वैण्डल के इस कथन ने कि "सूरजमल बदनसिंह का औरस पुत्र नहीं था," सूरजमल की पैतृकता को विवाद का विषय बना दिया है। सूरजमल के पुत्र जवाहरसिंह का दरबारी होने के कारण वैण्डल ऐसा महत्वपूर्ण स्रोत है जिसकी उपेक्षा करना कठिन है। उसके अनुसार सूरजमल न तो बदनसिंह का पुत्र था और न ही उसके वंश का था। वह किसी विवाहित स्त्री का औरस पुत्र था। इस स्त्री की बहन बदनसिंह के अन्तःपुर में थी। अपने पुत्र को गोद में लिए जब वह अपनी बहन से मिलने आई, तब बदनसिंह की उस पर नज़र पड़ी और उसने उसे अपनी पत्नियों में शामिल कर लिया और शीघ्र ही वह उसकी कृपापात्र बन गई। सूरजमल की माँ का प्रभाव तो था ही, किन्तु स्वयं सूरजमल की प्रतिभा भी अद्भुत थी जिससे यह प्रतीत होने लगा कि वह उदीयमान जाट जाति का अत्यन्त उपयुक्त नेता है। बदनसिंह ने इस कारण सूरजमल को अपना पुत्र एवं उत्तराधिकारी मान लिया और उसकी जाति के मुखियाओं ने भी इसकी अनुमति दे दी। उसने अपने निजी पुत्रों को इस अधिकार से वंचित कर दिया।[५]

वैण्डल के उपर्युक्त कथन को स्वीकार करने में सबसे बड़ी बाधा यह है कि

---

१. सरकार, पतन, II, पृ० २८१; ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ५१८
२ दस्तूर कौमवार, VII, पृ० ५३५
३. वही, VII, पृ० ३७६
४ गण्डासिंह, अहमदशाह दुर्रानी, पृ० १८१-८३
५. सरकार, पतन, II, पृ० २६६

कोई भी समकालीन स्रोत इसका समर्थन नहीं करता,[१] इसके विपरीत अधिकतर प्रमाण सूरजमल का उल्लेख विना किसी संदेह के वदनसिंह के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में करते हैं। सूरजमल के दरवारी कवियों और समकालीन साहित्य में इस तथ्य का उल्लेख न करने की वात समझी जा सकती है, किन्तु फ़ारसी इतिहासकारों द्वारा सूरजमल का वदनसिंह के पुत्र रूप में उल्लेख करते समय किसी तरह की शंका न उठाना वैण्डल के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण तर्क है। अपेक्षाकृत वाद का लेखक फ्रैंज गोटलियव एकमात्र स्रोत है जो सूरजमल का, वदनसिंह की रानी देवकी (जो कामर[२] के चौधरी महाराम की पुत्री[३] थी) से उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र के रूप में उल्लेख करता है।[४] वैण्डल के मत के विरुद्ध एक तर्क यह भी दिया जा सकता है कि सूरजमल यदि वदनसिंह का दत्तक पुत्र होता, तो प्रतापसिंह सम्भवतः वैर के राज्य से सन्तुष्ट न होकर अपने उत्तराधिकार के दावे के लिए संघर्ष करता हुआ दिखाई पड़ता, जिसका संकेत किसी भी समकालीन स्रोत में नहीं मिलता है।

राम पाण्डेय की यह धारणा निराधार है कि सूरजमल वदनसिंह के भाई रूपसिंह का पुत्र था और रूपसिंह की मृत्यु हो जाने पर उसकी पत्नी देवकी के साथ वदनसिंह ने 'धरेजना'[५] के रूप में विवाह कर लिया था।[६] समकालीन स्याहा वकाया कागज़ातों से स्पष्ट पता चलता है कि १७२१ ई० में जहाँ सूरजमल का वदनसिंह के पुत्र के रूप में प्रथम उल्लेख हुआ है,[७] वहीं १७३५ ई० तक रूपसिंह के जीवित रहने के प्रमाण मिलते हैं[८] और १७३१ ई० में वदनसिंह तथा रूपसिंह की पत्नी का उल्लेख

---

१. एक स्थानीय लोकगीत इसका अपवाद है, जो सूरजमल के कायस्थ पुत्र होने का उल्लेख करता है, यद्यपि इसकी ऐतिहासिक महत्ता संदिग्ध है—
सूरजमल कायथ को लरिका
गोरे मुख पे आयो पसीना
झालर को पंखा

२. मथुरा जिले में कोसी के निकट, मथुरा के ३३ मील उ० प० में

३. कानूनगो, जाट, पृ० ६१; वृजेन्द्र वंश भास्कर, पृ० ३८; ग्राउसे चौधरी महाराम को देवकी का भाई वतलाता है, मथुरा, I, पृ० २३

४. फ्रैंज गोटलियव, पृ० २० अ

५. वड़े भाई की विधवा से विवाह करने की स्थानीय प्रथा 'करेवा'

६. पाण्डे, भरतपुर, पृ० ४६

७. दस्तूर कौमवार, जि० VII, पृ० ५३५

८. दस्तूर कौमवार, VII, पृ० ५०१; १७१६ ई० में हम उसे थून के युद्ध में लड़ते हुए पाते हैं, देखें, अध्याय II

एक साथ किन्तु पृथक-पृथक रूप से हुआ है।[1] सूदन भी स्पष्ट रूप से रूपसिंह का सूरजमल के चाचा के रूप में उल्लेख करता है।[2]

निष्कर्षतः यहीं कहा जा सकता है कि जब तक वैण्डल के मत के समर्थन में हमें अन्य कोई पुष्ट सामयिक प्रमाण नहीं मिल जाता, तब तक सूरजमल को बदनसिंह का औरस एवं ज्येष्ठ पुत्र मानना ही उचित होगा।

भरतपुर की स्थापना

सूरजमल का सैनिक जीवन मेवात और माण्डू के युद्धों से शुरू हुआ था, किन्तु उसकी प्रथम उच्च कोटि की सैनिक सफलता अपने पिता के शक्तिशाली विरोधी खेमकरण जाट के विरुद्ध थी। इस सफलता ने उसे अत्यधिक प्रसिद्धि दिलाई। वर्तमान भरतपुर दुर्ग के स्थान पर जो कच्ची गढ़ी थी, उसकी स्थापना १७०० ई० के लगभग रुस्तम सोगरिया ने की थी। रुस्तम का पुत्र खेमा जाट, जो कि चूड़ामन का अभिन्न साथी था, किस तरह बदनसिंह के लिए गम्भीर चुनौती बना हुआ था, यह हम पहले ही देख चुके हैं। १७३३ ई० में एक रात्रि को साहसिक आक्रमण करके सूरजमल ने खेमा जाट को पराजित कर, इस स्थान से उसे बेदखल कर दिया।[3] किन्तु खेमा का विरोध जारी रहा और कुछ वर्षों बाद जब सूरजमल एक षडयन्त्र द्वारा उसे समाप्त करने में सफल हुआ,[4] तभी इस स्थान पर भरतपुर के नवीन दुर्ग एवं राजधानी का निर्माण कार्य शुरू हो सका। ज्वाला सहाय के अनुसार दुर्ग निर्माण के कार्य में आठ वर्ष लगे।[5]

१. दस्तूर कौमवार. VII, पृ० ४४८
२. सुजान चरित्र, पृ० ६७
३. फ्रैंज गोटलियब, पृ० २० ब; ग्रोकमेन, पृ० ६; टॉड, III, पृ० १३५६; वीर विनोद, III, पृ० १६४३; ओडायर, III. पृ० २६; बृजेन्द्र वंश भास्कर, पृ० ४२-४३; ज्वाला सहाय, पृ० ३१; कानूनगो, जाट, पृ० ६५-६६; मैलिसन, पृ० ६८
४. फ्रैंज गोटलियब लिखता है कि खेमा कुश्ती द्वारा शेरों को पराजित करने की कला में दक्ष था। दिल्ली में सम्राट के सम्मुख दो-तीन शेर अपने हाथों से मारकर जब उसने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया तो सम्राट ने प्रसन्न होकर उसे खिलअत एवं इनाम दिया। सूरजमल ने यह सुनकर उसे नष्ट करने की योजना बनाई। उसने एरिंग निवासी भूण्डाराम को लिखा कि वह किसी भी तरह खेमा को मारे तो उसे भारी इनाम दिया जाएगा। एक बार जब खेमा एरिंग पहुँचा, तो भूण्डाराम ने बड़े आदर सत्कार के साथ उस पर रुकने के लिए दबाव डाला और भोजन में विष मिला दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। पर्शियन हिस्ट्री ऑफ जाट्स, पृ० २१ अ
५. ज्वाला सहाय, वाकया राजपूताना, II, पृ० २०

बलदेवसिंह के अनुसार १९ जनवरी १७४३ ई० में निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ।[१] यह निश्चित है कि १७५३ ई० के पूर्व दुर्ग एवं महल निर्माण का कार्य पूरा हो चुका था।[२] २२ नवम्बर १७५३ ई० को जब जयपुर महाराजा माधोसिंह भरतपुर का क़िला देखने गए, तब सूरजमल का डेरा भरतपुर में ही था, जबकि बदनसिंह का प्रवास उस समय डीग ही था।[३]

भरतपुर, सूरजमल की रुचि का स्थान होने के कारण शीघ्र ही डीग के स्थान पर जाट गतिविधियों का नया केन्द्र बन गया। सूरजमल द्वारा ही इस नव-निर्मित दुर्ग का नामकरण भरतपुर करके चारों ओर शहर का विकास किया गया, जो शीघ्र ही सारे हिन्दुस्तान में जाट राजधानी के रूप में प्रसिद्ध हो गया।[४] सुजान चरित्र के विभिन्न सन्दर्भों से भी इस बात की पुष्टि होती है कि सूरजमल की राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र भरतपुर बन चुका था, यद्यपि वह प्रत्येक मामले में सलाह लेने बदनसिंह के पास डीग जाया करता था और संकटकालीन दरबार भी डीग में ही लगा करते थे।[५]

अलीगढ़ के नवाब की सहायता

जाट राज्य के पड़ौसी क्षेत्रों में सूरजमल की ख्याति एवं सैनिक प्रतिष्ठा का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि शासन की बागडोर सँभालने के एक महीने बाद ही, दिसम्बर १७४५ ई० में कोईल (अलीगढ़) के नवाब फ़तह अली ख़ान ने[६] मुगल ख़ानज़ाद असद ख़ाँ से झगड़ा हो जाने पर, सूरजमल से सैन्य सहायता की याचना की।[७] सूरजमल के लिए बाह्य मामलों में स्वतन्त्र निर्णय लेने का यह

---

१. तवारीख भरतपुर, पृ० ३०, ४२; जा० न० इ०, पृ० ३३२-३८
२. सुजान चरित्र, पृ० २४६
३. दस्तूर कौमवार, V II, पृ० ५६० व ५६७
४. 'किय भरतपुर निज राजधानी,' वंश भास्कर, पृ० ३०६१; 'धरयौ नाम ताकौ भरथ बासु रूरौ, सुजान चरित्र, पृ० २३४; ज्वाला सहाय (भरतपुर, पृ० ८) और ब्रोकमेन (गज़ेटियर, पृ०९) के अनुसार श्री राम के भाई भरत के नाम पर भरतपुर नाम रखा गया और उनके दूसरे भाई लक्ष्मण राजपरिवार के इष्ट देवता के रूप में पूजे जाने लगे।
५. १७५४ ई० में कुम्हेर पर मराठा आक्रमण के समय ऐसा ही दरबार बदनसिंह की अध्यक्षता में डीग में लगा था, देखें, सुजान चरित्र, पृ० २३९-४०
६ यह साबित ख़ान का पुत्र था, जो १७१७ ई० में अलीगढ़ का फ़ौजदार था और उसके नाम पर यह दुर्ग साबितगढ़ कहलाने लगा, इम्पी० गज़े० यूनाइटेड प्राविन्सेज़, १९०८ ई० जि० I, पृ० ३६५
७. सुजान चरित्र, पृ० ९-१०

पहला अवसर था, क्योंकि अब तक जाट राज्य के बाह्य राजनैतिक एवं सैनिक क्रिया कलाप जयपुर शासक की अधीनता में ही सम्पन्न होते रहे थे।

सूरजमल ने फ़तह अली ख़ान के दूत को सहायता का आश्वासन दिया और शिकार के बहाने जाकर ईखू[1] नामक स्थान पर अधिकार कर लिया। पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार फ़तह अली इस स्थान पर पहुँचा और दोनों के बीच मैत्री समझौता सम्पन्न हुआ। जब असद ख़ाँ ने कोईल पर आक्रमण किया तो सूरजमल ने अपने पुत्र और सेनापति के नेतृत्व में सहायतार्थ एक सेना रवाना की और बाद में फ़तह अली का दूसरा त्वरित सन्देश मिलने पर सूरजमल स्वयं भी युद्धस्थल की ओर चल पड़ा। १७४६ ई० के प्रारम्भ में चन्दौस के निकट हुए इस युद्ध में असद ख़ाँ मारा गया और शाही सैनिकों को पराजय का मुँह देखना पड़ा।[2] सूरजमल की सक्रिय सहायता एवं शौर्य के बल पर ही फ़तह अली ख़ान अपनी पुश्तैनी जागीर की रक्षा करने में सफल हुआ। किन्तु फ़तह अली ख़ान के लिए बहाया गया जाटों का ख़ून व्यर्थ गया। चार साल बाद ही वह सूरजमल की मित्रता एवं सहायता को भूल कर मीरबख्शी सलाबत खां के साथ नीमराना में जाटों के विरुद्ध युद्ध करता हुआ दिखाई देता है।[3] इसी प्रकार दिसम्बर १७५३ ई० में मीरबख्शी इमाद की सहायता से फ़तह अली खान ने कोईल व जालेसर से जाट अधिकार को समाप्त कर दिया था।[4]

जयपुर का उत्तराधिकार संघर्ष और सूरजमल

सूरजमल के नेतृत्व में कछवाहों के प्रति जाट नीति में तत्काल कोई परिवर्तन नहीं हुआ।[5] अपनी व्यवहार कुशलता के बल पर सूरजमल भी अपने पिता की तरह सवाई जयसिंह का विश्वासपात्र बन गया था। इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख इस प्रकार मिलता है कि जयसिंह के अश्वमेघ यज्ञ (१७४२ ई०) के अवसर पर सूरजमल भी आमन्त्रित होकर पहुँचा। यज्ञ की समाप्ति पर राजपुत्र को

---

१. इसकी स्थिति स्पष्ट नहीं हो सकी, सुजान चरित्र में उल्लिखित यह ईखू शायद अलीगढ़ जिले का तहसील मुख्यालय ईगलास हो।

२. सुजान चरित्र, पृ० १० से २६

३. सियार, III, पृ० ३११-१४; सुजान चरित्र, पृ ५०-५५

४. तारीख़-ए-अहमदशाही, पृ० १०५ अ-१०६ अ

५. बदनसिंह ने राजकार्य सुपुर्द करते समय सूरजमल को निम्नलिखित शिक्षा दी थी—

कुशवाहिन को दास बहै ब्रज को महाराजा।
निवक हरामी करै परै तिहके सिर गाजा॥

सोमनाथ, माधव जयति, दोहा २६ (पा० लि०)

जिम्मेवारी सौंपकर आशीर्वाद देने का समय आया तो जयसिंह के दोनों पुत्रों में से कोई भी वहाँ उपस्थित नहीं था। तब सूरजमल ने जयसिंह से अपने ऊपर उक्त शेष यज्ञ की विधि के समापन की प्रार्थना की। जयसिंह इस प्रस्ताव से सहमत हो गया और यज्ञ क्रिया समाप्त कर उसने सूरजमल को आशीर्वाद दिया।[१] यद्यपि इस घटना की प्रामाणिकता सन्देहजनक है,[२] तथापि इस बात का प्रमाण मिलता है कि २७ अप्रैल १७४३ ई० को सवाई जयसिंह ने सूरजमल को विदा की भेंट दी थी।[३]

२१ सितम्बर १७४३ ई० को सवाई जयसिंह की मृत्यु के साथ ही उसके दोनों पुत्रों ईश्वरीसिंह और माधोसिंह के बीच उत्तराधिकार का युद्ध शुरू हो गया।[४] सूरजमल अपने प्रिय संरक्षक की अन्तिम इच्छा के प्रति निष्ठावान रहते हुए, उसके ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंह के पक्ष में ईमानदारी से खड़ा रहा,[५] जबकि जयसिंह के कनिष्ठ पुत्र माधोसिंह ने अपने मामा उदयपुर के महाराणा जगतसिंह की सैन्य सहायता के बल पर ईश्वरीसिंह के दावे की चुनौती दी। १७४३ ई० के अन्त में जहाजपुर के रणक्षेत्र से प्रारम्भ हुए इस संघर्ष का पहला निर्णायक दौर मार्च १७४७ ई० में समाप्त हुआ, जब राजमहल के युद्ध में ईश्वरीसिंह को निर्णायक विजय मिली।[६]

बगरू का युद्ध

एक वर्ष की शान्ति के बाद जयपुर का यह गृह कलह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया। मई १७४८ ई० में पेशवा के निवाई[७] अभियान का परिणाम यह हुआ कि ईश्वरीसिह चार परगने माधोसिंह को देने पर सहमत हो गया।[८] इसी बीच ईश्वरीसिंह का संदेश पाकर सूरजमल अपने दस हजार सवारों के साथ तुरन्त जयपुर पहुंच गया[९] और उसने पेशवा के साथ सम्पन्न समझौते की उपेक्षा करके ईश्वरीसिंह

---

१. वृजेन्द्र वंश भास्कर, पृ० ४१; द० ब० पारसनीस, इतिहास संग्रह, II, पृ० २-३
२. ईश्वर विलास तथा जयपुर रिकार्ड के समकालीन पत्रों में इस घटना का कोई विवरण नहीं मिलता है, देखें, भटनागर, जयसिंह, पृ० २६४-६८
३. दस्तूर कौमवार, VII, पृ० ४५८
४. टॉड, III, पृ० १३५६
५. ज्वाला सहाय, पृ० ३२-३३; इतिहास संग्रह, II, पृ० ३
६. सरकार, पतन, I, पृ० १५३-५५; म० न० इ०, II, पृ० २४०
७. जयपुर के ३९ मील दक्षिण में
८. काशीनाथ राजवाड़े, मराठयांच्या इतिहासांची साधनें, VI, पत्र १९०-१९१; हिंगणे दफ़्तर, I, पत्र ३०
९. सुजान चरित्र, पृ० २८-२९; वंश भास्कर, पृ० ३४९१

को कठोर रवैया अपनाने की सलाह दी। इसका अपेक्षित परिणाम हुआ और होल्कर ने माधोसिंह के दीवान कनीराम और वज़ीर सफ़दरजंग के वकील नरसिंहदास को मामलात हेतु सूरजमल के पास भेजा। ईश्वरीसिंह के रुख़ में हुए परिवर्तन के लिए जाट राजा को उत्तरदायी समझकर मराठा सरदार का यह दृष्टिकोण था कि फ़िलहाल युद्ध को टाल दिया जाय और बाद में सूरजमल से अलग से निपटा जाय। किन्तु जून के मध्य में सूरजमल ने ईश्वरीसिंह की तरफ़ से समझौते के प्रस्तावों को ठुकरा दिया।[1] फलस्वरूप जुलाई में होल्कर ने विवश होकर जयपुर पर आक्रमण के लिए प्रयाण किया। माधोसिंह के पक्ष में होल्कर की मराठा सेना के अलावा राठौड़, सीसोदिया, हाड़ा, खींची, पंवार शासकों की एक विशाल सेना थी।[2]

अगस्त १७४८ ई० में दोनों पक्षों के बीच युद्ध छिड़ गया। मोती डूंगरी के निकट हुई प्रथम मुठभेड़ में सूरजमल के नेतृत्व में जाटों के साहसिक हमलों से मराठा सेना को पीछे हटने के लिए विवश होना पड़ा। मोती डूंगरी की पराजय के बाद मल्हार राव होल्कर ने बगरू स्थित अपने डेरे को लौटकर सभी मित्र सेनाओं का निरीक्षण कर उन्हें नए युद्ध के लिए पुनः व्यवस्थित किया। ईश्वरीसिंह भी सूरजमल तथा अपनी ३०,००० सेना के साथ जयपुर से बाहर निकलकर बगरू की ओर चल पड़ा।[3]

ईश्वरीसिंह के विरुद्ध सात राजाओं का संयुक्त मोर्चा बन जाने के कारण यद्यपि युद्ध का सन्तुलन एक पक्षीय जान पड़ता था, किन्तु सूरजमल के नेतृत्व में जाटों की साहसिक भूमिका ने युद्ध का निर्णय उसके पक्ष में करा दिया। रविवार २० अगस्त १७४८ ई० को बगरू[4] में दोनों पक्षों के बीच घमासान युद्ध आरम्भ हो गया।[5] भारी वर्षा के बीच तीन दिन तक भीषण संग्राम हुआ। जयपुर सेना के हरावल का नेतृत्व सीकर के ठाकुर शिवसिंह शेखावत को दिया गया, सूरजमल केन्द्र में और कछवाहा राजा ईश्वरीसिंह पृष्ठभाग का नेतृत्व कर रहा था। प्रथम दिवस अनिर्णयात्मक तोपखाने के द्वन्द्व में समाप्त हुआ। दूसरा दिन जयपुर पक्ष के लिए विषादपूर्ण रहा, जब गंगाधर तांत्या (मराठा सेनापति) के तीव्र प्रहार से सीकर ठाकुर शिवसिंह मारा गया।[6]

---

१. हिंगणे दफ्तर, I, पत्र ३०

२. सुजान चरित्र, पृ० ३३-३५

३. वंश भास्कर, पृ० ३४९२; सुजान चरित्र, पृ० ३९

४. जयपुर से १८ मील द० प० में

५. वंश भास्कर, पृ० ३४९३; सरकार, पतन, I पृ० १५६;-कानूनगो (जाट, पृ० ६७) ने १७४९ ई० में इस युद्ध का होना लिखा है जो सही नहीं है।

६. वंश भास्कर, पृ० ३५१४

तीसरे दिन भोर होते ही सफलता के प्रति आश्वस्त उत्साही शत्रु रणक्षेत्र में प्रकट हो गया। इस संकटपूर्ण दिवस पर हरावल के नेतृत्व की जिम्मेदारी सूरजमल पर थी। युद्ध शीघ्र ही पूरे वेग के साथ फूट पड़ा। चतुर मराठा सरदार होल्कर ने गंगाधर तांत्या को एक सशक्त सेना के साथ अचानक ईश्वरीसिंह के पृष्ठभाग की ओर भेजा। गंगाधर विजली की फुर्ती से सेना के व्यूह को भेदकर उनियारा के राव सरदारसिंह नरुका पर टूट पड़ा तथा कीलें लगाकर शत्रु की तोपों को नष्ट कर दिया। पराजय को सन्निकट देख हतप्रभ ईश्वरीसिंह ने अपनी अन्तिम आशा सूरजमल को हरावल से बुलाकर गंगाधर पर आक्रमण का आदेश दिया। सूरजमल तुरन्त पलटकर सहायतार्थ उस स्थान पर जा पहुँचा, जहां एक कठिन संघर्ष के पश्चात वह अर्द्ध विजित मराठों को वहाँ से खदेड़ने में सफल रहा। गंगाधर के पीछे हट जाने पर सूरजमल ने टूटे हुए पृष्ठभाग की पुर्नस्थापना की और वहाँ का नेतृत्व पुनः सरदारसिंह नरुका को सौंपकर शत्रु सेना के उमड़ते हुए प्रवाह का सामना करने के लिए हरावल की ओर लौट पड़ा। संकट के उन गम्भीर क्षणों में जाट राजा अद्‌भुत साहस के साथ लड़ा और उसने ५० व्यक्तियों को मौत के घाट उतारा तथा १०८ को घायल किया।[1]

प्रतापी जाट की प्रतिष्ठा के प्रति वैमनस्य दिखाए बिना बूँदी का राजपूत कवि सूर्यमल्ल मिश्रण इस स्मरणीय अवसर पर सूरजमल के शौर्य का वर्णन काव्यात्मक शैली में इस प्रकार करता है—

सह्यो भलैंही जट्टनी, जाय अरिष्ट अरिष्ट।
जिहिं जाठर रविमल्ल हुव आमैंरन को इष्ट॥
बहुरि जट्ट मल्लार सन, लरन लग्यो हरवल्ल।
अंगद व्है हुलकर अरयो, मिहिरमल्ल प्रतिमल्ल॥[2]

अर्थात जाटनी ने व्यर्थ में ही प्रसव पीड़ा सहन नहीं की। उसके गर्भ से उत्पन्न संतान सूरज (रवि) मल शत्रुओं के लिए अनिष्ट और आमेर का शुभचिन्तक था। पृष्ठ भाग से वापस मुड़कर जाट ने हरावल में मल्हार से युद्ध शुरू किया। होल्कर भी अंगद की भाँति अड़ गया, दोनों की टक्कर बराबर की थी।

इस प्रकार सूरजमल ने ईश्वरीसिंह की निश्चित पराजय को विजय में बदल दिया। इस दुष्कर संघर्ष ने कम दृढ़प्रतिज्ञ मराठों के धैर्य को थका दिया। परिणामस्वरूप होल्कर शान्ति का इच्छुक हुआ और माधोसिंह को उन पाँच परगनों से ही सन्तोष करना पड़ा जो उसे उसके जन्मजात अधिकार की वजह से दिए गए थे।[3]

---

१. वही, पृ० ३५१७-१८
२. वंश भास्कर, पृ० ३५१८
३. सुजान चरित्र, पृ० ३६; कानूनगो, जाट, पृ० ७०

उत्तराधिकार संघर्ष के इस नाटक की समाप्ति दुखान्तिका में हुई। एक वर्ष की शान्ति के बाद दिसम्बर १७५० ई० में होल्कर ने बकाया राशि के भुगतान के लिए ईश्वरीसिंह पर पुनः हमला कर दिया।[1] इस समय ईश्वरीसिंह नीति और विवेक खो चुका था। ऐसी असहाय अवस्था में प्रतीत होता है सूरजमल से भी उसकी अनबन हो गई थी।[2] १२ दिसम्बर को उसने विषपान करके मराठों से घिरी जयपुर नगरी को अनाथ की तरह छोड़कर मृत्यु का आलिंगन किया। यद्यपि सूरजमल व्यवहारतः जयपुर से जाट राज्य की निर्भरता को समाप्त कर चुका था, किन्तु पड़ौसी राज्य से स्थायी वैर-भाव को राजनैतिक बुद्धिमता के विपरीत समझकर उसने जयपुर के नये राजा माधोसिंह से शीघ्र ही अपने सम्बन्ध सुधार लिए[3] और जाट कछवाहा मैत्री एवं सद्भाव को बनाए रखने का प्रयास किया।

---

१. सरकार, पतन, I, पृ० ६२; म०न०इ०, II, पृ० २४३

२. कूरम की रच्छा करी निज कर गहि किरिवान॥
पुनि कूरम सौ विरझियौ छोड़त देखि म्रजाद।
वचन जीत तासौ भयौ सूरज आपु जवाद॥ सुजान चरित्र, पृ० ७

३. वही।

अध्याय–४

जाट–मुग़ल संघर्ष
(१७४८–१७५३ ई०)

जाट-मुग़ल संघर्ष (१७४८-१७५३ ई०)

अठारहवीं शताब्दी के पाँचवे दशक में जब सूरजमल के हाथ में जाट राज्य की बागडोर आई, तब उसके सामने, उसे सैनिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाकर स्वतन्त्रता के पथ पर निरन्तर अग्रसर बनाए रखने का लक्ष्य था। सौभाग्य से इस कार्य के सम्पादन के लिए आवश्यक सैनिक एवं कूटनीतिक गुण सूरजमल में समुचित रूप से थे। हिन्दुस्तान के इतिहास में यह वह समय था, जब नादिरशाह के आक्रमण से भूलुण्ठित मुग़ल बादशाह अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा को बचाए रखने की असफल कोशिश कर रहे थे। साहसिक कार्यों के स्थान पर शासकों के विलासितापूर्ण जीवन से दरबारी षडयन्त्रों एवं गुटबन्दियों को बढ़ावा मिला, जिनसे साम्राज्य निरन्तर कमज़ोर हो रहा था। उधर राजपूताना के शासकों के पारिवारिक झगड़ों के कारण न केवल वहाँ मराठों का प्रवेश आसान हो गया था, बल्कि उत्तर भारत में अपनी शक्ति के विस्तार की उनकी महत्वाकांक्षा और अधिक बलवती हो गई। इन परिस्थितियों में सूरजमल के नेतृत्व में जाटों के राष्ट्रीय रंगमंच पर उभरने के लिए जयपुर का उत्तराधिकार संघर्ष उनके लिए पूर्वाभ्यास सिद्ध हुआ। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप जयपुर के शासक जाटों के राजनैतिक सरंक्षक होने की महत्ता स्वतः ही खो चुके थे।

चन्दौस (१७४६ ई०) और बगरू (१७४८ ई०) के युद्धों से सूरजमल की सैनिक प्रतिष्ठा बढ़ी और विभिन्न शासक उसके समर्थन की अपेक्षा करने लगे। मुग़लों एवं मराठों से अप्रत्यक्ष सम्पर्क में आने के कारण वह स्वयं भी उनकी रण-पद्धतियों से परिचित हुआ, जिन्हें ध्यान में रखते हुए, जाट राज्य की सुरक्षा एवं विस्तार की दृष्टि से उसने भी अपनी सैन्य क्षमता को बढ़ाया और भरतपुर में नवीन एवं सुदृढ़ दुर्जेय दुर्ग का निर्माण तेज़ी से प्रारम्भ किया। सूरजमल की दृष्टि में अब पूर्व की अपेक्षा मेवात और आगरा की तरफ़ मुग़ल खालसा भूमि और अमीरों की जागीर भूमि में शनैः शनैः हस्तक्षेप द्वारा जाट राज्य का विस्तार अधिक युक्तिसंगत था।

वल्लभगढ़ के बालू जाट को संरक्षण

सूरजमल ने शाही राजधानी दिल्ली व आगरा के निकट शाही जागीरों पर कब्जा करके वहाँ पर अपने जातीय लोगों को स्थापित करने और उन्हें पूर्ण सरंक्षण प्रदान करके अपने प्रभाव विस्तार की नीति अपनाई। दिल्ली के २४ मील दक्षिण र बल्लभगढ़[1] के स्थानीय जाट नेता बलराम ने इस समय मुग़ल सत्ता का खुला उल्लंघन शुरू कर दिया था। बलराम ने, जो पहले फ़रीदाबाद का मालगुजार था, सूरजमल का समर्थन पाकर न केवल बल्लभगढ़ के अपने दुर्ग का निर्माण किया बल्कि फ़रीदाबाद के स्थानीय मुग़ल अधिकारी ज़करिया ख़ान के पुत्र मीर याह्या ख़ान को पराजित करके पलवल एवं फ़रीदाबाद के शाही परगनों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[2]

---

१. बालू या बलराम के नाम पर ही इसका नामकरण बल्लमगढ़ हुआ जो इस समय बल्लभगढ़ कहलाता है। बल्लभगढ़ के जाट सामन्ती घराने के इतिहास के बारे में कहा जाता है कि १७०५ ई० के लगभग तेवतिया गोत्र का गोपालसिंह जाट बल्लभगढ़ के तीन मील उत्तर में सीही नामक गाँव में आकर बस गया था। उसने मथुरा-दिल्ली शाही मार्ग पर डकैती द्वारा काफ़ी शक्ति एवं सम्पत्ति प्राप्त कर ली, और तियागाँव (बल्लभगढ़ के पूर्व में ८ मील) के गूजरों के साथ मित्रता करके पड़ोसी गाँवों के राजपूत चौधरियों पर आक्रमण करके उन्हें मारा। फ़रीदाबाद के मुग़ल अधिकारी मुर्तज़ा ख़ान ने विद्रोहियों को दण्डित करने की अपेक्षा उसे फ़रीदाबाद परगने का चौधरी नियुक्त करके उसके साथ शान्ति स्थापित कर ली और १७१० ई० में उसे राजस्व वसूली में एक रुपये पर एक आना उपकर का अधिकार प्रदान किया। १७११ ई० में गोपालसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र चरनदास उत्तराधिकारी हुआ। बढ़ती हुई शाही दुर्बलता को देखकर उसने मुर्तज़ा ख़ान को राजस्व देना रोक लिया तथा मुग़ल सत्ता का उल्लंघन किया। किसी तरह से १७१४ ई० में चरनदास पकड़ा गया और मुर्तज़ा ख़ान द्वारा फ़रीदाबाद के क़िले में क़ैद कर लिया गया। कुछ समय के बाद उसके पुत्र बलराम ने, निष्कृति धन के झूठे भुगतान द्वारा, जो उसकी रिहाई के लिए निर्धारित किया गया था, ख़ान को धोखा देकर पिता को मुक्त करा लिया। पिता व पुत्र भरतपुर भाग गए और सूरजमल की सहायता से मुर्तज़ा ख़ान को मार दिया गया। १७३६ ई० में बलराम को मुग़ल दरबार से नायब बख्शी एवं राव की पदवी प्रदान की गई। इस सम्मान से उत्साहित होकर बलराम ने बल्लभगढ़ के दुर्ग का निर्माण करवाया। देखें, गज़ेटियर ऑफ दि देहली डिस्ट्रिक्ट, १८८३-८४ ई०, पृ० २१२-१३

२. तारीख़े अहमदशाही, पृ० २३ अ

सम्राट अहमदशाह के सिंहासनारोहण और जून १७४८ ई० में सफ़दरजंग के वज़ीर बनने पर फ़रीदाबाद का परगना उसे (सफ़दरजंग) जागीर में मिला। नए वज़ीर ने बलराम और सूरजमल को अनधिकृत शाही परगनों को त्याग देने के लिए लिखा, किन्तु उन्होंने इसकी उपेक्षा की, इस पर क्रुद्ध होकर जाटों को दण्डित करने के उद्देश्य से वज़ीर नवम्बर १७४६ ई० के प्रारम्भ में दिल्ली से बाहर निकला। लगभग इसी समय मीरबख़्शी सलावत ख़ान भी अपनी सेना के साथ मारवाड़ अभियान पर दिल्ली से बाहर निकला। ऐसा प्रतीत होता है कि वज़ीर और मीरबख़्शी में दो विभिन्न दिशाओं से जाटों के विरुद्ध अभियान करने और सूरजमल को दुहरे आक्रमण से गिरफ्त में लेने के बारे में किसी प्रकार की सहमति हो गई थीं।

वज़ीर सफ़दरजंग ने राजधानी से कूच करके शीघ्र ही फ़रीदाबाद पर अधिकार कर लिया और वहाँ से सूरजमल को सन्देश भेजा कि जो शाही परगने उसने दबा रखे हैं, वे सब वापस कर दिए जाय। किन्तु सूरजमल इतने कमज़ोर चरित्र का व्यक्ति नहीं था कि वज़ीर द्वारा माँगे गए स्थानों का शान्तिपूर्ण समर्पण कर दे। उसने डीग व कुम्हेर सहित अपने सभी दुर्गों को सेना व युद्ध-सामग्री से सुसज्जित कर युद्ध की तैयारियाँ आरम्भ कर दी। भाग्य ने साहसी जाट का साथ दिया और इसी समय क़ायम ख़ान की मृत्यु का समाचार मिलने पर वज़ीर फ़र्रुख़ाबाद के बंगश अफ़गानों को दण्डित करने के लिए, सूरजमल का मामला वैसे ही छोड़कर दिल्ली के लिए लौट पड़ा।[1]

सूरजमल द्वारा मीरबख़्शी सलावत ख़ान को पराजित करना

नवम्बर १७४६ ई० में मीरबख़्शी सलावत ख़ान ज़ुल्फ़िकारजंग मारवाड़ के उत्तराधिकार संघर्ष में राठौड़ बख़्तसिंह की सहायतार्थ दिल्ली से रवाना हुआ। उसकी १८,००० सेना में अली रुस्तम ख़ान, हकीम ख़ान, फ़तह अली ख़ान, मुहम्मद शुजा ख़ान, सैय्यद अब्दुल अली ख़ान, मीर अशगर ख़ान कोबरा और मुबारिज़ ख़ान सहित अनेक प्रतिष्ठित सरदार सम्मिलित थे। अजमेर व आगरा इस समय मीरबख़्शी की सूबेदारी में थे और चूँकि सूरजमल ने आगरा के एक बड़े भूभाग पर अवैध कब्जा कर रखा था, अतः वज़ीर की तरह वह भी उससे हिसाब साफ़ करना चाहता था। किन्तु वज़ीर के अचानक लौट जाने पर सलावत ख़ान ने भी पहले अजमेर जाकर रामसिंह को कुचलने और लौटते हुए सूरजमल को दण्डित करने का विचार किया।

---

१. हरचरनदास, चहार-गुलज़ार-ए-शुजाई (इलियट द्वारा उद्धृत, जि० VIII, पृ० १५८); तारीख़े अहमदशाही, पृ० २२ ब

सम्भवतः इसलिए वह आगरा के लिए रवाना न होकर दिल्ली के ३५ मील दक्षिण-पश्चिम में पाटौदी पहुँचा, यहाँ कुछ दिन रुकने के बाद मेवात को लूटते हुए वह निमराना[1] नामक स्थान पर पहुँचा, जो सूरजमल के अधिकार में था।[2]

उधर सूरजमल ने, जो मीरबख़्शी की गतिविधियों पर पूरी नज़र रखे हुए था, मेवात में नौगांव में ससैन्य अपना डेरा किया। उसने सलाबत ख़ान के पास वकील भेजकर उसके प्रदेश को उजाड़े जाने पर आपत्ति प्रकट करते हुए कहा कि वह भी बादशाह का स्वामिभक्त सेवक है। इस पर मीरबख़्शी ने उसे जवाब भेजा कि उसने शाही ख़ानाजाद असद ख़ान को मारकर पहले ही शत्रुतापूर्ण कार्यवाही की है और यह स्थान उसकी जागीर है, जहाँ अनेक स्थानों पर उसने अपने थाने क़ायम कर रखे हैं। अगर वह बादशाही बन्दा बनना चाहता है, तो ये स्थान ख़ाली कर दें और दो करोड़ रुपये पेशकश देकर शाही सेना में सम्मिलित हो जावे। किन्तु सूरजमल ने इन प्रस्तावों को ठुकरा दिया।[3]

३० दिसम्बर को मीरबख़्शी की सेना ने जाट रक्षक टुकड़ी को खदेड़कर नीमराना पर अधिकार कर लिया। इस छोटी सी विजय पर नए सूबेदार ने भारी हर्षोल्लास प्रकट किया और विजयोन्माद में जाट को तत्काल घुटने टेकने के लिए बाध्य करने के उद्देश्य से वहाँ रुकने का निश्चय किया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब सभी नारनौल की तरफ़ यात्रा के जारी रहने की अपेक्षा कर रहे थे, तभी मीरबख़्शी ने अचानक यात्रा के स्थगन के आदेश दिए। उसने अब विचार बदलकर पहले अकबराबाद सरकार की व्यवस्था ठीक करने और सूरजमल के साथ युद्ध करने का निश्चय किया। इस कारण रुस्तम अली ख़ान और फ़तह अली खान को, जो अग्रिम टुकड़ी के साथ रवाना भी हो चुके थे, पुनः शिविर में लौटना पड़ा।[4]

युद्ध परिषद की बैठक में सभी सरदारों ने इस आकस्मिक परिवर्तन से आश्चर्यचकित होकर एकमत से मीरबख़्शी को सलाह दी कि जाट के साथ झगड़ा करना अनुचित है और उचित यही होगा कि मूल योजना के अनुसार अजमेर की तरफ़ बढ़ा जाय, जहाँ उनके साथ सम्मिलित होने के लिए बख़्तसिंह पहले ही रवाना हो चुका है। इस योजना की सफलता पर उसकी सेना में नया विश्वास जगेगा और बख़्तसिंह की सहायता एवं सलाह भी लाभदायक सिद्ध होगी। उस स्थिति में अकबरा-

---

१. पाटौदी से ३३ मील द० प० में

२. सियार, III, पृ० ३११-१२; मुहम्मद अली ख़ान, तारीख़-ए-मुजफ़्फ़री (सरकार प्रतिलिपि), पृ० २६

३. सुजान चरित्र, पृ० ४३-४५

४. सियार, III, पृ० ३१२

वाद की व्यवस्था और सूरजमल का दमन आसान कार्य होगा। किन्तु हठी सूबेदार ने इस उचित सलाह को ठुकरा दिया और अपना पेशखाना वापस मँगवाया। डेरों की वापसी के वाद रात्रि सोभाचन्द[1] की सराय में व्यतीत की गई।[2]

दूसरे दिन १ जनवरी १७५० ई० को सूरजमल, जिसे सलावत ख़ान के उद्देश्य का पता चल चुका था, तेजी से उसके डेरे की ओर बढ़ा। रास्ते में मुग़लों के एक दल पर, जो चारे एवं अनाज की तलाश में काफ़ी दूर निकल आया था, जाट टूट पड़े। रात्रि के अन्धेरे में डेरे की ओर भागती हुई इस मुग़ल टुकड़ी की बहुत दुर्दशा हुई तथा हकीम ख़ान एवं रुस्तम ख़ान सहित अनेक लोग मारे गए या घायल हुए। बचे हुए व्यक्ति जब सलावत ख़ान के डेरों में पहुँचे तो वह भ्रमित एवं भयभीत हो गया। वह कुछ सोच सके, उसके पूर्व ही उसका डेरा लगभग ५,००० जाट सेना द्वारा घिर चुका था। इस जाट हमले के कारण वह इतनी निस्सहाय एवं भयावह स्थिति में पहुँच गया था कि उसकी व्यक्तिगत सुरक्षा पूर्णतया जाट राजा की दया पर निर्भर हो गई। सियार के लेखक का चाचा सैय्यद अब्दुल अली ख़ान जो मीर वख्शी के डेरे में उपस्थित था कहता है, "सौभाग्य से जाट राजा ने अपनी रक्षा के लिए यह क़दम उठाया था और उसने दूरदर्शितापूर्ण विचार से सलावत ख़ान को मारने या गिरफ्तार करने के परिणामों का सामना करना ठीक नहीं समझा, वल्कि दो-तीन दिन तक मुख्य डेरे को मात्र घेरे रखने तक ही अपने को सीमित रखा।"[3]

अन्तत: सलावत ख़ान को सन्धि-वार्ता के लिए वाध्य होना पड़ा, जो फ़तह अली ख़ान की मार्फ़त की गई। जाटों की निम्नलिखित शर्तों पर समझौता सम्पन्न हुआ—

१. मीरवख्शी का कोई भी व्यक्ति उनके प्रदेश में पीपल का वृक्ष नहीं काटेगा।

२. इस क्षेत्र के किसी भी मन्दिर का अपमान नहीं किया जाएगा और न हिन्दुओं की उपासना के सम्बन्ध में किसी तरह की आपत्ति की जाएगी।

३. सूरजमल ने इस बात का उत्तरदायित्व लिया कि वह उस क्षेत्र के (अजमेर सूबा) राजपूतों से १५ लाख रुपये पेशकश दिलाएगा, वशर्ते मीरवख्शी

---

१. नारनौल से ५ मील पूर्व एवं नीमराना से १३ मील उ० प० में

२. सियार, III, पृ० ३१२-१३; तारीख़े मुज़फ़्फ़री, पृ० २९-३०

३. सियार, III, पृ० ३१३-१४; तारीख़े मुज़फ़्फ़री पृ० ३१; सुजान चरित्र, पृ० ५०-५५; पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र संख्या २६

शपथ पूर्वक यह वचन दे कि वह नारनौल से आगे नहीं बढ़ेगा। वह व्यक्तिगत एवं सलाह के रूप में उसके अभियान में सहायता देगा।[1]

ऐसे हास्यास्पद अभियान तथा अकीर्तिकर समझौते के बाद मीरबख्शी ने अपना अभियान पुनः प्रारम्भ किया। सूरजमल ने अपने पुत्र जवाहरसिंह के नेतृत्व में ५,००० जाट सेना उसके साथ रवाना की। नारनौल के निकट पहुँचने पर बख्तसिंह आकर मीरबख्शी से मिला। बख्तसिंह ने जाटों के प्रति घृणा एवं तिरस्कार प्रकट करते हुए सलावत ख़ान को अजमेर अभियान द्वारा पुनः सम्मान अर्जित करने का प्रलोभन दिया। सलावत ख़ान द्वारा उसकी सलाह मान लिए जाने पर सूरजमल को उस पर अविश्वास करने का पर्याप्त कारण मिल गया।[2]

जाट सेना का अपने प्रदेश को लौटना

मीरबख्शी और बख्तसिंह की गुप्त मन्त्रणा ने जाट राजा को शंकित कर दिया था। उधर जयपुर राजा ईश्वरीसिंह इस सेना के विरुद्ध रामसिंह के पक्ष में युद्ध करने के लिए रवाना हो चुका था। बगरू के युद्ध के बाद सम्भवतः सूरजमल एवं ईश्वरीसिंह के सम्बन्धों में तनाव आ चुका था, किन्तु जयपुर शासक के प्रति अपनी परम्परागत वफ़ादारी की नीति को ध्यान में रखते हुए सूरजमल मारवाड़ के उत्तराधिकार युद्ध में नहीं उलझना चाहता था। ऐसी स्थिति में जब जोधपुर के महाराजा रामसिंह ने जाट सेना को सलावत ख़ान का साथ छोड़कर लौट जाने की शर्त पर एक लाख रुपया देने का प्रस्ताव किया, तो सूरजमल ने इसे तुरन्त स्वीकार करके मीरबख्शी के शिविर से अपनी सेना को वापस बुला लिया।[3]

सूरजमल और वज़ीर सफ़दरजंग के बीच मित्रता

जब मीरबख्शी राजपूताना में एक निरर्थक अभियान में लगा हुआ था, उस अवधि में वजीर बंगश अफगानों का दमन कर, फ़र्रुखाबाद में अपने प्रतिनिधि नवल

---

१. सियार, III, पृ० ३१५; तारीखे मुज़फ्फ़री, पृ० ३२; सरकार, पतन, I, पृ० १६७; सूदन के अनुसार सलावत ख़ान मेवात सूरजमल को सौंपकर उसे अपनी सेवा में लेना स्वीकार करता है और तदनुसार सूरजमल अपने पुत्र जवाहरसिंह को उसकी सेना के साथ आमेर की ओर भेजता है, सुजान चरित्र, पृ० ५७-५८ मराठा सूत्रों के अनुसार सूरजमल ने मीरबख्शी को नौ लाख रुपया देना स्वीकार किया, पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, २६, यह सम्भव है कि मेवात सहित अन्य इलाक़ों, जो मीरबख्शी की जागीर में थे और सूरजमल के अधिकार में थे, कि पेशकश राशि के रूप में ये रुपया देना तय हुआ हो, यद्यपि अन्य स्रोतों से इसकी पुष्टि नहीं होती।

२. सियार, III, पृ० ३१५,

३. जोधपुर राज्य की ख्यात (सीतामऊ संग्रह), जि० II, पृ० १६५ क व ख; सियार III, पृ० ३१५; पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र २५ व ३४

राय को नियुक्त करके २५ मई १७५० ई० को दिल्ली लौट आया था।[1] अगले महीने वालू जाट ने शम्सपुर के शाही थाने पर आक्रमण करके अधिकार कर लिया और वज़ीर द्वारा भेजी गई दूसरी सैनिक टुकड़ी को भी उसने खदेड़ दिया। इन समाचारों ने वज़ीर के क्रोध को भड़काया और उसने जाटों के विरुद्ध पूर्व मे स्थगित अभियान को पुनः प्रारम्भ करने का निश्चय किया। भारी वर्षा के बीच ३० जून को वज़ीर राजधानी से निकलकर अपनी सेना के साथ खिज्रावाद पहुँचा। लगभग इसी समय नवलराय के एक पत्र से वज़ीर को पठान उपद्रवों की गम्भीरता की सूचना मिली। पठानों के विरुद्ध सूरजमल का समर्थन पाने की उम्मीद में वज़ीर ने वलराम जाट के साथ शान्तिपूर्ण समझौता कर लेना ही उचित समझा। मराठा वकील के माध्यम से यह वार्ता चली, जिसके परिणामस्वरूप वालू जाट ने वजीर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया।[2]

इसके तुरन्त वाद वज़ीर ने नासिरुद्दीन हैदर के नेतृत्व में एक सेना नवलराय की सहायतार्थ रवाना की,[3] और सूरजमल को आमन्त्रित करके वह स्वयं फ़र्रुखावाद जाने के लिए सम्राट की स्वीकृति पाने हेतु राजधानी को लौट आया।[4] वज़ीर का सन्देश मिलने पर सूरजमल दिल्ली पहुँचा। खिज्रावाद के निकट किशनदास के तालाव पर सफ़दरजंग व सूरजमल के मध्य भेंट हुई और दोनों में मैत्री-सन्धि हो गई।[5] इसके पश्चात् सूरजमल अपने प्रदेश को तथा वज़ीर दिल्ली की ओर लौट पड़ा।

साम्राज्य के मीरवख़्शी पर विजय प्राप्त करने के कारण सूरजमल की प्रतिष्ठा में जो भारी वृद्धि हुई, उसी का परिणाम था कि वजीर उसकी मैत्री का आकांक्षी हुआ। फिर भी दोनों की मैत्री आपसी हितों की सुदृढ़ नीव पर आधारित थी। सूरजमल को भी मराठों के विरुद्ध एक शक्तिशाली मित्र की तलाश थी, जिन्होंने साल भर पहले (मई १७४६ ई०) उस पर हमला करके उसे चौथ देने पर विवश किया था।[6]

---

१. सरकार, पतन, I, पृ २०६; फ़र्स्ट टू नवाव, पृ० १४२
२. तारीखे़ अहमदशाही, पृ० २२ व; दिल्ली क्रानिकल्स (पृ २८-२६) में इस घटना की तिथि ३ जून दी हुई है, जो संभवतः शम्सपुर पर वालू के आक्रमण की तिथि हो सकती है। अगर यह ३ जुलाई है, तो यह वालू के समर्पण एवं समझौते की तिथि हो सकती है। सरकार वज़ीर के खिज्रावाद पहुँचने की तिथि ३० जून मानते हैं, देखें, पतन, I, पृ० २०१
३. फ़र्स्ट टू नवाव, पृ० १४२-४३
४. तारीखे़ अहमदशाही (पृ० २५ व) के अनुसार वज़ीर सम्राट की इच्छा के विरुद्ध रवाना हुआ था।
५. पेशवा दफ्तर, II, पत्र, १५
६. हिंगणे दफ़्तर, I, पत्र, ३५;

इस समझौते के परिणामस्वरूप वज़ीर सफ़दरजंग को अपने शत्रुओं के विरुद्ध एक शक्तिशाली एवं विश्वसनीय सहयोगी मिला, जो निराशा की गम्भीर परिस्थितियों में भी उसके पीछे दृढ़तापूर्वक खड़ा रहा और सूरजमल को एक शक्तिशाली राजनैतिक संरक्षक मिला, जिसके बल पर वह अधिक आत्म विश्वास के साथ हिन्दुस्तान की शिखर राजनीति में साहसिक भूमिका के लिए प्रवेश कर सकता था और अपने राज्य को विस्तृत एवं सुदृढ़ बना सकता था।

प्रथम अफगान युद्ध में वज़ीर का सहयोगी

२३ जुलाई १७५० ई० को वज़ीर अपनी ३०,००० सेना के साथ पठानों के विरुद्ध युद्ध के लिए राजधानी से निकल पड़ा। दस दिन बाद ही जब उसने मुश्किल से ४० मील की दूरी तय की होगी, उसे नवलराय की मृत्यु और खुदागंज की विपत्ति की सूचना मिली।[१] इस कारण पठानों से शक्ति-संघर्ष के पूर्व उसने एक बड़ी सेना एकत्र करने का निश्चय किया, तदनुसार मराठा सरदार सिन्धिया, होल्कर तथा सूरजमल जाट सहित अनेक मित्रों को तुरन्त ससैन्य आने का निमन्त्रण भेजा। भावी संघर्ष के प्रति वज़ीर में आत्म विश्वास की कितनी कमी थी, उसका इसी से पता चलता है कि सूरजमल जब अपनी सेना के साथ अलीगढ़ पहुंचा तो वज़ीर ने उससे जाट राज्य में बची हुई सारी सेना और सहयोगी जमींदारों को भी बुलाने का आग्रह किया। इस अतिरिक्त सेना के आ जाने पर जाट सवारों की संख्या १५,००० हो गई, जिसमें सूरजमल का साला बलराम, बालू जाट, गोकुलराम गौड़, सूरतिराम कटारिया, रामचन्द्र तोमर, पोखरमल, जैतसिंह, हठीसिंह, रणजीत व अनूपसिंह आदि प्रमुख सरदार सम्मिलित थे। भदावर का राजा हिम्मतसिंह, घसेरा का राव बहादुरसिंह, तथा मैंडू, जावेर व खुर्जा के जमींदारों को भी बुलाया गया।[२] जयपुर के राजा ईश्वरीसिंह की तरफ़ से हेमराज बख्शी ५,००० सेना के साथ पहुँचा। इस प्रकार लगभग एक लाख सेना के साथ वज़ीर ने अलीगढ़ से प्रयाण करके मारहरा,[३] कासगंज रुकते हुए कालिन्दी पार की और बादरी[४] में डेरा लगाया।[५]

---

१. फ़र्स्ट टू नवाब पृ० १४६

२. सुजान चरित्र, पृ० ६५-६७; पेशवा दफ़्तर, II, पत्र २३ के अनुसार चूड़ामन का पुत्र मोहकमसिंह भी इस जाट सेना में शामिल था।

३. एटा के १३ मील उत्तर-पश्चिम में

४. कासगंज के ५ मील पूर्व में

५. तज़किरा-ए-शाकिर ख़ान (सीतामऊ प्रतिलिपि), पृ० ६४; फ़र्स्ट टू नवाब, पृ० १५०

रामचत्तौनी का युद्ध और वज़ीर की पराजय

दूसरी ओर अहमद ख़ान बंगश को दिल्ली से वज़ीर की सेना की रवानगी की सूचना मिल चुकी थी, अतः उसने अग्रिम सैनिक टुकड़ी के पहुँचने के पूर्व ही २ अगस्त को ख़ुदागंज में नवलराय पर आक्रमण कर उसे मार डाला तथा अनेक उत्पात करता हुआ वज़ीर का सामना करने की तैयारी करने लगा।[1] वज़ीर ने अपने शिविर में रण-नीति एवं व्यूह रचना पर विचार विमर्श किया। हरावल में दाहिने पार्श्व का नेतृत्व उसने सूरजमल जाट को और वाम पार्श्व का इस्माइल वेग को सौंपा। राजा हिम्मतसिंह, नसीरुद्दीन हैदर, इशाक ख़ान और पांच हज़ार क़िज़िलवाश दस्तों के साथ स्वयं वज़ीर मध्य में रहा। मीर वका, शेरजंग, बहादुर व रमज़ान ख़ान के नेतृत्व में अग्रिम दस्ता तैयार किया गया और एक हज़ार तोपों को आगे पंक्तिबद्ध रखते हुए यह सेना युद्ध के लिए चल पड़ी।[2]

अहमद ख़ान बंगश ने अपनी बीस हज़ार सेना को दो भागों में विभाजित किया था। एक भाग में रुस्तम ख़ान अफ़रीदी के नेतृत्व में दस हज़ार रोहिल्ला पठान थे और दूसरे भाग में स्वयं के नेतृत्व में बंगश पठान। अली मुहम्मद ख़ान रुहेले के पुत्र सादुल्ला ख़ान के नेतृत्व में दस हज़ार रुहेले सैनिक भी उसकी सेना में आ मिले थे।[3] १३ सितम्बर (१७५० ई०) को रामचतौनी[4] के मैदान में दोनों पक्षों के बीच युद्ध आरम्भ हो गया। अहमद ख़ान की सेना वज़ीर की ओर बढ़ने लगी, जबकि रुस्तम ख़ान का सामना करने के लिए सूरजमल एवं इस्माइल वेग आगे बढ़े। सूरजमल ने बालू जाट को अपने आगे रवाना किया, जिसने आगे बढ़कर एक गाँव की ओट में सामरिक स्थल से शत्रु पर एकाएक हमला बोल दिया, जिससे कुछ पठान सैनिक मारे गए। कुछ पठान सैनिकों ने रुस्तम ख़ान के पास जाकर इस घटना का विवरण देते हुए बताया कि शत्रु ऐसे स्थान पर बैठा है, जो दिखाई नहीं देता और बिना ढाल-कवच के उसके निकट जाना कठिन है।[5]

---

१. इमाद, पृ० ४८; ख्वाजा अब्दुल करीम कश्मीरी, बयान-ए-वाकया, पृ० २५६; सरकार द्वारा उद्धृत, पतन, I, पृ० २११-१२

२. सियार, III, पृ० २९५; सेना की व्यूह रचना के लिए देखें, सुजान चरित्र, पृ० ७१-७२ एवं ७६

३. सुजान चरित्र, पृ० ७३; पेशवा दफ़्तर, II, पत्र २०

४. मारहरा से २२ मील पूर्व तथा एटा से १८ मील उत्तर में

५. सुजान चरित्र, पृ० ८३

अब रुस्तम ख़ान पालकी में बैठकर ५०० घुड़सवारों के साथ उस स्थान की ओर चल पड़ा और ६,००० पठान सैनिकों के साथ वालू जाट के मोर्चे पर भीषण आक्रमण कर दिया।[१] अल्प संख्या में होते हुए भी जाटों ने बहुत बहादुरी दिखाई, किन्तु एक के बाद एक प्रमुख जाट सरदार चैनसिंह, साहिबराम, तिलोकसिंह तोमर आदि धराशयी होते गए। इसी समय सूरजमल की दृष्टि वालू के मोर्चे की ओर पड़ी, जहाँ आकाश में ऊँची उठती हुई रेत ने उसे शंकित किया और उसने तुरन्त ही अपने मामा सुखराम को उधर भेजकर, स्वयं भी इस्माइल वेग के साथ उधर चल पड़ा।[२]

सूरजमल के पहुँचते ही युद्ध ने भीषण रूप ले लिया। रुस्तम ख़ान ने भी पालकी छोड़कर जाटों से आमने-सामने युद्ध किया। दोनों पक्षों के बहुत से सैनिक मारे गए, इसी बीच एक गोली लगने से रुस्तम ख़ान मारा गया।[3] उसके मरते ही पठान सैनिक भागने लगे। उनका पीछा करते हुए सूरजमल और इस्माइल वेग काफ़ी दूर निकल गए। सियार के लेखक के अनुसार इसके परिणामस्वरूप, "वज़ीर जो उन दोनों सेनापतियों को गोलाबारूद व सैन्य सामग्री भेज रहा था, स्वयं अपने मोर्चे पर इतना दुर्बल हो गया कि वह इन आवश्यकताओं से वंचित ही रहा और लगभग सैन्य विहीन हो गया। ढलती हुई शाम और सेना के बिखराव से उत्पन्न अव्यवस्था को वज़ीर ने नहीं भाँपा और न ही यह देखा कि जाट राजा पहले ही दृष्टि से ओझल हो चुका है।"[४]

दूसरी ओर अहमद ख़ान बंगश ने रुस्तम के मारे जाने के घातक समाचार से[५] एक क्षण के लिए भी विचलित हुए बिना अपने सैनिकों को चिल्लाकर कहा कि रुस्तम को भारी विजय मिली है और उसने सूरजमल तथा इस्माइल वेग को क़ैद कर लिया है, इसलिए उन्हें (बंगशों) भी वज़ीर को पराजित करके अफ़रीदियों पर अपनी सैनिक श्रेष्ठता प्रदर्शित करनी चाहिए। इस प्रकार शक्तिशाली बंगश सेना अचानक हतप्रभ वज़ीर के सामने प्रकट हो गई। उस स्थिति में कामगार ख़ान बलूच, मीर बका, रमज़ान ख़ान बहादुर व शेरजंग द्वारा षड्यन्त्र करके शत्रु पक्ष में भाग

---

१. सुजान चरित्र, पृ० ८४

२. वही, पृ० ८५

३. सूदन ने इस युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है जो प्रत्यक्षदर्शी का विवरण प्रतीत होता है, देखें, सुजान चरित्र, पृ० ८३-८६ एवं ९३-९६

४. सियार, III, पृ० २९५

५. गुलिस्ताने रहमत का लेखक मुस्तजाब ख़ान कहता है कि रुस्तम ख़ान सूरजमल के हाथों मारा गया था और यह तथ्य अहमद ख़ान बंगश ने अपने सैनिकों से छिपाया। देखें, कानूनगो, जाट, पृ० ८१ पा० टि०

जाने से वज़ीर की दशा शोचनीय बन गई।[1] ऐसे संकटपूर्ण क्षण में अफगानों के भीषण आक्रमण से वज़ीर की सेना छिन्न-भिन्न होकर भागने लगी, तभी एक गोली लगने से वज़ीर स्वयं घायल होकर अपने हौदे में गिर पड़ा। अफगान उसे पहचान नहीं सके, इस कारण वज़ीर के प्राण बच गए और राजा लक्ष्मीनारायण का छोटा भाई जगतनारायण वज़ीर के हाथी पर सवार होकर उसे सुरक्षित राजधानी की ओर ले आया।[2]

इस बीच जब सूरजमल और इस्माइल बेग लौटे तो उन्हें रास्ते में वज़ीर की पराजय एवं पलायन का समाचार मिला। सूरजमल अपने थोड़े से सैनिकों के साथ पलास के वृक्ष के निकट एक स्थान पर जब भावी क़दम पर विचार कर रहा था,[3] तभी पठान टुकड़ियों ने उसे देख लिया, किन्तु अहमद ख़ान बंगश ने विजय के क्षण में भी शक्तिशाली जाट से उलझना ठीक नहीं समझा और अपने सैनिकों को जाटों की तरफ़ जाने से मना किया।[4] सूरजमल भी जो अपनी शेष सेना से मिलने के लिए चिन्तित था, वहाँ से निकलकर कालिन्दी के तट पर पहुँचा, यहाँ उसे पता चला कि उसकी कुछ सेना मैंडू और शेष सेना मथुरा पहुँच गई है और वज़ीर भी दिल्ली चला गया है। यह सूचना मिल जाने के बाद सूरजमल भी अपने प्रदेश को लौट आया।[5]

द्वितीय अफगान युद्ध

दिल्ली पहुँचकर वज़ीर सफ़दरजंग अफगानों से अपने अपमान का बदला लेने और

---

१. पेशवा दफ्तर, ॥, पत्र २० व २३; सूदन के अनुसार युद्ध शुरू होने के पूर्व अहमद ख़ान बंगश ने सूरजमल को भी अपनी ओर मिलाने का असफल प्रयास किया था, सुजान चरित्र, पृ० ७६-७८

२. इस युद्ध एवं वज़ीर की पराजय के लिए देखें, गजेटियर ऑफ दि फ़र्रुखाबाद डिस्ट्रिक्ट, १८८० ई०, पृ० १६३-१६४; सियार, ।।।, पृ० २६५-६८; इमाद, पृ० ४६; तारीख़े अहमदशाही, पृ० २६ ब-२७ अ; सुजान चरित्र, पृ० ८०-६१; तारीख़े मुज़फ़्फ़री, पृ० ४६; शाकिर ख़ान, पृ० ६४; बयान ए वाकया, पृ० २६०-६२; गुलिस्ताने रहमत, पृ० ३७-३६; चहार गुलज़ार, पृ० ४०३ ब-४०६ ब; सरकार, पतन, ।, पृ० २१४-१६

३. साठ सवारनु सौं खडो रन में सूरज सूर।
तहाँ ख़बर पाई यहै भग्यौ कुर मनसूर॥—सुजान चरित्र, पृ० ६८

४. तब कही दूत यह है सुजान। जिन रुस्तम खाँ खाइय पठान॥
सा सुनत कही अहमद खान। सनमुख न जाउ इसके पठान॥
—सुजान चरित्र, पृ० ६६

५. सुजान चरित्र, पृ० ६८-६६

शाही दरवार में अपनी स्थिति पुनः सुदृढ़ करने पर विचार करने लगा। वज़ीर ने सैय्यद अब्दुल अली ख़ान, इस्माइल वेग, राजा लक्ष्मी नारायण, राजा नागरमल आदि मित्रों की सलाह पर सिन्धिया व होल्कर को उनकी सेनाओं के लिए २५,००० रुपये तथा सूरजमल को उसकी जाट सेना के लिए १५,००० रुपये प्रतिदिन देने के आश्वासन पर आमन्त्रित किया।[1] सारा प्रवन्ध पूरा कर लेने के बाद सम्राट से विधिपूर्वक आज्ञा प्राप्त करके ११ फरवरी १७५१ ई० को वज़ीर अपनी सेना के साथ रुहेलखण्ड पर आक्रमण के लिए दिल्ली से रवाना हुआ। मथुरा पहुँचने पर सूरजमल और आगरा पहुँचने पर सिन्धिया व होल्कर अपनी अपनी सेनाओं के साथ वज़ीर की सेना में शामिल हो गए।[2]

आगरा पहुँचने पर सूरजमल ने वज़ीर के माध्यम से होल्कर से, जिसके साथ चौथ की राशि के भुगतान के सम्वन्ध में उसकी शत्रुता चल रही थी, भेंट की। ऐसा प्रतीत होता है कि वज़ीर ने पठान युद्ध के वाद मामलात तय कर लेने का आश्वासन दिलाकर दोनों में अस्थायी मेल करा दिया था।[3]

फ़तहगढ़ का युद्ध

अग्रिम सेना के रूप में वीस हज़ार मराठा घुड़सवार सेना ने आगरा से रवाना होकर २० मार्च के लगभग कादिरगंज (इटावा के निकट) में कोईल व जालेसर के वंगश फ़ौजदार शादिल ख़ान पर आकस्मिक हमला कर दिया। ख़ान को पराजय हुई और भारी संहार के पश्चात् वह अपने शेष सैनिकों के साथ गंगा पार भाग गया।[4]

अहमद ख़ान वंगश जो रामचतौनी की विजय के बाद फ़र्रुख़ावाद सहित अलीगढ़ से लेकर कानपुर तक के विशाल भूभाग पर अधिकार कर चुका था और इस समय इलाहावाद का घेरा डाले हुए था, शादिल ख़ान की पराजय का समाचार सुनकर फ़र्रुख़ावाद की रक्षार्थ घेरा उठाकर तुरन्त लौट आया। अहमद ख़ान ने

---

१. गुलिस्ताने रहमत, पृ० ४०; सियार, III, पृ० २९५
२. सुजान चरित्र, पृ० १००; सरकार, पतन, I, पृ० २२१; सरदेसाई के इस आरोप में कोई सच्चाई नहीं है कि इस समय जाटों, रुहेलों तथा दोआव के पठानों ने एक संयुक्त मोर्चा स्थापित कर लिया और वज़ीर के प्रदेश पर खुला आक्रमण आरम्भ कर दिया, म० न० इ०, II, पृ० ३७२; इसके विपरीत यह अधिक सच है कि अफ़गानों के विरुद्ध वजीर की सफलता का बहुत वड़ा कारण सूरजमल की सहायता थी, देखें, अब्दुल रशीद, नजीबुद्दौला, पृ० २८
३. हिंगणे दफ़्तर, II, पत्र १०
४. पेशवा दफ़्तर, II, पत्र ३२, एवं XXVI, पत्र १७६; फ़र्रुख़ावाद गज़ेटियर, पृ० १६६; राजवाड़े, III, पृ० ३८३-८४; फ़र्स्ट टू नवाव, पृ० १७१

फ़तहगढ़[1] के निकट मोर्चाबन्दी की और रुहेला सरदार सादुल्ला ख़ान व बहादुर ख़ान भी उसकी सहायतार्थ पहुँच गए। भारी अवरोध के बीच १७ अप्रैल को वज़ीर गंगा पर पुल बनाने में सफल हुआ। १८ अप्रेल को होल्कर के सेनापति गंगाधर तांत्या के साथ सूरजमल ने पठानों पर भीषण हमला किया। घोर युद्ध हुआ, जिसमें बहादुर ख़ान सहित दस हज़ार रुहेले मारे गए तथा सादुल्ला ख़ान व अहमद ख़ान अपने प्राण बचाकर भागे। वज़ीर को निर्णायक विजय मिली और मराठों को लूट की विशाल सामग्री[2]।

इस पराजय से अहमद ख़ान बंगश काफ़ी हतोत्साह हो गया, फिर भी दोआब में मराठा-अफगान मुठभेड़े रुक-रुककर फरवरी १७५२ ई० तक चलती रही। इसी समय पंजाब पर अब्दाली के आक्रमण से चिन्तित सम्राट ने वज़ीर को रुहेलखण्ड के अफगानों से सन्धि करके तुरन्त राजधानी लौटने का आग्रह किया। परिणामस्वरूप फरवरी में सन्धि कर लेने के बाद वज़ीर राजधानी को लौट आया।[3]

असन्तुष्ट सूरजमल का युद्ध समाप्ति के पूर्व लौटना

फ़तहगढ़ के युद्ध के बाद जाट सेना के अफगान युद्ध में उपस्थित रहने के प्रमाण नहीं मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि विजय परिणाम के लाभ में जाट हितों की उपेक्षा से असन्तुष्ट और वज़ीर-मराठों की गुप्त सहमति से शंकित सूरजमल युद्ध की पूर्ण समाप्ति के पूर्व ही अपने प्रदेश को लौट चुका था। सूरजमल के लौटने का प्रमुख कारण आगरा सूबे की राजनीति थी। फ़तहगढ़ की विजय पर इनाम के रूप में मराठे व जाट दोनों ही आगरा सूबे के लिए प्रतिद्वन्द्वी दावेदार थे। मराठों की दुहरी नीति और अलीगढ़ सहित आगरा सूबे की माँग से सूरजमल को उनके इरादों के प्रति सन्देह हो गया था। वज़ीर जो इस समय मराठों की ओर झुका हुआ था, उनकी उपेक्षा करने की स्थिति में नहीं था, जैसा कि बाद में सम्पन्न सन्धि में मराठों

---

१. फ़र्रुखाबाद से तीन मील पूर्व में गंगा के ऊपर हुसैनपुर के घाट के पास।

२. इस युद्ध के वर्णन के लिए देखें, सियार, III पृ० ३०५ से ३०७; इमाद, पृ० ५७-५६; तारीख़े मुज़फ्फ़री, पृ० ५४-५६; गुलिस्ताने रहमत, पृ० ४०-४१ सुजान चरित्र, पृ० १००-१०३; फ़र्रुखाबाद गजेटियर, पृ० १६६-१६७; गुलगुले दफ़्तर (सीतामऊ संग्रह), I, पृ० ६५; सरकार, पतन, I, पृ० २२०-२२३; तारीखे अहमदशाही (पृ० २७ ब) का यह कथन सही नहीं है कि इस अभियान में सूरजमल जाट ने भाग नहीं लिया था।

३. सियार, III, पृ० ३०७; इमाद, पृ० ५६; बयान ए वाकया, पृ० २६५-६६; चहार गुलज़ार, पृ० ४०७; सुजान चरित्र, पृ० १०४

को प्राप्त लाभ से स्पष्ट है।[१] इसके विपरीत सम्भवतः अपने लिए किसी स्पष्ट आश्वासन के अभाव में असन्तुष्ट सूरजमल मई-जून १७५१ ई० में अपने प्रदेश को लौट आया था।[2]

वज़ीर और जावेद ख़ान के सत्ता संघर्ष में जाटों की भूमिका

लगभग एक वर्ष की दरबार से अनुपस्थिति के दौरान जावेद ख़ान और सम्राट की माता ऊधमबाई ने वज़ीर के विरुद्ध षडयन्त्र करके उसकी सत्ता नाममात्र की बना दी थी। सफ़दरजंग का साथी सलाबत ख़ान इस बीच मीरबख़्शी के पद से हटा दिया गया था। अफगान युद्ध से लौटकर जब सूरजमल माधोसिंह के साथ मिलकर राजधानी में सम्राट के समक्ष आगरा पर अपने दावे को सुदृढ़ बनाने के प्रयासों में जुटा हुआ था,[3] तो जावेद ख़ान ने, जो वज़ीर सफ़दरजंग की स्थिति कमज़ोर करने के प्रयत्नों में लगा हुआ था, उसे अपने पक्ष में मिलाने का उपयुक्त अवसर पाया। जावेद ख़ान ने सम्राट की ओर से अफगानों के विरुद्ध फ़तहगढ़ के युद्ध में शाही सेना की सफलता में सूरजमल व बालू जाट के योगदान की प्रशंसा करते हुए, २६ जनवरी १७५२ ई० को ख़िलअत प्रदान करके दोनों का सम्मान किया।[४] कुछ समय बाद १ अप्रैल को सूरजमल के ज्येष्ठ पुत्र जवाहरसिंह को ४,००० ज़ात व ३,५०० सवार का और दूसरे पुत्र रतनसिंह को ३,००० ज़ात व २,००० सवार के मनसब के साथ राव की उपाधि भी प्रदान की गई।[५]

यद्यपि जावेद ख़ान बालू को अपने कुत्सित प्रयासों के लिए वज़ीर के पक्ष से तोड़ने में सफल हुआ, किन्तु सूरजमल शीघ्रता में कोई क़दम नहीं उठाना चाहता था।

---

१. फरवरी १७५२ ई० की सन्धि, जिसके अनुसार मराठों को कोरा जहानाबाद से लेकर अलीगढ़ तक का आधा बंगश राज्य मिल गया था। इसके अलावा लूट व अन्य प्रकार से करोड़ों की धन-राशि प्राप्त हुई थी।

२. हिंगणे दफ़्तर, I, पत्र, १२

३. वही

४. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ३५-३६

५. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ३७; एक दिन बाद ही २ अप्रैल को वज़ीर सफ़दरजंग ने राजधानी लौटते हुए, अब्दाली के विरुद्ध सिन्धिया व होल्कर की सहायता पाने हेतु जो समझौता किया, उसके अनुसार उन्हें आगरा व अजमेर का सूबा देने का वचन दिया गया था। किन्तु सम्राट द्वारा अब्दाली से समझौता (२३ अप्रैल) कर लिए जाने से उपर्युक्त समझौता निरर्थक हो गया था, देखें म०न०इ०, II, पृ० ३७७-७८

यह सम्भव है कि जब जावेद ख़ान ने सूरजमल को शाही जागीर दिलाने का आश्वासन दिया,[1] तब उसने वालू को जावेद के प्रयासों में शामिल होने की स्वीकृति देकर और उसके उपद्रवों के प्रति मौन सहमति व्यक्त करके घटनाक्रम पर प्रतीक्षा करना उचित समझा हो।

२ जुलाई को वज़ीर सफ़दरजंग यमुना पार अपने डेरे से दिल्ली स्थित निवास स्थान को जाते हुए मार्ग में अंगूरी बाग में बैठे जावेद ख़ान से मिलने नहीं गया, जैसा कि शिष्टाचार के नाते उससे अपेक्षित था। जावेद ख़ान ने, जो अपने को सम्राट का एकमात्र प्रतिनिधि समझता था, इसे अपना अपमान समझा और वालू जाट को बुलाकर उसे सिकन्दराबाद की फ़ौजदारी प्रदान करके कुछ अनिष्टकारी निर्देश दिए।[2] वालू ने दिल्ली से लौटकर सिकन्दराबाद[3] पर आक्रमण कर, वहाँ के फ़ौजदार कमर अली को पराजित करके शाही जागीर पर अपना अधिकार कर लिया और वहाँ अनेक अत्याचार किए।

सिकन्दराबाद के पीड़ित लोगों ने जब सम्राट से शिकायत की तो सफ़दरजंग ने जो उस समय दरबार में ही उपस्थित था, जावेद ख़ान से पूछा, "यदि आपने वालू को उस स्थान का फ़ौजदार नियुक्त किया है, तो वह वहाँ के लोगों को क्यों लूट रहा है और कत्ल कर रहा है। अगर वह आपकी इच्छा के विरुद्ध काम कर रहा है तो मुझे उसे दण्ड देने के लिए वहाँ जाने दिया जाय।" जावेद ने उत्तर दिया कि वह स्वयं ही वालू को दण्ड देगा। उसने नरसिंह राम के नेतृत्व में एक छोटी सी सेना सिकन्दराबाद रवाना की, जिसने वहाँ इस तरह से आक्रमण किया कि वालू वहाँ से बच निकले। वालू ने वहाँ से निकलकर लूट में प्राप्त हुए माल के साथ दनकोर[4] के क़िले में शरण ली, जो जावेद ख़ान की जागीर में था। बाद में शाही आदेश पर वज़ीर ने अपनी सेना वहाँ भेजी, जहाँ कुछ संघर्ष के बाद वालू यमुना पार करके सुरक्षित वल्लभगढ़ भाग निकलने में सफल हो गया। इस प्रकार बादशाह की निजी जागीर को, जो राजधानी के बिल्कुल पास थी, लूटने वालों को कोई सज़ा नहीं दी गई और सिकन्दराबाद के लोगों की न्याय की पुकार व्यर्थ गई।[5]

जावेद ख़ान की हत्या (२७ अगस्त १७५२ ई०)

वालू काण्ड ने वज़ीर को काफ़ी परेशान और जावेद के इरादों के प्रति शंकित कर दिया था। अतः उसने उससे छुटकारे के लिए सहायतार्थ एवं विचार-विमर्श हेतु

---

१. तारीख़े आलमगीर सानी (सरकार प्रतिलिपि), पृ० ५८
२. सरकार, पतन, I, पृ० २०१; फ़र्स्ट टू नवाब, पृ० १९७
३. दिल्ली से ३२ मील दक्षिण पूर्व में।
४. वल्लभगढ़ से १५ मील पूर्व में
५. तारीख़े अहमदशाही, ३८, अ-४०अ; शाकिर ख़ान, पृ० ७१

सूरजमल और माधोसिंह को ससैन्य बुलाया। वज़ीर ने प्रत्यक्ष में तो यह प्रदर्शित किया कि वह शासन के मामलों में उचित प्रबन्ध के लिए सूरजमल को बुला रहा है, किन्तु उसका गुप्त उद्देश्य यह था कि जावेद के मामले में यदि सम्राट समर्थक लोग उपद्रव करें, तो वह उसकी सहायता से उसे दबा सके।[1] जावेद से निपटने के लिए उसने बालू काण्ड को ही विषयवस्तु बनाना युक्तिसंगत समझा, अतः वज़ीर ने बालू को भी साथ में बुलाया।

१४ अगस्त १७५२ ई० को सूरजमल जयपुर के प्रतिनिधि पेमसिंह के साथ ससैन्य दिल्ली पहुँच गया और खोजा सराय के समीप डेरा डाल दिया। बालू जाट भी यहाँ आकर सूरजमल के साथ हो गया। यहाँ वज़ीर सफ़दरजंग ने सूरजमल से संबंध सामान्य करने का गुप्त प्रयास किया, जो द्वितीय अफगान युद्ध के समय बिगड़ गए थे। सूरजमल ने आगरा सूबे में मराठों के विरुद्ध जाट हितों की रक्षार्थ कुछ निश्चित आश्वासन मिलने पर ही वज़ीर के साथ जुलाई १७५० ई० की मैत्री-सन्धि को दोहराया। इस प्रकार वज़ीर-जावेद ख़ान के सत्ता संघर्ष में सूरजमल ने वजीर का साथ देने का निश्चय किया और इस सम्बन्ध में बालू जाट को आवश्यक निर्देश दिए।[2]

बालू का मामला दरबार में प्रस्तुत करने के पूर्व जावेद ख़ान ने यह कहकर जाट से पहले मिलने का प्रयास किया कि जाटों ने पहले वजीर की अनुपस्थिति में उसके साथ मैत्रीपूर्ण समझौता किया है, अतः इस बार भी उसके (जावेद) मार्फ़त ही वार्तालाप किया जाय। किन्तु वजीर ने जावेद के प्रयास को सफल नहीं होने दिया और बालू जाट को दरबार में पेश कर दिया। खुले दरबार में बालू ने यह स्वीकार किया, "मैंने तो नवाब बहादुर (जावेद) के इशारे से यह लूटमार की है।" यह सुनने पर नवाब का सिर शर्म के मारे झुक गया और उसने क्षमा मांगी[3]। परन्तु मामला यहीं पर शान्त नहीं हुआ और वज़ीर एवं जावेद के बीच कटुता बढ़ती गई।

---

१. अहवाल सलातीन, पृ० ११६; बयान ए वाकया, इलियट जि० VIII, पृ० ६८; टिक्कीवाल की यह मान्यता सही नहीं है कि वजीर ने माधोसिंह के मार्फ़त सूरजमल को समझौते के लिए प्रेरित एवं आमंत्रित किया। लेखक ने जिन स्रोतों का उल्लेख किया है, उनसे इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती है और न ही इस बात की अपेक्षा की जा सकती है कि वजीर, जो स्वयं सूरजमल के बहुत घनिष्ठ रह चुका था, उससे वार्तालाप के लिए माधोसिंह की सहायता प्राप्त करें, देखें, जयपुर एण्ड लेटर मुग़ल्स, पृ० १७-१८

२. हिंगणे दफ़्तर, I, पत्र, ७६

३. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ४० ब; शाकिर ख़ान, पृ० ७१

अन्त में सम्राट की सहमति से यह तय हुआ कि वज़ीर और जावेद ख़ान दोनों सम्मिलित रूप से वज़ीर के निवास पर सूरजमल जाट के साथ वार्तालाप द्वारा बादशाह से उसकी भेंट और समझौते का कार्यक्रम तय करें। इस वार्ता के लिए २७ अगस्त का दिन निश्चित किया गया। इस दिन जावेद ख़ान की हत्या के घटनाक्रम का वर्णन तारीख़े अहमदशाही का लेखक इन शब्दों में करता है, "२७ शव्वाल को वज़ीर ने अपने एक मुख्य अधिकारी इस्माइल बेग ख़ान को प्रातःकाल सूरजमल को बुलाने भेजा तथा जावेद ख़ान को यह सन्देश भेजा कि वह आकर सूरजमल के साथ मामले तय करें। जावेद ख़ान ने वहाँ जाकर भोजन किया। दोपहर में सूरजमल आया और वह उन दोनों से मिला। समझौते पर लम्बा वार्तालाप चला। इस्माइल ख़ान निवास स्थल के दरवाज़े पर बैठा ताकि सूरजमल या जावेद ख़ान का कोई भी अनुयायी अन्दर प्रवेश न कर सकें। कुछ समय बाद सफ़दरजंग जावेद का हाथ पकड़ कर उसे एक बुर्ज की तरफ़ ले गया, जहाँ सूरजमल के विषय में एकान्त में बातचीत की। तभी मुहम्मद अली जार्ची तथा वजीर के कुछ अन्य सशस्त्र सिपाही उस बुर्ज में आ गए। वज़ीर उठ खड़ा हुआ। मुहम्मद अली जार्ची ने पीछे से आकर यह चिल्लाते हुए जावेद के पेट में छुरा घोंप दिया कि नमकहरामी का फल भोगो। दूसरे लोगों ने आकर अपनी तलवारों से उसका काम तमाम कर दिया। जावेद के सभी अनुयायी भाग खड़े हुए और भारी हंगामा मच गया। ऐसी अफवाह फैली कि वजीर ने सूरजमल की भी हत्या कर दी है। सूरजमल के समर्थकों की भीड़ वज़ीर के निवास-स्थल के बाहर इकट्ठी हो गई। तब वजीर के अनुयायियों ने जावेद के सिर को दरवाज़े के बाहर फैंका और उसका सामान बाग के नीचे डाल दिया। सूरजमल भी हवेली के बाहर आया और इस्माइल ख़ान के निकट बैठा। हंगामा शान्त हो गया।"[1]

जावेद ख़ान की हत्या पर राजधानी में कोई खुला विद्रोह नहीं हुआ। किन्तु इसके बाद सत्ता पर वज़ीर का शिकंजा कसता गया, जिसके फलस्वरूप पर्दे के पीछे षडयन्त्र बढ़े और जिसका अन्तिम परिणाम गृह युद्ध के रूप में सामने आया।

सूरजमल को राजसी सम्मान और मथुरा की फ़ौजदारी

वज़ीर सफ़दरजंग इस समय अत्यन्त शक्तिशाली था और सूरजमल उसका घनिष्ठ सहयोगी, अतः उसे उचित पुरस्कार मिलना स्वाभाविक था। २० अक्तूबर

---

१. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ४०ब-४१अ; बयान ए वाकया, पृ० २७३; हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, ७६; शाकिर ख़ान, पृ० ७१; सियार, III, पृ० ३२८-२६; तारीख़े मुज़फ्फ़री, पृ० ६०-६३, अहवाल सलातीन, पृ० ११६; चहार गुलज़ार पृ० ४०८ अ; काननूगो का यह कथन सही नहीं है कि जावेद खान को भोजन में जहर दे दिया गया, देखें, जाट, पृ० ८४

१७५२ ई० को सूरजमल वज़ीर के साथ दरबार में गया, जहाँ सम्राट ने उसे कुँवर बहादुर राजेन्द्र और उसके पिता बदनसिंह को राजा महेन्द्र की उपाधि प्रदान की।[1] इसके पश्चात् सूरजमल को अपने प्रदेश को लौटने की स्वीकृति मिल गई, किन्तु २२ तारीख को तालकटोरा के निकट तीन-चार हज़ार मराठा सैनिकों के इकट्ठा होने के समाचार पर उसकी रवानगी स्थगित हो गई।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि आगरा पर सूरजमल के दावे और वज़ीर से उसके गुप्त समझौते से आशंकित मराठों ने असन्तोष का प्रदर्शन एवं चेतावनी देने का प्रयास किया था। दिसम्बर में वज़ीर ने सूरजमल को मथुरा की फ़ौजदारी और खालसा भूमि में शाही जागीर प्रदान की। १४ दिसम्बर को सूरजमल अपने प्रदेश के लिए मथुरा की तरफ़ रवाना हो गया।[3] इस प्रकार वज़ीर का समर्थन करने के पुरस्कार स्वरूप सूरजमल द्वारा अधिकृत शाही प्रदेशों पर उसकी सत्ता को वैध करार कर दिया गया।

घसेरा के राव बहादुर सिंह पर आक्रमण

१७५३ ई० के प्रारम्भ में वज़ीर सफ़दरजंग ने कोईल के फ़ौजदार बहादुरसिंह बड़गूजर को, जिसने दुर्ग से तोपें हटाने के सम्बन्ध में उसका आदेश नहीं माना था, दण्डित करने के प्रश्न पर सूरजमल को बुलाकर विचार-विमर्श किया। दोनों को उसकी मित्रता एवं निष्ठा में सन्देह हो गया था, अत: उस पर आक्रमण करने का निश्चय किया गया। वज़ीर ने शाही आदेश प्राप्त कर इस अभियान की बागडोर सूरजमल को सौंप दी।[4] फरवरी (१७५३ ई०) के प्रथम सप्ताह में सूरजमल इस युद्ध के लिए दिल्ली से रवाना हुआ और जवाहरसिंह को एक सन्देश भेजकर अधिक से अधिक सेना के साथ अलीगढ़ पहुँचने के लिए कहा। यमुना पार करने के बाद रास्ते में जवाहरसिंह आकर अपने पिता के साथ शामिल हो गया।[5] १० फरवरी को सूरजमल ने अलीगढ़ पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया और बहादुरसिंह को जाकर अपने पैतृक दुर्ग घसेरा[6] में शरण लेनी पड़ी।[7]

---

१. तारीखे अहमदशाही, पृ० ४३ ब; वैण्डल के अनुसार जाट मुखिया को मुग़ल सम्राट ने जयसिंह की भांति राजा बना दिया था, देखें, सरकार, पतन, ।।, पृ० २७१

२. तारीखे अहमदशाही, पृ० ४३ ब

३. वही, पृ० ४५; तारीखे आलमगीर सानी, पृ० ५८ ब

४. सुजान चरित्र, पृ० १०५-१०६; तारीखे अहमदशाही में सूरजमल द्वारा घसेरा पर आक्रमण किए जाने का अत्यन्त संक्षिप्त उल्लेख है।

५. सुजान चरित्र, पृ० ११०

६. दिल्ली से ४० मील दक्षिण में

७. तारीखे अहमदशाही, पृ० ४७ अ; सुजान चरित्र, पृ० ११०-१११

सूरजमल ने अपने चारों सेनापतियों—सूरतिराम गौड़, भरथसिंह, दौलतराम और कृपाराम गूजर के साथ घसेरा की मोर्चाबन्दी पर सलाह मशविरा किया। उसने उत्तर दिशा की ओर के मोर्चे का नेतृत्व जवाहरसिंह को सौंपा। दक्षिण दिशा में बख्शी मोहनराम तथा सुल्तानसिंह एवं वीरनारायण सहित उसके भाई नियुक्त किए गए। बालू जाट को आवश्यकतानुसार किसी भी मोर्चे पर मदद पहुँचाने के लिए तैयार रखा गया। स्वयं सूरजमल ५,००० बन्दूकचियों एवं तोपखाने के साथ पूर्वी द्वार की ओर चला। उसके साथ उसका मामा सुखराम, मैंडू नरेश रतनसिंह, मीर मुहम्मद पनाह, गोकुलराम गौड, रामचन्द्र तोमर, शिवसिंह, हरिनागर सहित अनेक प्रमुख व्यक्ति थे।[1]

दूसरी ओर राव बहादुरसिंह ने भी अपने ८,००० सैनिकों तथा अन्न एवं शस्त्र के पर्याप्त भण्डार के साथ युद्ध की पर्याप्त तैयारियाँ कर ली थी। युद्ध के प्रथम दिन ही पूर्वी द्वार पर राव को पीछे हटना पड़ा और उसका भाई जालिमसिंह तथा पुत्र अजीतसिंह घायल हो गए। राव ने लौटकर गढ़ के भीतर से शत्रु पर भीषण गोलाबारी की। रात्रि में सूरजमल ने अपने बेलदारों को खाइयाँ खोदने का आदेश देकर मोर्चों को दुर्ग के परकोटे तक ले जाने को कहा।[2] इस प्रकार कई दिनों तक भीषण युद्ध चलता रहा।

युद्ध की भीषणता एवं निरन्तरता के बीच अपनी प्रजा के दबाव से राव बहादुरसिंह ने अपने घायल भाई जालिमसिंह को सन्धि के लिए जाट राजा के पास भेजा। सूरजमल ने दस लाख रुपये और सारा तोपखाना व गोला बारुद सौंप देने की शर्त पर मोर्चा उठाना स्वीकार किया, किन्तु हठीले राव ने तोपें छोड़ देने की शर्त नहीं मानी। इसी बीच जालिमसिंह की मृत्यु हो गई। कुछ समय बाद राव के मानस को टटोलने के उद्देश्य से सूरजमल ने अपने दूत अमरसिंह को गढ़ के भीतर भेजा। बातचीत के मध्य बहादुरसिंह ने अमरसिंह को कहा, "मैंने सदा सूरजमल का साथ दिया है और वज़ीर के पक्ष में पठान युद्ध में भाग लेकर रुस्तम खान को मारा। फिर भी सूरजमल ने अकारण ही मेरे ऊपर आक्रमण किया है, अतः जब तक अन्न व बारूद का भण्डार है, मैं बिना युद्ध के दुर्ग सौंपने वाला नहीं हूँ"। इस पर अमरसिंह ने कहा, "तूने हमारा मित्र बनकर मल्हार से मिलीभगत की, असद खान से भी युद्ध टालने की तूने सलाह दी थी और दुर्ग से कुछ तोपें हटाने के प्रश्न पर तू वज़ीर का विरोधी हो गया और अब जालिमसिंह की मृत्यु के बाद भी तू अपना हठ नहीं छोड़ रहा है। सूरजमल, जिसने तुझे राजनैतिक संरक्षण दिया, तेरे पिता के

---

१. सुजान चरित्र, पृ० ११२-११३
२ वही, पृ० ११५-११६

समान है, उससे युद्ध करके तुझे राजनैतिक अपयश एवं दुःख के अलावा कुछ नहीं मिलेगा।"[1]

अन्त में बहादुरसिंह ने छलपूर्वक कहा कि वह पूर्व में किए गए भुगतान के वायदे पर अमल करने को तैयार है, किन्तु उसके पास नक़द नहीं है, अतः जाट माल लेकर चाहे तो रख लें अथवा दिल्ली ले जाकर किसी साहूकार से हुण्डी ले लें। दूत ने लौटकर सूरजमल को सारी बात बताई, तो उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। राव ने क़िले से माल लादकर सूरजमल के प्रतिनिधि खेमानन्द के साथ दिल्ली रवाना कर दिया, साथ ही दिल्ली स्थित अपने पुत्र फ़तहसिंह को छल-रचना के बारे में सूचित कर दिया। फ़तहसिंह सारा माल अपने पास रखकर खेमानन्द को वकील बाबूराव के पास ले गया। उसने उसे साहूकार से हुण्डी दिलाए बिना, मात्र मौखिक आश्वासन द्वारा लौटा दिया।[2]

खेमानन्द ने लौटकर दिल्ली में जो नाटक हुआ उसके बारे में सूरजमल को बताया तो क्रुद्ध होकर उसने अपनी सेना के सभी मोर्चों पर उसी रात्रि को शत्रु पर भीषण आक्रमण करने के निर्देश भिजवाए। २२ अप्रैल की रात्रि को भीषण युद्ध हुआ।[3] दूसरे दिन मीर मुहम्मद पनाह सहित १५०० जाटों के खेत रहने के बाद ही जाट सेना दुर्ग में प्रवेश पा सकी।[4] इसी बीच दुर्ग की दीवारों पर जाटों के शोरगुल को सुनकर बहादुरसिंह ने जौहर करने का निश्चय किया। औरतों का कत्लेआम करके राव अपने पुत्र अजीतसिंह के साथ हताश सिपाहियों के दल के साथ अन्तिम युद्ध के लिए शत्रु पर टूट पड़ा। इस महत्वपूर्ण क्षण का प्रत्यक्षदर्शी विवरण प्रस्तुत करते हुए सूरजमल का दरबारी कवि सूदन बहादुरसिंह के शौर्य का अत्यन्त निष्पक्षता के साथ वर्णन करता है।[5] पिता व पुत्र अन्तिम क्षण तक लड़ते हुए मारे गए और २३ अप्रैल को घसेरा के दुर्ग पर जाट सेना का अधिकार हो गया।[6]

---

१. सुजान चरित्र, पृ० १२७-१२६

२. सुजान चरित्र, पृ० १२६-३१

३. वही, पृ० १३१-३२

४. सुजान चरित्र, पृ० १४०-४१; तारीख़े अहमदशाही का लेखक १५०० जाटों के मारे जाने का उल्लेख करता है (पृ० ५२ ब)।

५.
विंधाचल निकट बकाई बड़गूजर की
पासैरें बजाई गढ़पती राजु घर की।
अरु रानी ऐंड रानी मेंट रजपूती नाती
राउ रज रानि राहू लीनी गुरपुर की॥
सुजान चरित्र, पृ० १५१

६ तारीख़े अहमदशाही, पृ० ५२ ब; सुजान चरित्र में पृ० १०५ से १५३ तक इस युद्ध का विस्तार से वर्णन किया गया है।

तीन महीने तक लड़े गए इस युद्ध में जाट पक्ष को भारी क्षति उठाने के पश्चात् ही यह विजय मिल पाई थी। वज़ीर के लिए लड़े गए इस निरर्थक युद्ध को सूरजमल टाल सकता था, क्योंकि व्यक्तिगत रूप से वहादुरसिंह ने जाटों को शत्रु वनाने का कोई गम्भीर कार्य नहीं किया था। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि वज़ीर की अपेक्षा सूरजमल इस युद्ध के लिए अधिक उत्साही था, जो वहादुरसिंह की मैत्रीपूर्ण निष्ठा से सन्तुष्ट नहीं था और उसे अपनी प्रभुता की सीमा में लाना चाहता था।

साम्राज्य के गृह-युद्ध में सूरजमल वज़ीर का पक्षधर (मार्च से नवम्बर १७५३)

सूरजमल जव घसेरा के घेरे में व्यस्त था, उस अवधि में, राजधानी में उसके संरक्षक वज़ीर सफ़दरजंग के विरुद्ध घटनाक्रम तेज़ी से वदला। सम्राट अहमदशाह ने अपनी माता ऊधमवाई और मीरवख्शी इन्तिज़ामुद्दौला द्वारा शाही महलों से वज़ीर के प्रभाव को समाप्त करने के गुप्त प्रयासों को समर्थन दिया। मार्च १७५३ ई० में इन्तिज़ाम वज़ीर के विरुद्ध खुलकर सामने आ गया। किन्तु सफ़दरजंग के लिए इमाद-उल-मुल्क (गाजीउद्दीन द्वितीय) गम्भीर षड्यन्त्रकारी सिद्ध हुआ, जो उसकी वजह से ही इतना ऊँचा (नायव मीरवख्शी के पद पर) उठा था। १७ मार्च को, जव तनाव चरम सीमा पर था, और एक वार इसके पूर्व भी वज़ीर ने इमाद के माध्यम से इन्तिज़ाम से समझौते का व्यर्थ प्रयास किया, किन्तु यह कृतघ्न व्यक्ति अपने कृपापात्र स्वामी के विरुद्ध इन्तिज़ाम से सांठगांठ कर चुका था। इन संकटप्रद दिनों में राजधानी स्थित अन्ताजी माणकेश्वर के नेतृत्व में ५,००० मराठा टुकड़ी का महत्व वहुत वढ़ गया। मराठा समर्थन पाने की वज़ीर सफ़दरजंग की आशावादिता मिथ्या सिद्ध हुई और सम्राट व इमाद मराठा राजदूत वापू महादेव हिंगणे के माध्यम से मराठा सहायता पाने में सफल हो गए।[1]

---

१. हिंगणे दफ्तर, II, पत्र २३; तारीख़े अहमदशाही, पृ० ४८ व; तारीख़े मुज़फ्फ़री, पृ० ६६; इमाद, पृ० ६३; दिल्ली से अन्ताजी माणकेश्वर द्वारा पेशवा को लिखे २८ मार्च १७५३ ई० के पत्र से पता चलता है कि आगरा सूवे को, जो जाट एवं मराठा दोनों के लिए समान प्रलोभन एवं महत्वाकांक्षा का कारण वना हुआ था, अपने घनिष्ठ सहयोगी सूरजमल के निरन्तर प्रयासों के वावजूद, सफ़दरजंग मराठों को भी अपने साथ रखने के उद्देश्य से, उसे दिए जाने से वरावर टाल रहा था। किन्तु इसमें सफलता न मिलने पर, इस पत्र के अनुसार उसने अपनी वज़ारत का समर्थन करने पर आगरा की सनद सूरजमल को देने सम्वन्धी पत्र भेजा। दूसरी ओर सम्राट द्वारा वज़ीर के अवध व इलाहावाद के सूवे दिए जाने के आश्वासन पर मराठे उसके साथ हो गए, देखें, ऐतिहासिक पत्र व्यवहार, पत्र, ८६

१७ मार्च को सफ़दरजंग से शाही महलों का नियन्त्रण छीन लिया गया और अगले दिन जब उसने निराशा के स्वर में सम्राट से यह कहा "जहाँपनाह का दिल इन दिनों मुझसे फिर गया है, अतः मुझे आप जहां चाहे जाने का हुक्म दे" तो सम्राट ने तुरन्त उसे इन्हीं शब्दों में बांध दिया और वज़ीर की आशा के विरुद्ध उसे अपने सूबा अवध में जाने का आदेश दे दिया। । २६ मार्च को वज़ीर ने राजधानी से प्रस्थान कर नगर के बाहर खिज्राबाद में पड़ाव डाला, किन्तु यहाँ पर वह बहाना बनाकर अपनी रवानगी स्थगित करता रहा।[1] यह विलम्ब इसलिए किया गया ताकि अपने समर्थक राजेन्द्र गिरि गोसाई व सूरजमल जाट के पहुँचने के बाद अगले क़दम पर विचार कर सकें।[2]

गृह युद्ध[3] का प्रारम्भ

१ मई को १५,००० सेना के साथ सूरजमल के खिज़ाबाद पहुँचते ही सफ़दरजंग की निष्क्रियता समाप्त हो गई।[4] अब उसने सम्राट को सन्देश भिजवाया कि इमाद और इन्तिज़ाम को, जो उसका अनिष्ट चाहते थे, उसके पास भिजवा दें और नवाब कुदसिया (ऊधमबाई) से कहा जाय कि वह क़िले से निकलकर शहर में जाफ़र ख़ान की हवेली में ठहरे। इस पर सम्राट ने वज़ीर को प्रत्युत्तर भेजा कि उसे तो सूबा अवध जाने की छुट्टी दी गई थी। यह तमाम बातें, जो विद्रोह की है, मालूम होता है, सूरजमल जाट के आने से हुई हैं।[5]

सूरजमल के वज़ीर के शिविर में आ मिलने का तात्कालिक प्रभाव यह हुआ कि भूतपूर्व मीरबख़्शी सलाबत ख़ान, जिसे हाल ही में (३० अप्रेल) पुनः शाही सेवा में लिया गया था, यह सोचकर कि सफ़दरजंग की विजय की सम्भावना अधिक है, शाह मरदान की कब्र की तीर्थयात्रा के बहाने ४ मई को सफ़दरजंग के शिविर में आ मिला।[6]

---

१. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ४७ ब–४६ अ; राजधानी से प्रस्थान करने के पूर्व २२ मार्च को वज़ीर ने अब्दाली के प्रतिनिधि को विदा कर दिया, जो १३ फरवरी को वार्षिक कर लेने आया था और जिसे उसने रोक रखा था, देखें, सियार, III, पृ० ३२७

२. तारीख़े मुज़फ्फ़री, पृ० ७०

३. जदुनाथ सरकार (पतन, I, पृ० २५६-२७४) और आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव (फ़र्स्ट टू नवाब, पृ० २०८–२३४) ने इस गृह युद्ध का विस्तार से वर्णन किया है।

४. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ५२ ब; सुजान चरित्र, पृ० १५६

५. बयान ए वाकया, इलियट, VIII, पृ० ६६; अहवाल सलातीन, पृ० ११६

६. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ५२ ब; सियार, III, पृ० ३३३; तारीख़े मुज़फ्फ़री, पृ० ७१; बहार गुलजार, पृ० ४०६ अ

५ मई को राजेन्द्रगिरि ने बारापुला और इस्माइल ख़ान ने यमुना तट पर स्थित नगली गांव पर आक्रमण कर दिया, परिणामस्वरूप राजधानी में भय व्याप्त हो गया।[1] सम्राट ने दूत भेजकर वज़ीर को इन कार्यों को रोक देने की सलाह दी, किन्तु वज़ीर ने, जिसकी शक्ति और उत्साह अब बढ़ गया था, उसे ठुकराते हुए उत्तर भेजा, "सन्धि केवल तभी हो सकती है जब मीरबख्शी और द्वितीय बख्शी के पदों तथा लाहौर और मुल्तान की सूबेदारियों से तूरानियों को पदच्युत करके मेरे द्वारा मनोनीत व्यक्तियों को वहाँ नियुक्त किया जाय तथा इमाद व इन्तिज़ाम को दरबार से निकाल दिया जाय, अन्यथा कल मैं उनकी हवेलियों पर आक्रमण करूँगा और शाही क़िले पर भी मेरी दृष्टि है।" सम्राट ने रक्षात्मक क़दम के तौर पर ८ मई को वज़ीर के पुत्र शुजाउद्दौला को शाही तोपखाने से हटा दिया और युद्ध की तैयारियों के आदेश दे दिए।[2]

जाटों द्वारा पुरानी दिल्ली की लूट

९ मई को सफ़दरजंग ने लूट का माल रख लेने की शर्त पर सूरजमल और राजेन्द्रगिरि गोसाईं को पुरानी दिल्ली पर हमला करने की स्वीकृति दे दी। जाटों ने लाल दरवाज़े के निकट आबादी के क्षेत्रों में भयंकर लूटमार की, जहां पर अधिकांश सत्ता पक्ष के लोग ही रहते थे। आतंकित लोग शरण लेने के लिए शाहजहाँनाबाद (नई दिल्ली) के परकोटे के भीतर चले गए। दूसरे दिन (१० मई) सैय्यदवाड़ा व बीजल मस्जिद, तारकागंज तथा जयसिंहपुरा के निकट अब्दुलानगर में, जनता के संगठित प्रतिरोध के बावजूद, जाटों ने भारी लूटपाट की।[3] उसी दिन सायंकाल शाही सेना ने अन्ताजी माणकेश्वर के नेतृत्व में ४,००० मराठा सेना के साथ वज़ीर की सेना के अग्रभाग पर धावा बोलकर राजेन्द्रगिरि गोसाईं की सेना को तितर-बितर कर दिया।[4]

जाट निरन्तर दिल्ली को लूट रहे थे। उनके हमलों से केवल उन्हीं स्थानों की रक्षा हो पाती थी, जहाँ समय पर शाही टुकड़ियां पहुँच जाती थी अथवा जो शाही तोपखाने के पास थे। पुरानी दिल्ली और उसके आस-पास के लोग अपने प्राणों व सम्पत्ति की रक्षार्थ भागकर बड़ी संख्या में नई दिल्ली पहुँचे और भय एवं परेशानी में बाजारों व गलियों में इधर-उधर भटक रहे थे। शरणार्थियों की भारी संख्या व परेशानी को देखते हुए सम्राट ने साहिबाबाद बाग, तीस हज़ारी बाग तथा

---

१. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ५३ अ; सुजान चरित्र, पृ० १६५
२. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ५३ अ एवं ब
३. वही, पृ० ५३ ब; दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ४१
४. फ़र्स्ट टू नवाब, पृ० २१९; सरकार, पतन, I, पृ० २९२

१७ मार्च को सफ़दरजंग से शाही महलों का नियन्त्रण छीन लिया गया और अगले दिन जब उसने निराशा के स्वर में सम्राट से यह कहा "जहाँपनाह का दिल इन दिनों मुझसे फिर गया है, अतः मुझे आप जहां चाहे जाने का हुक्म दे" तो सम्राट ने तुरन्त उसे इन्हीं शब्दों में बांध दिया और वज़ीर की आशा के विरुद्ध उसे अपने सूबा अवध में जाने का आदेश दे दिया। । २६ मार्च को वज़ीर ने राजधानी से प्रस्थान कर नगर के बाहर खिज्रावाद में पड़ाव डाला, किन्तु यहाँ पर वह बहाना बनाकर अपनी रवानगी स्थगित करता रहा।[1] यह विलम्ब इसलिए किया गया ताकि अपने समर्थक राजेन्द्र गिरि गोसाई व सूरजमल जाट के पहुँचने के बाद अगले क़दम पर विचार कर सकें।[2]

गृह युद्ध[3] का प्रारम्भ

१ मई को १५,००० सेना के साथ सूरजमल के खिज़ाबाद पहुँचते ही सफदरजंग की निष्क्रियता समाप्त हो गई।[4] अब उसने सम्राट को सन्देश भिजवाया कि इमाद और इन्तिजाम को, जो उसका अनिष्ट चाहते थे, उसके पास भिजवा दें और नवाब कुदसिया (ऊधमबाई) से कहा जाय कि वह क़िले से निकलकर शहर मे जाफ़र ख़ान की हवेली में ठहरे। इस पर सम्राट ने वजीर को प्रत्युत्तर भेजा कि उसे तो सूबा अवध जाने की छुट्टी दी गई थी। यह तमाम बातें, जो विद्रोह की है, मालूम होता है, सूरजमल जाट के आने से हुई हैं।[5]

सूरजमल के वजीर के शिविर में आ मिलने का तात्कालिक प्रभाव यह हुआ कि भूतपूर्व मीरबख़्शी सलाबत ख़ान, जिसे हाल ही में (३० अप्रेल) पुनः शाही सेवा में लिया गया था, यह सोचकर कि सफ़दरजंग की विजय की सम्भावना अधिक है, शाह मरदान की कब्र की तीर्थयात्रा के बहाने ४ मई को सफ़दरजंग के शिविर में आ मिला।[6]

---

१. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ४७ ब–४६ अ; राजधानी से प्रस्थान करने के पूर्व २२ मार्च को वजीर ने अब्दाली के प्रतिनिधि को विदा कर दिया, जो १३ फरवरी को वार्षिक कर लेने आया था और जिसे उसने रोक रखा था, देखें, सियार, III, पृ० ३२७

२. तारीख़े मुजफ्फ़री, पृ० ७०

३. जदुनाथ सरकार (पतन, I, पृ० २५६-२७४) और आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव (फ़र्स्ट टू नवाब, पृ० २०८–२३४) ने इस गृह युद्ध का विस्तार से वर्णन किया है।

४. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ५२ ब; सुजान चरित्र, पृ० १५६

५. बयान ए वाकया, इलियट, VIII, पृ० ६६; अहवाल सलातीन, पृ० ११६

६. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ५२ ब; सियार, III, पृ० ३३३; तारीख़े मुजफ्फ़री, पृ० ७१; चहार गुलजार, पृ० ४०६ अ

५ मई को राजेन्द्रगिरि ने बारापुला और इस्माइल ख़ान ने यमुना तट पर स्थित नगली गांव पर आक्रमण कर दिया, परिणामस्वरूप राजधानी में भय व्याप्त हो गया।[1] सम्राट ने दूत भेजकर वज़ीर को इन कार्यों को रोक देने की सलाह दी, किन्तु वज़ीर ने, जिसकी शक्ति और उत्साह अब बढ़ गया था, उसे ठुकराते हुए उत्तर भेजा, "सन्धि केवल तभी हो सकती है जब मीरबख्शी और द्वितीय बख्शी के पदों तथा लाहौर और मुल्तान की सूबेदारियों से तूरानियों को पदच्युत करके मेरे द्वारा मनोनीत व्यक्तियों को वहाँ नियुक्त किया जाय तथा इमाद व इन्तिज़ाम को दरबार से निकाल दिया जाय, अन्यथा कल मैं उनकी हवेलियों पर आक्रमण करूँगा और शाही क़िले पर भी मेरी दृष्टि है।" सम्राट ने रक्षात्मक क़दम के तौर पर ८ मई को वज़ीर के पुत्र शुजाउद्दौला को शाही तोपखाने से हटा दिया और युद्ध की तैयारियों के आदेश दे दिए।[2]

जाटों द्वारा पुरानी दिल्ली की लूट

९ मई को सफ़दरजंग ने लूट का माल रख लेने की शर्त पर सूरजमल और राजेन्द्रगिरि गोसाई को पुरानी दिल्ली पर हमला करने की स्वीकृति दे दी। जाटों ने लाल दरवाज़े के निकट आबादी के क्षेत्रों में भयंकर लूटमार की, जहां पर अधिकांश सत्ता पक्ष के लोग ही रहते थे। आतंकित लोग शरण लेने के लिए शाहजहाँनाबाद (नई दिल्ली) के परकोटे के भीतर चले गए। दूसरे दिन (१० मई) सैय्यदबाड़ा व बीजल मस्जिद, तारकागंज तथा जयसिंहपुरा के निकट अब्दुलानगर में, जनता के संगठित प्रतिरोध के बावजूद, जाटों ने भारी लूटपाट की।[3] उसी दिन सायंकाल शाही सेना ने अन्ताजी माणकेश्वर के नेतृत्व में ४,००० मराठा सेना के साथ वज़ीर की सेना के अग्रभाग पर धावा बोलकर राजेन्द्रगिरि गोसाई की सेना को तितर-बितर कर दिया।[4]

जाट निरन्तर दिल्ली को लूट रहे थे। उनके हमलों से केवल उन्हीं स्थानों की रक्षा हो पाती थी, जहाँ समय पर शाही टुकड़ियां पहुँच जाती थी अथवा जो शाही तोपखाने के पास थे। पुरानी दिल्ली और उसके आस-पास के लोग अपने प्राणों व सम्पत्ति की रक्षार्थ भागकर बड़ी संख्या में नई दिल्ली पहुँचे और भय एवं परेशानी में बाजारों व गलियों में इधर-उधर भटक रहे थे। शरणार्थियों की भारी संख्या व परेशानी को देखते हुए सम्राट ने साहिबाबाद बाग, तीस हज़ारी बाग तथा

---

१. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ५३ अ; सुजान चरित्र, पृ० १६५
२. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ५३ अ एवं ब
३. वही, पृ० ५३ ब; दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ४१
४. फ़र्स्ट टू नवाब, पृ० २१९; सरकार, पतन, I, पृ० २६२

अन्य कुछ हवेलियों को खाली करा दिया, जहाँ छोटे-बड़े सभी लोगों ने आश्रय लिया।[1]

कई दिनों तक चलने वाली इस लूटपाट से लोगों का जीवन, सम्मान और उनकी सम्पत्ति असुरक्षित हो गई थी। दरवेशों के मकान भी जाटों के अत्याचारों से नहीं बच सके।[2] नगर के दरवाज़े तक लूटपाट करके जाटों ने सभी मोहल्लों एवं मकानों को नष्ट कर दिया, जो पूर्णतया प्रकाशविहीन हो गए, तथा लाखों रुपयों की सम्पत्ति लूटी गई।[3] बहुत से नागरिकों ने, जो भागकर आत्मरक्षा भी नहीं कर सकते थे, निराश होकर आत्म हत्या कर ली।[4] इस लूटपाट और अत्याचार को दिल्ली के लोग बहुत अर्से तक "जाट-गर्दी" के नाम से याद करते रहे।[5]

युद्ध की विधिवत् घोषणा

१३ मई को सम्राट ने सफ़दरजंग को वज़ीर के पद से हटाकर उसके स्थान पर इन्तिजाम को नियुक्त कर दिया तथा इमाद को मीरबख्शी बना दिया। इसके

१. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ५४; चहार गुलज़ार, पृ० ४१० ब;
सूदन लिखता है—

गौं परयौ सोर दिल्ली अपार। पुरलोग पुकारत बार बार।
ब्रजबीर हंकारत डार डार। फटकार खग्ग सेलनुउसार।

सुजान चरित्र, पृ० १७१

एक अन्य स्थान पर सूदन इस लूट एवं हत्या की यज्ञ से तुलना करते हुए लिखता है—

धर्म-सुत-धाम जान जमुना निकट मान
सर्व मद जज्ञ कौ बनायौ ब्यौत पूर है।
औज की अगिन इन्द्रपुर सौं अगिनकुण्ड
होता श्री सूजान जजमान मनसूर है॥

सुजान चरित्र, पृ० १८०

२, शाकिर ख़ान, पृ० ७४, सियार, III, पृ० ३३४

३. तारीखे अहमदशाही, पृ० ५५ ब, कवि सूदन लिखता है—

देस देस तजि लच्छिमी दिल्ली कियौ निवास।
अति अधर्म लखि लूट मिस चली करन ब्रजवास॥

सुजान चरित्र, पृ० १७९

४. सियार, III, पृ० ३३३

५. इमाद, पृ० ६३; सुजान चरित्र में पृ० १६३ से १७९ तक इस लूट का अत्यन्त विशद एवं काव्यमय वर्णन किया गया है।

जवाब में सूरजमल की सलाह पर सफ़दरजंग ने भी एक ऐसे लड़के को, जिसे हाल ही में शुजाउद्दौला ने खरीदा था और जिसे कोई नहीं जानता था, कामबख्श का पोता बतलाकर अकबर आदिलशाह के नाम से सम्राट घोषित कर दिया। सफ़दरजंग ने स्वयं को उसका वज़ीर और सलावत खान को मीरबख्शी घोषित किया। इस प्रकार दोनों पक्षों की ओर से विधिवत् युद्ध का प्रारम्भ हो गया।[१]

१४ मई को जाटों ने चारबाग, बाग-ए-कुलतात और हकीम मुनीम के पुल की ओर लूटपाट की। १५ मई को जाटों ने जयसिंहपुरा को लूटा और अनेक स्थानों पर आग लगा दी।[२]

फीरोजशाह कोटला का युद्ध

यह देखकर कि प्रतिदिन नई सेनाओं के आने से शाही पक्ष सुदृढ़ हो रहा है, सफ़दरजंग ने सूरजमल को बुलाकर कहा कि अब लूटमार बन्द करके वास्तविक युद्ध किया जाय।[३] ताजा मन्त्रणा के अनुसार १६ मई को सफ़दरजंग ने जाटों के साथ दिल्ली पर ज़बर्दस्त हमला किया। तालकटोरा और लालदरवाज़े के निकट तोपखाने के समक्ष भारी नुक़सान के बावजूद जाट डटे रहे और काबुली दरवाज़े से पुराने नगर में प्रवेश करते समय सादिल ख़ान एवं राजा देवीदत्त को एक घमासान युद्ध में पराजित किया। १७ तारीख को सफ़दरजंग की सेना फ़ीरोजशाह के कोटला[४] पर अधिकार करने में सफल हुई। इस्माइल ख़ान ने फ़ीरोजशाह के क़िले पर तोपें चढ़ा दी और शाही क़िले पर गोले बरसाए। निकट की खन्दकों में मोर्चे डाले जाटों ने भारी संहार के बावजूद अद्भुत दृढ़ता दिखाई। दूसरी ओर नगर के दक्षिणी दरवाज़े (दिल्ली दरवाज़ा) पर रखी तोपों से शाही ख़ानजादों ने प्रत्याक्रमण करके कोटला की बहुत सी दीवारें और बुर्ज गिरा दिए।[५]

ऐसी स्थिति में सफ़दरजंग ने सूरजमल से इस प्रश्न पर विचार विमर्श किया कि निरन्तर आक्रमण के बावजूद दुर्ग क्यों नहीं टूट रहा है। सूरजमल ने सुझाव दिया कि इस बार तपती हुई रेत को छोड़कर नदी (जमुना) की तरफ़ से हमला किया जाय।[६] ५ जून को इस्माइल ख़ान ने नगर की प्राचीर पर धावा बोला। नए वजीर

---

१. तारीखे अहमदशाही, पृ० ५४ ब, सुजान चरित्र, पृ० १६२; सियार, III, पृ० ३३२, बयान ए वाकया, पृ० २७६, चहार गुलज़ार, पृ० ४०६ ब

२. तारीखे अहमदशाही, पृ० ५५ अ

३. सुजान चरित्र, पृ० १८१

४. दिल्ली से तीन मील दक्षिण में।

५. तारीखे अहमदशाही, पृ० ५५ अ एवं ब, सुजान चरित्र, पृ० १८२-८८

६. सुजान चरित्र, पृ० १८९

इन्तिजाम की हवेली पर अधिकार करने हेतु नई दिल्ली की दक्षिणी प्राचीर के बुर्ज के नीचे तक खाई खोदकर बारूद बिछा दी गई। सुरंग के फटने पर बुर्ज गिर गया और अनेक लोग मारे गए। तभी सफ़दरजंग की सेना ने नदी की ओर से आक्रमण कर दिया। इमाद, नजीब और हाफ़िज बख्तावर खान के नेतृत्व में शाही सेना ने साहसिक प्रतिरोध किया। जाटों व रुहेलों के बीच भीषण संघर्ष हुआ, जिसमें नजीब घायल हुआ और ४०० रुहेले सैनिक मारे गए। सफ़दरजंग के पक्ष को भी भारी हानि उठानी पड़ी। ६ तारीख को सूर्योदय से पूर्व ही शाही सेना ने सफ़दरजंग की सेना को कोटला से खदेड़कर उसके तोपखाने पर अधिकार कर लिया। इससे नगर के लोगों को बहुत राहत मिली और युद्ध की गति कम हुई। जाट सैनिक पुनः पुराने ढंग से नगर के चारों ओर एक स्थान से दूसरे स्थान का चक्कर लगा-लगाकर लूटपाट करते रहे। १२ जून को ईदगाह के निकट हुए एक संघर्ष में जाटों को भारी नुक़सान उठाना पड़ा।[1]

राजेन्द्र गिरि गोसाई की मृत्यु

१४ जून को राजेन्द्र गिरि गोसाई और सूरजमल के सेनापति सूरतिराम गौड़ के नेतृत्व में शाही खाइयों पर भीषण हमला किया गया। शाही दल के बदख्शियों व मराठों को भारी क्षति उठानी पड़ी। युद्ध की भीषणता के बीच एक गोली लगने से राजेन्द्र गिरि गोसाई मारा गया और सूरतिराम घायल हुआ। इससे सफ़दरजंग का हौसला पस्त हो गया। सूरजमल ने गोकुलराम गौड़ (सूरतिराम गौड़ का भाई) के नेतृत्व में दूसरी जाट सेना भेजी, परन्तु वह भी पराजित हो गई।[2]

निर्भीक साधु राजेन्द्र गिरि गोसाई की मृत्यु, सफ़दरजंग के पक्ष के लिए भारी आघात सिद्ध हुआ। लगभग दस दिन तक युद्ध स्थगित रहा। इस बीच प्रतिदिन सफ़दरजंग के सैनिक उसका साथ छोड़ते जा रहे थे जबकि दूसरी ओर शाही शक्ति बढ़ती जा रही थी।[3] ऐसी स्थिति में सूरजमल भी हताश होने लगा और उसने सम्राट द्वारा क्षमादान एवं अपनी जमींदारी की सुरक्षा की शर्त पर शान्ति की इच्छा प्रकट की।[4] किन्तु इमाद के विरोध के कारण यह शान्ति वार्ता सफल नहीं हो सकी।

---

१. तारीखे अहमदशाही, पृ० ५६ब-५७ब; बयान ए वाकया, पृ० २७६-८०; सरकार, पतन, I, पृ० २६६-६७, सुजान चरित्र में इस युद्ध का वर्णन नहीं मिलता है।
२. सुजान चरित्र, पृ० १६०-१६३; तारीखे अहमदशाही, पृ० ५६ अ; सियार, III, पृ० ३३३
३. सरकार, पतन, I, पृ० २६८ पा० टि०
४. सआदत खान के भाई के पुत्र शेरजंग ने, जो सफदरजंग का साथ छोड़कर शाही पक्ष में आ गया था, २८ जून को सूचित किया कि सफ़दरजंग की सेना टूट चुकी है और सूरजमल के अलावा अब कोई भी शक्तिशाली सरदार नहीं बचा है और वह भी दिल से सम्राट के पास आने को तैयार है, यदि उसे लिखित में जमींदारी की सुरक्षा के साथ क्षमादान किया जाय। इस उद्देश्य के लिए सूरजमल ने एक व्यक्ति वजीर के पास भेजा, सम्राट ने राजा देवीदत्त को सूरजमल से वार्ता के लिए नियुक्त किया, देखें, तारीखे अहमदशाही, पृ० ६० अ एवं ब

गढ़ी मैदान का युद्ध

जुलाई में सूरजमल की सलाह पर सफ़दरजंग की सेना सुरक्षित स्थान के लिए तिलपत की ओर पीछे हटने लगी, ताकि खुले मैदान में युद्ध के लिए शत्रु को बाहर लाया जा सके। इमाद को जब यह खबर लगी तो वह रूहेलों व पठानों को लेकर शत्रु पर आक्रमण के लिए चल पड़ा। कुछ ही समय में शाही सेना सफ़दरजंग की सेना द्वारा छोड़ गए उस स्थान में फैल गई जो यमुना के पश्चिम से कालकादेवी की पहाड़ी तक था। शाही सेना के आने का समाचार सुनकर सूरजमल ने शत्रु का सामना करने के लिए तत्काल बालू व जवाहर के नेतृत्व में अग्रिम सेना रवाना की और स्वयं चार घड़ी बाद शेष सेना के साथ तिलपत से रवाना हुआ। २५ जुलाई को गढ़ी मैदान के निकट हुऐ भीषण युद्ध में जाट सेना रुहेलों की सेना को पराजित करने में सफल रही और उनकी सारी तोपें व शस्त्र छीन लिए गए।[1] इस पराजय से क्रुद्ध इमाद ने राजधानी को लौटकर अगले दिन सम्राट अहमदशाह से व्यक्तिगत रूप से युद्ध में भाग लेने का आग्रह किया, ताकि निर्णायक युद्ध लड़ा जा सके। किन्तु सम्राट ने इसे स्वीकार नहीं किया।

युद्ध का अन्तिम चरण

एक विशाल एवं व्यवस्थित तैयारी के बाद १६ अगस्त को दोनों पक्षों के बीच युद्ध पुनः शुरु हो गया। तुग़लकाबाद से जमुना नदी की तीन मील लम्बी पंक्ति पर अनेक स्थानों पर भीषण संघर्ष हुआ। एक स्थान पर स्यौंसिह के नेतृत्व में जाटों व मराठों के बीच साहसिक युद्ध हुआ, जिसमें मराठे पराजित हुए। दूसरे स्थान पर बदख्शी सैनिकों ने जाट पुरोहित घमण्डीराम को घायल कर दिया। सूरजमल ने स्वयं इस स्थान पर पहुँचकर शत्रु को खदेड़ा और पुरोहितराज को लेकर अपने डेरे पर लौटा। किन्तु शाही तोपखाने ने उस दिन खूब कहर ढ़ाया, जिसके फलस्वरूप सफ़दरजंग की सेना को पराजय का मुँह देखना पड़ा।[2]

एक बार फिर सफ़दरजंग व सूरजमल ने रक्षात्मक युद्ध के लिए पीछे हटने का निश्चय किया। वे फ़रीदाबाद छोड़कर बल्लभगढ़ की ओर लौटने लगे। सीकरी[3] गाँव में उन्होंने अपना शिविर स्थापित किया और बल्लभगढ़ के दुर्ग में तोपें तैनात की। इमाद इनका पीछा करता हुआ १ सितम्बर को फ़रीदाबाद पहुँचा, जहाँ से विद्रोही केवल दो मील दूर थे। अति उत्साहित इमाद जब बल्लभगढ़ पर अधिकार करने की योजना बना रहा था, तभी नजीब खान रुहेला, बहादुर खान बलूच और जैतागूजर बकाया वेतन के भुगतान की माँग को लेकर अपने मोर्चे छोड़कर दिल्ली

---

१. सुजान चरित्र, पृ० १६४-१६६, तारीखे अहमदशाही में इसका केवल संक्षिप्त उल्लेख है (पृ० ६६ अ एवं ७० अ)।

२. सुजान चरित्र, पृ० २००-२०६

३. बल्लभगढ़ के आगे ५ मील दक्षिण में

की ओर लौट पड़े। अगले दिन शाही तोपखाने के लोग भी राजधानी की ओर लौट पड़े।[१]

शाही सेना में विद्रोह की स्थिति का लाभ उठाने के उद्देश्य से ६ सितम्बर को सफ़दरजंग ने परित्यक्त क्षेत्र पुनः लेने के लिए इमाद पर आक्रमण कर दिया, किन्तु दिन भर के युद्ध के बाद भी उसे सफलता नहीं मिली। ७ से ११ तारीख तक सूरजमल के नेतृत्व में पांच-छः हज़ार जाट सैनिकों ने किशनदास के तालाब से लेकर फ़रीदाबाद स्थित इमाद के डेरे के बीच रसद लाने-ले जाने वालों को बुरी तरह से लूटकर आतंक पैदा कर दिया। ११ तारीख को भी जब जाटों ने शाही डेरे में अन्न बिल्कुल नहीं पहुँचने दिया, तो निराशा की मनोस्थिति में इमाद रात्रि में मोर्चे छोड़कर दिल्ली पहुँचा। अगले दिन उसने सम्राट से धन एवं अतिरिक्त सेना की मांग की, किन्तु तीन घण्टे के विचार-विमर्श के बाद निराश होकर अपनी हवेली लौटा और कहने लगा, "अब तक जो कुछ मैं कर सकता था, वह मैंने किया, अब सम्राट को आगे का कार्य किसी और को सौंपने दिया जाय।" इमाद ने तब तक दिल्ली से बाहर निकलने से मना कर दिया, जब तक कि नजीब खान और उसके सिपाहियों को बकाया वेतन का भुगतान न कर दिया जाय। इमाद की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर सफ़दरजंग तथा सूरजमल ने फ़रीदाबाद के आगे बढ़कर शाही मोर्चों पर हमला कर दिया और ख्वाजा बख्तावर खान की सराय, बदरपुर व अन्य स्थानों पर अन्न व शस्त्रों की भारी लूटमार की।[२]

शान्ति प्रयासों की विफलता

१२ सितम्बर को सूरजमल ने, जो इमाद को अपना प्रमुख शत्रु समझता था, इन्तिज़ाम के साथ उसके बढ़ते हुए मतभेदों को ध्यान में रखते हुए, नए वज़ीर के पास एक बार पुनः शान्ति का सन्देश भेजा जो स्वयं इसके लिए उत्सुक था।[३] सम्राट व इन्तिज़ाम ने, जो अब इमाद को ईर्ष्या एवं सन्देह की दृष्टि से देखने लगे थे, तुरन्त शान्ति वार्ता के लिए १४ तारीख को लुतफ़ुल्लाह बेग को भेजा। सीकरी में सूरजमल से वार्ता के बाद वह सफ़दरजंग के डेरे में गया। वज़ीर से वार्ता के

---

१. तारीखे अहमदशाही, पृ० ७० ब, सूदन के अनुसार रुहेलों व बलूचों के विद्रोह के पूर्व ही इमाद की संयुक्त सेना का (संभवतः १-२ सितम्बर) जाट सेना से एक भीषण युद्ध हुआ था, जिसमें एक प्रमुख जाट सरदार बैरीसाल का पुत्र मुहकमसिह मारा गया और काफ़ी शौर्य प्रदर्शन के बावजूद बालू जाट को भी लौटना पड़ा, सुजान चरित्र, पृ० २०७-२११

२. तारीखे अहमदशाही, पृ० ७२ ब

३. तारीखे अहमदशाही, पृ० ७२ ब, हिंगणे दफ़्तर, I, पत्र, ८१

लिए सफ़दरजंग ने अपने दो वकील तथा सूरजमल ने अपना एक वकील लुतफ़ुल्लाह वेग के साथ भेजा और सूरजमल उसे वदरपुर तक छोड़ने आया।[१] इसी वीच एक दिन फ़रीदावाद के दक्षिण से सफ़दरजंग की सेना ने वख़्तावर ख़ान के नेतृत्व में शाही मोर्चे पर हमला कर दिया, जहाँ वहुत संघर्ष हुआ। जाटों ने भी जो लुतफ़ुल्लाह वेग को छोड़कर लौट रहे थे, रात्रि में फ़रीदावाद के निकट यात्रियों एवं शाही सेना पर आक्रमण कर दिया। शान्तिवार्ता के दौरान इन शत्रुतापूर्ण कार्यवाहियों से सम्राट अत्यधिक नाराज़ हुआ और अनेक अमीर व सेनापति वज़ीर को दोषी ठहराने लगे, जो इस शान्ति वार्ता में मध्यस्थ था। किसी ने भी सफ़दरजंग के साथ तुरन्त शान्ति पर विश्वास नहीं किया। परिणामस्वरूप २२ सितम्वर को सन्धिवार्ता समाप्त कर दी गई।[२]

इसके साथ ही वज़ीर इन्तिज़ाम और मीरवख़्शी इमाद के वीच सन्देह तेज़ी से वढ़ने लगा। इमाद ने सफदरजंग को कुचलने में अपने को अकेले असमर्थ पाकर, सूवा अवध व आगरा तथा फ़ौज का खर्च दिए जाने की शर्त पर, मल्हार राव होल्कर एवं जयप्पा सिन्धिया को सहायतार्थ १५ दिन के भीतर पहुँचने के लिए त्वरित सन्देश भेजा। दूसरी ओर सम्राट एवं वज़ीर ने, जो हृदय से शान्ति चाहते थे, इस कार्य में सहायतार्थ जयपुर के राजा माधोसिंह को आमन्त्रित किया।[३]

२९ सितम्वर का भीषण युद्ध

इन घटनाओं से सूरजमल वहुत चिन्तित हुआ, जो सफ़दरजंग पक्ष का सर्वाधिक जिम्मेदार व्यक्ति था। छः महीने के लम्वे थकाने वाले युद्ध के अनुभव से उसने इस वात को भली-भांति समझ लिया था कि मराठा सेना आ जाने के वाद उनकी विजय की कोई संभावना नहीं रहेगी। इसीलिए उसने उनके आगमन के पूर्व एक निर्णायक एवं साहसिक आक्रमण की योजना वनाई। वकाया वेतन का भुगतान हो जाने पर २४ सितम्वर को नजीव ख़ान सहित विद्रोही सैनिक पुनः अपनी खाइयों में लौट आए थे और इमाद भी मोर्चे पर लौट आया था। इसी दिन जाटों ने फ़रीदावाद के पार मराठा मोर्चों पर रात्रि में सहसा आक्रमण कर अन्ताजी पन्त को मार डाला।[४]

२९ सितम्वर को सूरजमल के नेतृत्व में सफ़दरजंग की विशाल सेना ने शाही सेना के दाहिनी ओर मराठा खाइयों पर भीषण आक्रमण कर दिया। मराठा सैनिकों का भारी संहार हुआ, किन्तु इमाद एवं नजीव ख़ान के उनकी सहायतार्थ

---

१. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ७३ व,
२. तारीखे अहमदशाही, पृ० ७३ व–७४अ
३. सुजान चरित्र, पृ० २१२-१३
४. हिंगणे दफ़्तर, I, पत्र ८२

शीघ्र वहाँ पहुँच जाने और साहसिक युद्ध करने से अन्त में जाट सेना तितर-बितर हो गई। तोपखाने के एक अन्य युद्ध में भयभीत सफ़दरजंग की सहायता करके सूरजमल ने उसे उसके शिविर में पहुँचाया।[1] ३० सितम्बर को इमाद ने अपनी खाइयाँ बल्लभगढ़ के डेढ़ मील उत्तर में माजेसर गाँव तक पहुँचा दी और इसके एक मील पूर्व में सीही गाँव पर आक्रमण करके वहाँ पर अधिकार कर लिया गया। यहाँ पर बड़ी संख्या में जाटों का कत्लेआम हुआ। इमाद ने इन दोनों गाँवों पर तोपखाने स्थापित करके जाटों के सुदृढ़ दुर्ग बल्लभगढ़ पर गोलाबारी शुरू कर दी और मराठों ने पड़ोसी जाट क्षेत्रों को लूटना शुरू कर दिया। १ अक्तूबर को बालू जाट ने शाही मोर्चों के निकट जाकर भयंकर आक्रमण किया और शत्रु को बहुत क्षति पहुँचाकर अपने शिविर में लौटा। इस प्रकार निर्णायक युद्ध के अभाव में संघर्ष एक बार फिर छुटपुट अनिश्चित मुठभेड़ों में बदल गया।[2]

माधोसिंह का आगमन और सन्धि

छः महीने से चल रहे जन-धन के विनाश ने युद्ध की अपेक्षा शान्ति की इच्छा को बढ़ाया। अक्तूबर के प्रारम्भ में सूरजमल ने इमाद से पुनः शान्ति वार्ता शुरू की। सूरजमल ने कुछ लाख रुपये पेशकश इस शर्त पर देने का प्रस्ताव रखा कि जो प्रदेश उसके अधिकार में है वे उसके पास रहने दिए जाय। किन्तु इमाद उसे केवल वही प्रदेश देना चाहता था जो उसके पिता बदनसिंह के समय से उसके अधिकार में थे और जो प्रदेश उसने हाल ही में हड़प लिए थे वे सब उससे वापस लेना चाहता था। इस कारण यह समझौता नही हो सका।[3] बाद में १० अक्तूबर को माधोसिंह के दिल्ली पहुँचने के साथ ही समझौते की दिशा में कूटनीतिक गतिविधियां तेज़ हो गई। पहले १५ अक्तूबर और बाद में २३ अक्तूबर को सम्राट अहमदशाह और माधोसिंह में काफ़ी मन्त्रणा हुई। सम्राट ने तीनों (सफ़दरजंग, इन्तिज़ाम व इमाद) की कृतघ्नता की शिकायत करते हुए संकट में साम्राज्य की रक्षा करने का

---

१. सूदन लिखता है—

घरी अद्ध में लै वजीरै दिखायौ। लिखै सूर मनसूर हू जीव पायौं॥
कही आफरी आफरी सिंह सूजा। नहीं हिंद हिंदू सरी तोहि दूजा।
खुसवख्त मुझे करना जु तोहि। तो डेरनु दाखिल करी मोहि॥
अब बड़ी फजर सो होंनहार। रब की रजा सु करना विचार॥
सूरज समझायौं यौं वजीर। पुनि डेरनु लायौ धीर धीर॥

यौं तोपनु की जंग में सूरज कियौ अवाद।
ज्यों होरी झर बीच तैं हरि राख्यौ प्रहलाद॥

सुजान चरित्र, पृ २२१

२. तारीखे अहमदशाही, पृ० ७५–ब–७६ ब; सुजान चरित्र, पृ २१३-२२२

३. तारीखे अहमदशाही, पृ० ७८ अ

उससे आग्रह किया। एक वफ़ादार एवं अनुभवी सामन्त की तरह उसने सम्राट को पूरी सान्त्वना दी।[1]

शान्ति प्रयासों में २३ अक्तूबर को ही तब गम्भीर मोड़ आया जब सफ़दरजंग ने अकीवत महमूद को उन पत्रों की प्रतिलिपियाँ दे दी, जो सम्राट ने उसे वज़ीर के मार्फ़त समझौता करने हेतु लिखे थे। अकीवत से लेकर जब इमाद ने उन्हें सम्राट के पास भेजा, तो भयभीत अहमदशाह ने इमाद को सूचित किया कि ये पत्र जाली हैं। ऐसी स्थिति में इमाद ने स्वयं ही शत्रु से समझौते की बातचीत प्रारम्भ कर दी। जब वज़ीर ने देखा कि शान्ति अब और अधिक समय तक नहीं रोकी जा सकती, तो इमाद के प्रयत्नों को सफल न होने देने के उद्देश्य से उसने २५ अक्तूबर को खिज्राबाद के बाग में सम्राट एवं सूरजमल की भेंट निश्चित की। सम्राट बाग के स्थान पर माधोसिंह के साथ उसके डेरे में पहुँचा, जहाँ माधोसिंह ने सूरजमल के लिए क्षमा प्राप्त की। यहाँ सूरजमल के स्थान पर उसका वकील सम्राट के सामने उपस्थित हुआ।[2] इस प्रकार शान्ति निश्चित कर ली गई और समझौते की वार्ता के लिए ६ नवम्बर का दिन तय किया गया। इस बीच दरबार में स्थित मराठा राजदूत पुरुषोत्तम महादेव हिंगणे ने इस समझौते को रोकने का असफल प्रयास किया,[3] जबकि वज़ीर इस बात से खुश था कि इमाद द्वारा शान्ति सम्पन्न नहीं हो रही है।

६ नवम्बर को वज़ीर इन्तिज़ाम माधोसिंह के डेरे पर पहुँचा। कुछ समय बाद बल्लभगढ़ से सूरजमल भी अकीवत महमूद के साथ वहाँ पहुँचा। इस वार्ता में माधोसिंह के अलावा अकीवत और दीवान राजा नागरमल ने भाग लेकर वज़ीर और सूरजमल के बीच समझौता सम्पन्न कराया। सायंकाल वज़ीर अपनी हवेली को लौट गया। सूरजमल अगले पाँच दिन तक माधोसिंह के डेरे में ही रहा।[4] सफ़दरजंग के

---

१. वही, पृ० ८०; पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र, ८३

२. तारीखे अहमदशाही, पृ० ८२ब-८३अ; दिल्ली क्रानिकल्स के अनुसार २५ अक्तूबर को ही वज़ीर सूरजमल से मिलने गया था (पृ० ४४)। तारीखे मुज़फ़्फ़री (पृ० ८३) का लेखक कहता है कि सूरजमल ने क्षमादान के बदले ५० लाख रुपये सम्राट को देना स्वीकार किया था।

३. पुरुषोत्तम हिंगणे ने सम्राट से कहा कि ८-१० दिन में मराठा सेना यहाँ पहुँचने वाली है, तब तक वह सन्धि न करें। उसके बाद रघुनाथराव स्वयं ही सफ़दरजंग एवं जाट से निपट लेगा, देखें, हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, ८४, २ नवम्बर १७५३ ई०

४. तारीखे अहमदशाही, पृ० ८३ अ; दस्तूर कौमवार में इस भेंट-वार्ता का वर्णन इस प्रकार से किया गया है—"मिति काती सुदी ११ ने मुकाम तुगलकाबाद सूरजमल जाट के सामे भेज्या—सो ले आया तब श्री जी (माधोसिंह) सरह दरबार करी विराज्या तब सूरजमल जाट आय तसलीमात करी तब श्री जी

साथ यह समझौता अस्पष्ट रूप से हुआ। ५ नवम्बर को माधोसिंह का दूत फ़तहसिंह सम्राट की ओर से उसके पास खिलअत ले गया और ७ नवम्बर को सफ़दरजंग ने सीकरी से अपने डेरे उठाकर अवध के लिए प्रस्थान किया।[1]

११ नवम्बर को सूरजमल अपने पुत्र जवाहर को माधोसिंह के पास छोड़कर सम्राट अहमदशाह तथा माधोसिंह से विदा लेकर अपने प्रदेश के लिए रवाना हो गया। एक सप्ताह बाद जवाहरसिंह माधोसिंह को लेकर कामाँ पहुँचा, जहाँ बदनसिंह से उनकी भेंट हुई। यहाँ से माधोसिंह २० नवम्बर को डीग और २२ नवम्बर को भरतपुर पहुँचा, जहाँ सूरजमल ने उसका अत्यधिक सम्मान किया। यहाँ पर माधोसिंह ने ४-५ दिन रुककर मराठा सेना के आगमन और पारस्परिक सम्बन्धों पर सूरजमल से लम्बा विचार-विमर्श किया।[2]

इमाद का जाट विरोधी अभियान

सूरजमल के साथ सम्पन्न सन्धि से इमाद प्रसन्न नहीं था, अतः गृह युद्ध की समाप्ति के साथ ही उसने दिल्ली के दक्षिण में जाटों के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया।

ताजीमदोई''''फेर आकवत महम्मद बखशी गाजदी खां जी का सू मिल्या फेर विराज्या सो सूरजमल चांदणी के अगाडी का बांस कनें तरफ़ दाहिणी बैठाया वाई तरफ़ दाहणी का वांस के वीच इकराम महम्मद बैठाया घडी आध विराज्या फेर खिलवत में पधारया घडी १ विराज्या अर नवाव वज़ीर खानखाना जी आया की खबर सुणी तव सूरजमलजी तो खिलवत में ही बैठो राख्यो अर श्री जी फेर सरह दरवार आया विराज्या तव वज़ीर आयो तीनें ड्योढ़ी वार ली के अन्दर पेसवा जाय वगल गीरी करी फेर मसनद परि आय विराज्या वज़ीर तरफ़ बैठयो घडी १ विराज्या नागरमल लूतकुला वेग नें सूरजमल कनें खिलवत में भेज्या फेर घड़ी आध पाछे जसवन्तसिंह, सरदारसिंह, जोधसिंह, नवलसिंह पृथ्वीसिंह हाडा का बेटा नें खिलवत में भेज्या घड़ी आध पाछे श्री जी वज़ीर नें लेखा सा डेरा में अन्दर पधारयाघड़ी १ विराज्या फेर सूरजमल ने भी बुलायों वज़ीर सू मुलाजमत कराई श्री जी वा आकवत महम्मद दीवान नागरमल सारा मिल सूरजमल की तकसीरमाफ़ कराई घडी दोय विराज्या फेर वज़ीर नें सीख दीनी फेर सूरजमल ने भी सीख दीनी फेर घडी पाछे आकवत महम्मद नें सीख दीनी अर तरफ़ सरकार की लसकर में डेरा खड़ा कराय दीया त्यां में सूरजमल व आकवत महम्मद रात रहया।" दस्तूर कौमवार, जि० VII, पृ० ५६५-६७

१. तारीखे अहमदशाही, पृ० ८४ ब; दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ४४; सियार, I.I, पृ० ३३५; शाकिर खान, पृ० ७४; फ्रैंकलिन, दि हिस्ट्री ऑफ दि रेन ऑफ शाह आलम, पृ० २

२. दस्तूर कौमवार, VII, पृ० ५६७; सुजान चरित्र, पृ० २२२-२३

इस समय उसे अपनी सेनाओं के वेतन भुगतान के लिए रुपयों की भी आवश्यकता थी। २४ नम्ववर १७५३ ई० को उसने अपने प्रधान सेनापति अकीवत महमूद को ५०० वदंख्शी एवं २०० मराठा सवार देकर, फ़रीदावाद तथा पलवल के शाही राजस्व की वसूली के लिए वालू जाट के पास भेजा। वालू पहले की तरह फ़रीदावाद व पलवल, जो कि मीरवख्शी की जागीर में थे, का प्रशासन अपने हाथ में रखना चाहता था। अतः उसने भूमिकर एवं पेशकर देने के वजाय युद्ध छेड़ दिया और वल्लभगढ़ के दुर्ग से गोलावारी शुरु कर दी। अकीवत की सूचना पर इमाद ने ३०० तोपों व ३००० वदंख्शी सैनिकों की कुमुक सहायतार्थ वहाँ भेजी। थोड़ी सी लड़ाई के वाद वालू ने अधीनता स्वीकार कर ली और सम्राट को भूमिकर एवं पेशकश के अलावा इमाद को भी कुछ धन राशि देनी स्वीकार की। अकीवत फ़रीदावाद से पलवल आ गया और वहाँ का प्रशासन ठीक करने में व्यस्त हो गया।[1]

वालू जाट की हत्या

पलवल पहुँचकर अकीवत ने अपने कुछ व्यक्तियों को सूरजमल के पास शाही कर के भुगतान के लिए भेजा, किन्तु सूरजमल ने उन्हें कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। राजस्व वसूली के दौरान अकीवत को पता लगा कि वालू के भय से किसान उसे राजस्व नहीं दे रहे हैं। इसी समय वालू के एक विरोधी सन्तोख राय कानूनगो ने, जिसे वालू ने पलवल से निकाल दिया था, अकीवत के पास आकर कहा कि जब तक वह वालू को समाप्त कर वल्लभगढ़ पर अधिकार नहीं कर लेता, तव तक वह फ़रीदावाद एवं पलवल के क़स्बों पर उचित रूप से नियंत्रण नहीं कर सकता। जव अकीवत ने एक थानेदार को फ़तहपुर भेजा तो वालू के उकसाने पर वहाँ के लोगों ने उसे वहाँ का अधिकार देने से मना कर दिया।[2]

इन घटनाओं से उत्तेजित अकीवत २६ नवम्वर को पलवल से फ़रीदावाद होते हुए वल्लभगढ़ के निकट पहुँचा, और वालू को पेशकश की राशि के साथ निमंत्रित किया। वालू अपने पुत्र, दीवान और २५० व्यक्तियों के साथ उस स्थान पर पहुँचा, जव अकीवत ने सम्राट एवं इमाद द्वारा ताकीद की वात करते हुए वकाया राशि की माँग की तो वालू ने दो टूक उत्तर दिया, "मैं अपनी जेव में रुपये लेकर नहीं आया हूँ, मैंने केवल यह वचन दिया था कि भूमिकर संग्रह करके खिराज दिया जायगा। अगर आप इस प्रदेश को मुझसे छीनना चाहते है, तो आपको युद्ध अवश्य करना पड़ेगा।" दोनों के वीच कटु वार्तालाप हुआ और वालू ने क्रोध में जैसे ही अपनी तलवार की मूठ पर हाथ रखा, वदंख्शी सैनिकों ने, जो अकीवत की पालकी को घेरे

---

१. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ८९अ-९० अ

२. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ९१ अ

हुए थे, तुरन्त उसे काट डाला। थोड़ा सा युद्ध हुआ, जिसमें बालू का एक पुत्र, दीवान और नौ अन्य व्यक्ति मारे गए। अर्द्धरात्रि तक बल्लभगढ़ की सेना क़िले से गोलाबारी करती रही और बाद में दुर्ग खाली करके भाग गई।[1]

इस प्रकार अकीबत ने अपने पिता (मुर्तजा खान) की हत्या का बदला लिया। तोपखाने और शस्त्रागार के साथ बल्लभगढ़ के दुर्ग पर उसका अधिकार हो गया। सम्राट ने इमाद एवं अकीबत को पुरस्कार प्रदान किए और जब बालू का सिर उसके सामने लाया गया तो उसने उसे (१ दिसम्बर को), विद्रोहियों को चेतावनी देने के उद्देश्य से फ़रीदाबाद के निकट एक खम्भे पर लटका दिया।[2]

फ़रीदाबाद पर शाही अधिकार

दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में अकीबत ने फ़रीदाबाद के जिले से जाटों के अधिकार को तेजी से समाप्त करने का अभियान छेड़ा। उसने हथीन[3] और निकटवर्ती गाँव मितनौला को लूटा। यहाँ के किसानों ने उसका विफल प्रतिरोध किया। इसके बाद उसने पलवल के चारों ओर जाटों के मिट्टी के क़िलों पर आक्रमण करके उन पर अधिकार कर लिया।[4] इसी समय चूड़ामन जाट का पुत्र मुहकमसिंह अपनी पैतक जागीर की पुर्नप्राप्ति के प्रयास में इमाद की शरण में आ गया था। इमाद ने सूरजमल के विरुद्ध हथियार के रूप में उसका प्रयोग करने की योजना बनाई, किन्तु वह इस मामले में सम्राट को अधिक प्रभावित नहीं कर सका।[5] २७ दिसम्बर को जब अकीबत दिल्ली से पुनः फ़रीदाबाद पर अधिकार करने के लिए रवाना हुआ तो उसके सैनिकों ने विद्रोह कर दिया। जाटों ने इस परिस्थिति का लाभ उठाकर गढ़ी हथीन और कुछ अन्य गाँवों पर अपना अधिकार पुनः स्थापित कर लिया। ऐसी स्थिति में अकीबत ने इमाद को स्वयं युद्ध-स्थल पर आने का आग्रह किया।[6]

जवाहरसिंह की पराजय

इमाद मल्हार राव के पुत्र खाण्डेराव होल्कर, जिसके नेतृत्व में अग्रिम मराठा

---

१. वही, पृ० ९१; दिल्ली क्रानिकल्स (पृ० ४५) और सुजान चरित्र (पृ० २२५-२६) में इस घटना का बहुत संक्षिप्त वर्णन है।
२. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ९२
३. पलवल से १२ मील द० प० में
४. तारीखे अहमदशाही, पृ० ९३ ब एवं ९४ ब
५. वही, पृ० १०२ ब-१०३ अ
६. तारीखे अहमदशाही, पृ० १०४ ब

टुकड़ी राजधानी में पहुँच चुकी थी, को लेकर जाटों को दण्डित करने हेतु वल्लभगढ़ की ओर चल पड़ा। खाण्डेराव ने होडल[१] में मुकाम किया और उसके दाहिने भाग के क्षेत्र में जाटों के गाँवों तथा गढ़ियों पर आक्रमण किया। उसने गढ़ी हथीन और जोरगढ़ी पर अधिकार कर लिया। खाण्डेराव के नेतृत्व में मराठा सेनाएँ चारों ओर लूटमार करती हुई नन्दगांव[२] और बरसाना[३] तक पहुँच गईं। यहाँ पर सूरजमल के पुत्र जवाहरसिंह ने उनका सामना किया, किन्तु उसकी भीषण पराजय हुई। इन क्षेत्रों को बुरी तरह से लूटकर, अपने थाने कायम करने के बाद खाण्डेराव अपने मुकाम होडल को लौटा।[४] मराठों की एक अन्य टुकड़ी शिकोहाबाद से जाट थाने को हटाने में सफल रही।[५]

अलीगढ़ पर अधिकार

इमाद ने फ़तह अली खान को कोईल का फ़ौजदार नियुक्त करके वहाँ से जाट अधिकार समाप्त करने के आदेश दिए। प्रारम्भ में तो वह जाट सेना के भय से उस स्थान के लिए रवाना नहीं हुआ, किन्तु जब १०,००० सवार और इतनी ही पैदल सेना इकट्ठी हो गई, तो वह राजधानी से रवाना हुआ। यह सेना जाटों को खदेड़कर दिसम्बर के अन्त में कोईल व जलेसर पर अधिकार करने में सफल हुई।[६]

जनवरी १७५४ ई० के प्रथम सप्ताह में इमाद ने वल्लभगढ़ पर पूरी तरह से अधिकार कर लिया और उसका नाम अपनी नई उपाधि निज़ाम-उल-मुल्क आसफ़जाह पर निज़ामगढ़ रख दिया। ५ जनवरी को अकीबत ने वल्लभगढ़ के ६ मील दक्षिण पश्चिम में गंगूला नामक स्थान से बालू जाट के भाई को खदेड़कर अपना थाना स्थापित कर लिया।[७]

घसेरा की विजय

घसेरा के राव बहादुरसिंह का पुत्र फ़तहसिंह सूरजमल से अपने पिता का बदला लेने के लिए काफ़ी समय से इमाद की शरण में था। अब इमाद ने एक

---

१. पलवल से १७ मील दक्षिण में

२. होडल के १२ मील उ० द० में और कांमा के ८ मील पूर्व में

३. नन्दगांव के ६ मील दक्षिण में और डीग के १२ मील उ० पू० में

४. तारीखे अहमदशाही, पृ० १०५ अ; सुजान चरित्र, पृ० २२६

५. तारीखे अहमदशाही, पृ० १०५ ब

६. तारीखे अहमदशाही, पृ० १०५ अ-१०६ अ

७. वही, पृ० १०६

सेना के साथ उसे जाटों से घसेरा दुर्ग वापस लेने के लिए रवाना किया । ८ जनवरी को भयभीत जाट सेना ने इस दुर्ग को खाली कर दिया ।[1]

इस प्रकार यमुना के दोनों तटों के जाट प्रदेश इमाद के अधिकार में आ गए और मथुरा, अलीगढ़ व आगरा तक जाटों को खदेड़कर उसने अपना शासन स्थापित करने में सफलता प्राप्त की । १३ जनवरी को उसने एक विशाल सेना मेवात, अलीगढ़ और जलेसर में प्रशासन की पुर्नव्यवस्था के लिए भेजी ।[2] मराठा सेनाओं के आ जाने से अब वह नई शक्ति एवं उत्साह के साथ सूरजमल से प्रतिशोध की योजना पर अमल करने लगा ।

१. तारीख अहमदशाही, पृ० १०६ ब-१०६ अ
२. वही, पृ० १०७ अ

अध्याय–५

जाट–मराठा संघर्ष
(१७५४–१७५६ ई०)

जाट-मराठा संघर्ष
(१७५४-१७५६ ई०)

जाट व मराठों का प्रथम सम्पर्क माण्डू एवं भोपाल के युद्धों में हुआ था, किन्तु इनका वास्तविक शक्ति परीक्षण वगरु के युद्ध (अगस्त १७४८ ई०) में हुआ, जहां पर मल्हार राव होल्कर ने राजपूताना में प्रवेश करने के वाद पहली वार सूरजमल के नेतृत्व में जाट शक्ति के वजन को महसूस किया था। वगरू के युद्ध में जाट शत्रुता का वदला लेने के लिए होल्कर ने मई १७४९ ई० में चम्वल पार करके जाट प्रदेश पर हमला कर दिया। मराठा सेना ने जाट इलाक़े को बुरी तरह से उजाड़ना व जलाना शुरू कर दिया। फ़तहपुर के निकट दोनों पक्षों के बीच एक अनिर्णयात्मक युद्ध भी हुआ। किन्तु संख्या में विशाल मराठा सेना का दवाव जाटों पर निरन्तर वढ़ता गया। इस कारण सूरजमल ने वज़ीर से सहायता अथवा हस्तक्षेप का आग्रह किया।[1]

इस मामले में वज़ीर ने उपेक्षा की नीति अपनाई, जो हाल ही में शाही भूमि पर जाटों द्वारा किए गए अवैध क़ब्ज़ों के कारण उनसे प्रसन्न नहीं था। इस कारण सूरजमल ने विवश होकर मराठों को चौथ देना स्वीकार किया और उन्हें १,१०००० रुपये की हुण्डी तत्काल प्रदान की।[2]

---

१. हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, ३५

२. हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, ३६. ३७, व ४०, जाटों की इस हुण्डी का (अविश्वसनीयता के कारण) नक़द भुगतान संम्भवत: नहीं हो पाया, जैसा कि हिंगणे के एक पत्र से विदित होता है, देखें, हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, ४३ (४ मार्च १७५० ई०)। वाद में वज़ीर के साथ सम्पन्न मैत्री सन्धि (जुलाई १७५० ई०) से अपनी स्थिति सुदृढ़ हो जाने पर सूरजमल ने मराठों को चौथ देना स्थगित कर दिया था। वाद के वर्षो से सम्वन्धित मराठा पत्रों से इस सम्भावना की पुष्टि होती है कि सूरजमल ने उपर्युक्त चौथ का भुगतान नहीं किया था, देखें, पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र, ६३

दो वर्ष बाद १७५१ ई० में अफगानों के विरुद्ध सूरजमल और होल्कर को हम वज़ीर सफ़दरजंग के पक्ष में साथ-साथ लड़ते हुए पाते हैं। किन्तु लूट की समान प्रवृत्ति तथा विजय लाभ की प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न पारस्परिक हितों के टकराव ने जाट व मराठों को प्रतिद्वन्द्वी बना दिया और दोआब में व आसपास के क्षेत्र में, विशेषकर आगरा प्रान्त पर, पहली बार दोनों की गिद्ध दृष्टि पड़ी। विजय पुरस्कार (फ़तहगढ़ के युद्ध में) के रूप में मराठों द्वारा आगरा सूबे की माँग और वज़ीर द्वारा उनसे सहमति की सम्भावना से शंकित सूरजमल, जो अपने राज्य के निकट होने के कारण आगरा सूबे पर अपना दावा अधिक न्यायसंगत मानता था, अफगान युद्ध की समाप्ति के पूर्व ही असन्तुष्ट होकर अपने प्रदेश को लौट आया था।

५ जून १७५१ ई० को सूरजमल जयपुर गया[1] और माधोसिंह के साथ लगभग दस दिन तक उसने बदली हुई राजनैतिक परिस्थितियों (विशेषकर आगरा पर मराठा दावे का वज़ीर द्वारा समर्थन) पर विस्तार से चर्चा की। दोनों में इस बात पर सहमति हुई कि वे सम्मिलित रूप से सम्राट के सम्मुख आगरा उन्हें दिए जाने के बारे में अपना पक्ष प्रस्तुत करें। तदनुसार सूरजमल ने दिल्ली लौटकर सम्राट अहमदशाह से न्याय पाने के प्रयास शुरू कर दिए। मुग़ल दरबार में नियुक्त मराठा राजदूत बापू महादेव हिंगणे को जब सूरजमल की गतिविधि का पता चला, तो उसने आगरा पर माधोसिंह के दावे को समाप्त करने हेतु सूरजमल को माधोसिंह से पृथक करने का षड्यन्त्र रचा। बापू हिंगणे ने सूरजमल से प्रस्ताव किया कि आगरा सूबे में जागीरों का जो ९-१० लाख रुपया उसे माधोसिंह को देना है, वह उसका भुगतान न करे और अगर इस कारण माधोसिंह उस पर हमला करता है, तो होल्कर जाट राजा की सहायता करेगा। इस प्रस्ताव से सहमत होने के एवज़ में बापू हिंगणे ने जाट राजा को एक लाख रुपया देने का प्रलोभन भी दिया। वार्ता जारी रखने के उद्देश्य से सूरजमल मोहनसिंह व रूपराम को राजधानी में छोड़कर जून के अन्त में अपने प्रदेश को लौट आया।[2] किन्तु सूरजमल मराठा उद्देश्य को भांप चुका था, इसलिए वह बापू हिंगणे के जाल में नहीं फंसा। वैसे भी अविश्वसनीय मराठा आश्वासन की तुलना में हाल ही में प्राप्त माधोसिंह की मैत्रीपूर्ण सद्भावना उसके लिए अधिक महत्वपूर्ण थी। अतः कूटनीतिक उद्देश्यों के लिए ही उसने अपने प्रतिनिधि राजधानी में छोड़ रखे थे। जब जावेद खान ने वजीर के विरुद्ध अपनी सत्ता सुदृढ़ करने के प्रयास में जाटों की मदद चाही, तो सूरजमल ने अपने हितों की रक्षा के लिए उचित उत्साह प्रदर्शित किया।

अफगान सन्धि फरवरी १७५२ ई० द्वारा मराठों को केवल अलीगढ़ तक

---

१. दस्तूर कौमवार, जि० VII, पृ० ५६१ से ५६४

२. हिंगणे दफ्तर, II, पत्र १२

के प्रदेश से ही सन्तोष करना पड़ा, किन्तु दो महीने बाद ही वे अब्दाली के विरुद्ध सहायता करने के एवज़ में सम्पन्न सन्धि (२ अप्रैल १७५२ ई०) के अन्तर्गत वज़ीर से आगरा दिए जाने की धारा सम्मिलित करवाने में सफल रहे थे। इसके अनुसार पेशवा को मथुरा की फ़ौजदारी सहित आगरा की सूबेदारी देना स्वीकार किया गया।[1] यह बात अलग है कि वजीर के दिल्ली पहुँचने के पूर्व ही सम्राट द्वारा अब्दाली से समझौता कर लिए जाने से उपर्युक्त सन्धि निरर्थक हो गई थी।

साम्राज्य के गृह युद्ध में जाट और मराठों के लिए आगरा किस तरह कूटनीतिक दांव-पेंच का मोहरा बना, यह दिल्ली स्थित मराठा नायक अन्ताजी माणकेश्वर द्वारा पेशवा को लिखे गए पत्रों से स्पष्ट है। मराठों ने, जो गाजीउद्दीन खान फिरोजजंग को दक्षिण की सूबेदारी (४ मई) दिलवाने में सफल हो गए थे,[2] अक्तूबर में ग्वालियर, भदावर, कालपी आदि क्षेत्रों से सूरजमल के सहायक गोहद के राणा तथा आगरा व मथुरा के तालुकों से सूरजमल के जाट तालुकेदारों को हटाकर निज़ामुल्मुल्क के नायक नाजिमों को नियुक्त करना प्रारम्भ कर दिया। इस पर चिन्तित होकर सूरजमल ने, जो इस समय वज़ीर का घनिष्ठ सहयोगी बना हुआ था, बालू जाट के नेतृत्व में एक जाट सेना को उपर्युक्त इलाक़ों की ओर रवाना किया और स्वयं ने २० अक्तूबर को वज़ीर से इस प्रश्न पर विचार विमर्श किया।[3]

सूरजमल ने इस समय आगरा उसे दिए जाने के लिए वज़ीर पर काफ़ी दबाव डाला। जब दिल्ली स्थित मराठा सेनापति अन्ताजी माणकेश्वर को इस बात का पता चला, तो क्रुद्ध होकर उसने २२ अक्तूबर को अपनी ४,००० मराठा सेना के साथ डेरों से बाहर निकलकर तालकटोरा के मैदान में अपने रोष का प्रदर्शन किया और मराठो ने सम्राट को दिल्ली से कूच करने की धमकी भी दी। इस पर वज़ीर ने सूरजमल की रवानगी को तुरन्त स्थगित किया और सम्राट ने अन्ताजी को यह कहकर शान्त किया कि आगरा व अजमेर सूबा पेशवा को दिए जाने का करार क़ायम है।[4] बाद में (दिसम्बर) वज़ीर ने, जो जाट व मराठा दोनों को बराबर सन्तुष्ट रखने की दुहरी नीति पर चल रहा था, सूरजमल को मात्र मथुरा की फौजदारी प्रदान करके मराठा समर्थन पाने का रास्ता भी खुला रखा।[5]

---

१. फ़र्स्ट टू नवाब, पृ० १६२
२. फ़र्स्ट टू नवाब, पृ० १६५
३. तारीख़ अहमदशाही, पृ० ४३ व
४. वही, पृ० ४३ व; अन्ताजी का पत्र पेशवा को, १३ दिसम्बर १७५२ ई०, पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र ४४
५. तारीख़े अहमदशाही, पृ ४५ अ

जैसे-जैसे सम्राट और वजीर के बीच तनाव बढ़ता गया, वैसे-वैसे वज़ीर पर जाट (सूरजमल) व राजपूतों (माधोसिंह एवं बख्तसिंह) का अपने समर्थन के बदले में क्रमशः आगरा व अजमेर के सूबे दिए जाने का दबाव बढ़ता गया,[१] किन्तु वजीर मराठों को भी अपने साथ रखने के उद्देश्य से इस मांग को बराबर टालता रहा। संघर्ष की स्थिति में राजधानी में स्थित अन्ताजी के नेतृत्व में ४,००० मराठा सेना का महत्व बहुत बढ़ गया और वजीर व सम्राट दोनों ने उसका समर्थन पाने के प्रयास तेज कर दिए। अन्ततः इमाद बापू हिंगणे के द्वारा सम्राट एवं इन्तिजाम के पक्ष में इस मराठा टुकड़ी का समर्थन प्राप्त करने में सफल हुआ। तब सफ़दरजंग ने पहली बार स्पष्ट रूप से अपनी वजारत का समर्थन करने के एवज में सूरजमल को आगरा की सनद दिए जाने सम्बन्धी पत्र लिखकर उसे तुरन्त दिल्ली बुलाया[२] गृह युद्ध के दौरान अनेक मुठभेड़ों में जाटों ने इस मराठा टुकड़ी पर अपनी सैनिक श्रेष्ठता स्थापित की थी। युद्ध के अन्तिम चरण में सफ़दरजंग एवं जाटों को निर्णायक रूप से पराजित करने के लिए जब इमाद ने होल्कर व सिन्धिया को दक्षिण से आमन्त्रित किया, तब भी मराठो को आगरा सूबा दिए जाने का प्रलोभन दिया गया था।[3]

इमाद की मराठों की मदद से जाटों को दण्डित करने की योजना

गृह युद्ध की समाप्ति के साथ ही भूतपूर्व वजीर तो शान्तिपूर्वक अपने प्रान्त अवध को लौट गया, किन्तु उसका प्रमुख सहायक सूरजमल एक गम्भीर सकट में फँस गया। गत गृह युद्ध में सफ़दरजंग का साथ देने के कारण यद्यपि सम्राट ने सूरजमल को विधिपूर्वक क्षमा कर दिया था, तथापि वह गाजीउद्दीन द्वितीय (इमाद) की घृणा का पात्र बन गया। अपनी अनुपस्थिति में सूरजमल के साथ सम्पन्न सन्धि को इमाद ने अपना अपमान समझा[४] और सूरजमल तथा वजीर इन्तिजाम के बीच नवस्थापित मैत्री को उसने शंका एवं ईर्ष्या की दृष्टि से देखा। इमाद ने, जो सूरजमल को सफ़दरजंग का साथ देकर शाहजहाँनाबाद के समीपवर्ती प्रदेशों को लूटने की धृष्टता के लिए दण्ड देना चाहता था, मराठा सेना के आ पहुँचने का उपयोग सूरजमल पर आक्रमण करने और अपनी सत्ता को सुदृढ़ करने के लिए करना निश्चित किया।[५]

---

१. अन्ताजी का पत्र पेशवा को, पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र ५० (२४ जनवरी १७५३ ई०) और पत्र ५७ (मार्च १७५३ ई०)

२. अन्ताजी का पत्र पेशवा को, २८ मार्च १७५३ ई०, ऐतिहासिक पत्र व्यवहार, पत्र ८६

३. सुजान चरित्र, पृ० २१२-२१३

४. फ्रैंकलिन, शाह आलम, पृ० ३

५. तारीख मुजफ्फ़री, पृ० ८३; सियार, III, पृ० ३३५; शाकिर खान, पृ० ७५-७६

नए वज़ीर इन्तिज़ाम ने इमाद को सलाह दी कि वह फिलहाल सूरजमल पर आक्रमण करने की अपेक्षा उससे पचास लाख रुपये वसूल करके उसका उपयोग अपनी सेना को सुदृढ़ बनाने में करें।[1] किन्तु ६०,००० मित्र सेना के आ पहुँचने के गर्व में इमाद ने इसे स्वीकार नहीं किया।

पेशवा के छोटे भाई रघुनाथराव के नेतृत्व में मराठा सेनाएँ अक्तूबर के अन्त में जयपुर राज्य में प्रवेश कर चुकी थी और २१ नवम्बर को मल्हार राव होल्कर का पुत्र खाण्डेराव ४,००० सवारों के साथ दिल्ली पहुँचा।[2] सम्राट और वज़ीर की इच्छा के विरुद्ध खाण्डेराव ने मीरबख्शी के साथ यह कहकर मन्त्रणा की, "मल्हारजी ने मुझे मीरबख्शी के पास भेजा है, मुझे किसी दूसरे से कोई मतलब नही है। १० दिसम्बर को सम्राट ने वज़ीर के परामर्श पर खाण्डेराव को भेंट, खिलअत आदि भेजकर लौटाना चाहा, तो खाण्डेराव ने इमाद के परामर्श से यह कहते हुए सम्राट की इच्छाओं को ठुकरा दिया, "मैं बादशाह का दास नहीं हूँ, जो वह मुझे खिलअत दे। मैं यहाँ पर अपने पिता की आज्ञा से सूरजमल के विरुद्ध मीरबख्शी की सहायता करने आया हूँ।"[3]

इस प्रकार इमाद अपनी योजना के अनुसार खाण्डेराव के द्वारा मल्हार राव होल्कर को सूरजमल जाट पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करने में सफल हुआ[4] और मराठों ने भी जाट राज्य पर हमले में आर्थिक लाभ देखा। दिसम्बर १७५३ ई० के अन्तिम सप्ताह और जनवरी १७५४ ई० के प्रथम सप्ताह में इमाद एवं खाण्डेराव की सेनाओं ने एक सामूहिक अभियान छेड़ कर किस प्रकार दिल्ली के निकटवर्ती इलाक़ों और मथुरा, आगरा व अलीगढ़ तक जाटों के अधिकार को समाप्त किया, इसका वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

मराठों के विरुद्ध माधोसिंह के साथ सूरजमल का समझौता

सम्राट के साथ सम्पन्न सन्धि के पश्चात् मराठा सेनाओं के पहुँचने की खबर सुनकर सूरजमल और माधोसिंह दिल्ली से तुरन्त (नवम्बर के प्रारम्भ में) अपने अपने प्रदेश के लिए रवाना हो गए। लौटते समय माधोसिंह ४-५ दिन तक (२२ से २५ नवम्बर १७५३ ई०) भरतपुर में रुका,[5] जहाँ सूरजमल के साथ पारस्परिक हितों के मामलों पर लम्बा विचार-विमर्श हुआ। इस वार्ता का प्रमुख विषय मराठों का सम्भावित आक्रमण था। दोनों ने पारस्परिक मैत्री व सहायता के समझौते को

---

१. तारीखे मुज़फ्फ़री, पृ० ८३
२. तारीखे अहमदशाही, पृ० ८८ अ
३. वही, पृ० ६८ ब
४. मोहनसिंह, वाकया-ए-होल्कर (सरकार प्रतिलिपि), पृ० १० अ
५. दस्तूर कौमवार, VII, पृ० ५६० व ५६७; तारीखे अहमदशाही, पृ० ८६ ब

दुहराया। सूरजमल ने अपनी तरफ़ से मराठों के साथ समझौते के लिए माधोसिंह को कुछ प्राथमिकताएँ बतलाते हुए कहा कि इनके अनुसार अगर मराठे समझौते के लिए तैयार हो जाते हैं, तो वह उसकी तरफ़ से ऐसे समझौते को स्वीकृति दे दें, अन्यथा नहीं।[1] मराठा सेनाएँ लगभग दो महीने (९ नवम्बर १७५३ ई० से १५ जनवरी १७५४ ई०) तक जयपुर में रुकी और उन्होंने माधोसिंह से १२ लाख रुपये[2] तथा अन्य छोटी-मोटी रियासतों से चौथ वसूल की। यहाँ से मराठों ने इमाद के उकसाने पर और हाल ही में प्राप्त सूबा आगरा पर वास्तविक नियन्त्रण स्थापित करने के लिए जाटों के विरुद्ध प्रयाण करने का निश्चय किया।

होल्कर के साथ शान्ति प्रयासों की विफलता

सूरजमल ने अपने पुरोहित रूपराम कटारी को इस समय युद्ध अथवा शान्ति की सम्भावना का पता लगाने के उद्देश्य से, कूटनीतिक वार्ता के लिए जयपुर स्थित मराठा शिविर में भेजा। रूपराम ने अपने प्रथम सन्देश में ही जाट राजा को सूचित किया कि यह ६०,००० मराठा सेना जाटों से युद्ध की तैयारियाँ कर रही है, इस कारण पूरे प्रदेश में चौकसी रखना उचित होगा। मल्हार राव होल्कर ने रूपराम को बुलाकर कहा कि इस बार सूरजमल ने दिल्ली खूब लूटी है, अतः वह खण्डणी के दो करोड़ रुपया दें, अन्यथा वह उसके प्रदेश पर शीघ्र ही आक्रमण करेगा।[3] शान्ति के प्रयास में रूपराम चार लाख से बढ़ते बढ़ते चालीस लाख रुपये तक देने को तैयार हो गया, किन्तु होल्कर इस बार युद्ध के लिए कृतसंकल्प था।[4] वह इस बात

---

१. सुजान चरित्र, पृ० २२४; एक मराठा पत्र से उपर्युक्त समझौते की पुष्टि होती है, जिससे पता चलता है कि जयपुर का सेनापति हरगोविन्द नाटाणी, जो जयपुर की एक सैनिक टुकड़ी के साथ मराठा सेना में शामिल था, प्रत्यक्ष में तो कुम्हेर के घेरे में सहायता देने आया था किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से वह घेरे को विफल कर रहा था, देखें, पेशवा दफ्तर, xxvii, पत्र ९४

२. सूदन के अनुसार इस समझौते के अनुसार माधोसिंह ने अपने दीवान हरगोविन्द नाटाणी के नेतृत्व में एक सेना मराठों के साथ भेजी जो कि जाटों का शुभेच्छु था, सुजान चरित्र, पृ० २२७

३. सुजान चरित्र, पृ० २२७; श्री कृष्णाजी शामराव, भाऊसाहेबांची बखर (पृ० ३) के अनुसार रघुनाथराव ने रूपराम से खंडणी का एक करोड़ रुपया माँगा।

४. जयपुर का प्रतिनिधि मोहनसिंह आमेर-जाट राज्य की सीमा पर जलूथर स्थित मराठा शिविर से होल्कर एवं रूपराम की वार्ता के सम्बन्ध में अपने दीवान हरगोविन्द नाटाणी को इस प्रकार सूचित करता है, "सूरजमल की मर्जी रुपया पचास लाख ताईं देवा की छे, ऐ ज्यादा चाहे छै वा राड (लड़ाई) ऊपर भी जीव राखे छै।" आमेर रिकार्ड, पत्र, माघ कृष्णा ११, वि० सं० १८१०

से विचलित था कि इस सारे क्षेत्र में केवल जाट ही वचे हैं, जिन्होंने मराठा अधिकार की प्रतीक चौथ आज तक नहीं दी है।[1] वह युद्ध द्वारा एक वार जाटों को नीचा दिखाना चाहता था और इसी कारण उसने जान बूझकर ऐसी माँग रखी, जो जाटों को अस्वीकार्य हो। जव रूपराम ने अपने स्वामी को होल्कर द्वारा दो करोड़ रुपया अथवा युद्ध की हठधर्मिता के विषय में सूचित किया, तो प्रतिक्रियास्वरूप सूरजमल ने भी अन्तिम रूप से चालीस लाख रुपये की पेशकश करते हुए साथ में पाँच गोले व वारूद भेजकर युद्ध की चुनौती को भी स्वीकार किया।[2]

जाट मराठा युद्ध

१६ जनवरी १७५४ ई० को मराठा सेनाऐं जाट राज्य पर आक्रमण के लिए जयपुर से चल पड़ी और जयपुर तथा जाट राज्य की सीमा पर स्थित मौजा जलूथर पहुँचकर डेरा किया। यहाँ १६ तारीख को दिल्ली से खाण्डेराव और गंगाधर तांत्या आकर शामिल हुए।[3] मल्हार के आदेश से खाण्डेराव जव अपनी ४,००० सेना के साथ दिल्ली से लौटते समय मार्ग में मेवात व जाट इलाके को बुरी तरह से लूटने लगा, तो जवाहरसिंह अपनी सेना के साथ उसका सामना करने पहुँच गया। समय से पूर्व ही एक वड़े संघर्ष की आशंका से चिन्तित मल्हार व सूरजमल दोनों ने अपने-अपने पुत्रों को युद्ध न छेड़कर डेरों पर लौट आने की सलाह दी।[4]

सूरजमल ने जयपुर से रूपराम द्वारा शत्रु के सम्भावित आक्रमण की सूचना मिलते ही दिसम्वर (१७५३ ई०) में अपनी प्रतिरक्षात्मक तैयारियाँ तेज कर दी थी। डीग, कुम्हेर, भरतपुर और वैर के दुर्गों को युद्ध एवं रक्षा की सामग्री से सुसज्जित कर लिया। मल्हार राव द्वारा चालीस लाख की पेशकश के प्रस्ताव को ठुकरा दिए जाने और जयपुर से कूच करने की ख़वर मिलने पर लगभग १६ जनवरी को डीग में वृद्ध एवं रूग्ण राजा वदनसिंह की अध्यक्षता में एक संकटकालीन दरवार लगा। वदनसिंह के दोनों ओर क्रमशः सूरजमल और जवाहरसिंह वैठे थे। इस सभा में जाटों की चार प्रमुख डूँगों (गोत्रीय पंचायत यथा सिनसिनवार, सोगरवार, खूँटेल और चौथी सम्भवतः नौहवार) के प्रमुख सरदारों सहित अनेक महत्वपूर्ण व्यक्ति और राज्य के पदाधिकारी उपस्थित थे। इस सभा में जाट राज्य पर मराठा आक्रमण से उत्पन्न गम्भीर संकट पर खुलकर विचार विमर्श हुआ। अन्त में वदनसिंह ने घोषणा की कि शान्ति के सभी उपाय समाप्त हो चुके हैं और अव केवल युद्ध द्वारा

---

१. पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र, ९३; सुजान चरित्र, पृ० २३७
२. सुजान चरित्र, पृ० २३७; भाऊ वखर पृ० ३; तारीखे अहमदशाही, पृ० १८ व-१० अ
३. आमेर रिकार्ड, पत्र, माघ कृष्णा ११ वि० सं० १८१० (१९ जनवरी १७५४ ई०)
४. सुजान चरित्र, पृ० २३८-३९

ही राज्य की रक्षा हो सकती है, अतः वे सब लोग चारों दुर्गों से घनघोर युद्ध करें।[1]

डीग से सूरजमल भरतपुर, कुम्हेर तथा वैर की रक्षा व्यवस्था का निरीक्षण करने हेतु रवाना हो गया। स्वयं बदनसिंह ने जवाहरसिंह और अपने मन्त्री गजसिंह के साथ डीग के नौ प्रवेश द्वारों पर मोर्चाबन्दी का निरीक्षण किया और जवाहरसिंह को नियमित रूप से अऊ दरवाज़े (कुम्हेर की ओर) पर रहने का निर्देश दिया। डीग दुर्ग के भीतर दो वर्ष के लिए खाद्य व शस्त्र सामग्री का संग्रह किया गया और दुर्ग की प्राचीर के बुर्जों पर तोपें जमा दी गई।[2] सूरजमल ने भरतपुर पहुँचकर एक तेज़ सांडनी सवार वैर भेजकर अपने भतीजे बहादुरसिंह को वहाँ की मोर्चाबन्दी के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश भेजे और स्वयं भरतपुर दुर्ग की व्यवस्था में लग गया। उसने चारों ओर मिट्टी की दीवार पर मोर्चे बनाकर विभिन्न सरदारों की नियुक्ति की और बुर्जों पर तोपें स्थापित की। नवबास की ओर क़िले की रक्षा का भार शम्भू के पुत्र को तथा पूर्वी द्वार का हरगोविन्द के चारों भाइयों को सौपा। वैर से बहादुरसिंह का जवाब आते ही भरतपुर दुर्ग का भार द्विजराज को सौंपकर सूरजमल शीघ्रता से कुम्हेर की ओर चल पड़ा।[3]

कुम्हेर का घेरा

२० जनवरी १७५४ ई० को मराठा सेनाओं ने कुम्हेर के निकट पिंगोर गाँव में अपना शिविर स्थापित करके जाटों के विरुद्ध युद्ध शुरु कर दिया।[4] सूरजमल जो कुम्हेर दुर्ग के भीतर भारी मात्रा में खाद्यान्न एवं शस्त्र सामग्री जमा कर चुका था, एक शक्तिशाली सेना के साथ मराठा सेना का सामना करने के लिए मैदान मे निकल आया, जहाँ एक भीषण युद्ध में दोनों पक्षों के सैंकड़ों व्यक्ति मारे गए। विशाल मराठा सेना का मैदान में सामना करने में असमर्थ पाकर सूरजमल ने रक्षात्मक दृष्टि से अपने आपको कुम्हेर दुर्ग के भीतर बन्द कर दिया।[5] मराठा सेनाओ ने आगे बढ़कर क़िले के ठीक सामने अपने मोर्चे क़ायम कर लिए और दुर्ग को चारो ओर से घेर लिया। यह घेरा लगभग चार महीने (१८ मई तक) चला।

कुम्हेर मिट्टी का दुर्ग था, जिसकी दीवारें चौड़ी और खाईयाँ गहरी थी।

१. सुजान चरित्र, पृ० २३९-४०

२. वही, पृ० २४२-४५

३. वही, पृ० २४६-४७

४. आमेर रिकार्ड, पत्र, माघ कृष्णा ११ वि०सं० १८१० (१९ जनवरी १७५४ ई०); पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र १०४

५. तारीख़े अहमदशाही, पृ० १०९ ब

सूरजमल ने अपनी मुख्य सेना के हाथ इसकी इतनी सुदृढ़ मोर्चाबन्दी की कि यह दुर्ग अभेद्य हो गया। मराठों ने हथनाल, शतुरनाल, बन्दूक व जेजाला आदि से आक्रमण प्रारम्भ कर दिया, जाटों ने भी दुर्ग की प्राचीर से निरन्तर गोलाबारी की, जो १५ दिन तक चलती रही, किन्तु दुर्ग अजेय रहा। रेतीली भूमि होने के कारण मराठों का सुरंगें लगाने का प्रयास सफल नहीं रहा। मराठों द्वारा अपनी तोपों को नीचा करने पर गोला रेत में चला जाता था और ऊपर करने पर दुर्ग को पार करके दूसरी तरफ़ उन्हीं के मोर्चों पर गिरता था।[1] इस कारण घेरा लम्बा होता गया, किन्तु मराठा सैनिक टुकड़ियाँ जाट प्रदेश में काफ़ी दूर-दूर तक फैल गई और कुछ ही समय में जाटों के चार दुर्गों (भरतपुर, कुम्हेर, वैर व डीग) को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण जाट प्रदेश पर मराठों का अधिकार हो गया।[2] ३ फरवरी को मराठा सरदार रामाजी ने जाट अधिकारियों को निकालकर आगरा शहर पर भी अधिकार कर लिया।[3]

मराठों द्वारा शाही तोपों को पाने का असफल प्रयास

कुछ समय बाद होल्कर के बुलाने पर इमाद भी राजधानी से कुम्हेर के लिए रवाना हुआ। रास्ते में जब वह मथुरा में लूटपाट कर रहा था, तो पता चलने पर मल्हार राव ने उसे ऐसा करने से रोका। इमाद अपने सहायक अकीबत के साथ मेवात में जाट गाँवों को लूटता हुआ मार्च के प्रारम्भ में कुम्हेर पहुँचकर मराठा सेना में शामिल हो गया।[4] इमाद व मराठों के संयुक्त प्रयासों के बावजूद क़िले को लेने के दिन प्रतिदिन के प्रयास निष्फल होते गए और तब मराठों ने महसूस किया कि बिना बड़ी तोपों के कुम्हेर दुर्ग को जीतना कठिन है।[5] अतः मराठों ने इमाद के द्वारा शाही तोपखाने की माँग की। इमाद ने अपने सहायक अकीबत महमूद खान को धूमधानी, किलाकशा, धूमक और आलमसितानी नामक विशाल तोपें लाने के लिए सम्राट के पास भेजा।[6]

कुम्हेर दुर्ग में बन्द सूरजमल के लिए यह गंभीर चुनौती का समय था। केवल दुर्ग की रक्षा से ही जाट राज्य को भावी विनाश की आशंका से मुक्त नहीं किया

---

१. भाऊ बखर, पृ० ४
२. तारीख़ मुज़फ़्फ़री, पृ० ८३; चहार गुलज़ार, इलियट, VIII, पृ० १५५; फ्रैंकलिन, शाह आलम, पृ० ३
३. तारीख़ अहमदशाही, पृ० १११ ब
४. वही, पृ० ११४ अ; १५ मार्च को रघुनाथराव ने इमाद से एक लिखित समझौता किया, जिसके अनुसार जाटों का खज़ाना और लूट की सामग्री का चतुर्थांश उसको दिया जाना तय हुआ, देखें, पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र १०४
५. तारीख़ अहमदशाही, पृ० ११४अ
६. शाकिर खान, पृ० ७६; तारीख़ अहमदशाही, पृ० ११४ ब

जा सकता था। अतः उसने सम्राट एवं वजीर इन्तिजाम को कूटनीतिक पत्र लिखे कि इमाद मराठों के साथ मिलकर साम्राज्य को नष्ट कर रहा है। अगर उसकी महत्वाकांक्षी योजनाओं को शुरू में ही नहीं कुचल दिया गया तो, उसकी सफलता उसका सिर घुमा देगी और जब वह अपने वृद्ध चाचा को वज़ारत से एक तरफ़ धक्का देगा और सम्राट के साथ कटु व्यवहार करेगा तो उसके रास्ते में कौन रुकावट बनेगा ? सूरजमल ने शाही तोपखाने से इमाद को तोपें न देने का आग्रह करते हुए सम्राट के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि वह सफ़दरजंग तथा राजपूताना के राजाओं को आमंत्रित करके उनकी सहायता से सभी के समान शत्रु मराठों को उत्तर भारत से निकाल बाहर करें।[1]

वज़ीर इन्तिजामुद्दौला ने भी, जो मराठों के प्रति कुदृष्टि रखता था और अपने भतीजे की सफलता नहीं चाहता था, सम्राट को चतुरतापूर्वक सलाह दी कि अगर मराठों की युद्ध सामग्री, सूरजमल से जीते हुए दुर्ग एवं विशाल सम्पत्ति तथा शाही तोपखाना दुर्दान्त एवं बेईमान इमाद के हाथों में सौंप दिए गए, तो उसकी महत्वाकांक्षाएँ कल्पना की सभी सीमाओं को लांघ जाएगी।[2] सम्राट ने वज़ीर से सहमति प्रकट की और जब अकीबत आगरा पहुँचा, तो वहाँ के क़िलेदार ने शाही आदेशानुसार तोपें देने से इनकार कर दिया।[3] १६ मार्च को अकीबत दिल्ली पहुँचा और जब वज़ीर ने तोपें देने से मना कर दिया, तो उसने विद्रोह भाव प्रदर्शित किया।[4] भीरु सम्राट इमाद की तानाशाही से भयभीत हो गया तथा अकीबत के विद्रोह ने उसके सन्देह को पुष्ट कर दिया। यही कारण था कि सूरजमल के पत्र एवं वज़ीर की सलाह ने उस पर जादू का कार्य किया। शाही मोहरयुक्त पत्र जयपुर व जोधपुर के राजाओं तथा सफ़दरजंग को भेजे गए, जो सभी मराठों के हाथों बहुत हानि उठा चुके थे। इन पत्रों में उन्हें दक्षिणी कण्टकों से हिन्दुस्तान को मुक्त करने के लिए शाही झण्डे के नीचे अपनी सेनाओं को एकत्र करने के लिए कहा गया था।[5]

खाण्डेराव की मृत्यु

इसी बीच १७ मार्च[6] को मल्हार राव होल्कर के इकलौते पुत्र ३० वर्षीय

---

१. कानूनगो, जाट, पृ० ९१; फ़र्स्ट टू नवाब, पृ० २३७
२. सियार, III, पृ० ३३६
३. तारीखे अहमदशाही, पृ० ११४ ब; शाकिर खान स्पष्ट लिखता है कि सम्राट ने जाटों का लिहाज करके तोपें देने से इनकार कर दिया (तज़किरा, पृ० ७६)।
४. तारीखे अहमदशाही, पृ० ११५ ब
५. फ़र्स्ट टू नवाब, पृ २३७
६. कानूनगो ने खाण्डेराव की मृत्यु तिथि २७ फरवरी (जाट, पृ० ८६, पा० टि०) और मुकुन्द वामनराव बर्वे ने २४ मार्च (लाइफ ऑफ सूबेदार मल्हार राव होल्कर, पृ० ७०) दी है, जो सही नहीं है। सरदेसाई द्वारा प्रस्तावित १७ मार्च ही अधिक तर्कसंगत तिथि है (म० न० इ०, II, पृ० ३८९), क्योंकि तारीखे अहमदशाही (पृ० ११७ अ) में १६ मार्च को अकीबत के विद्रोह के बाद ही यह सूचना दरबार में पहुँचने का वर्णन मिलता है, जबकि दिल्ली क्रानिकल्स (पृ० ४८) में १९ मार्च को यह खबर पहुँचने का वर्णन मिलता है।

खाण्डेराव की मृत्यु से मराठा शिविर में सन्नाटा छा गया। घटना के दिन खाण्डेराव, जो अपने मोर्चे दुर्ग की दीवार तक ले जाने में सफल रहा था, पालकी में बैठकर खाईयों का निरीक्षण कर रहा था। अचानक दुर्ग से गोलाबारी शुरू हो गई और एक जम्बूरे का गोला लगने से उसकी वहीं पर मृत्यु हो गई।[१] फलस्वरूप युद्ध कुछ दिनों के लिए स्थगित हो गया। रघुनाथराव सहित अन्य सरदारों ने मल्हार राव को धीरज बँधाया और इमाद ने संवेदना प्रकट करते हुए कहा, "अब से आप खाण्डू के स्थान पर मुझे अपना पुत्र समझें।"[२] सूरजमल ने भी मल्हार तथा खाण्डेराव के पुत्र मलराव को शोकसूचक वस्त्र भेजते हुए खेद व्यक्त किया।[3] सम्राट ने भी शोक प्रकट किया।

१ अप्रेल को युद्ध पुनः प्रारम्भ हो गया। उसी रात्रि को सूरजमल दुर्ग से बाहर निकलकर हरगोविन्द नाटाणी के डेरे में गया और लौटकर (संभवतः शत्रु खेमे में शान्ति की कोई सम्भावना न पाकर) क़िले के अन्दर से आक्रमण शुरू कर दिया, जिसमें अनेक मराठे मारे गए।[४] मल्हार जो अपने पुत्र के अन्त्येष्टि कर्म करने मथुरा गया हुआ था, ४ तारीख को लौटकर मराठा शिविर में आया।[५] पुत्र के शोक में क्रुद्ध मल्हार ने प्रतिज्ञा की कि, "सूरजमल का सिर विच्छेद करके कुम्हेर दुर्ग की मिट्टी यमुना में डालूँगा, तभी मेरा जन्म सार्थक होगा, अन्यथा मैं प्राण त्याग दूँगा।"[६]

इस प्रकार प्रतिशोध की ज्वाला में मराठा सेनाओं ने दुगुने वेग से जाटों पर भीषण प्रहार शुरू कर दिए। होल्कर ने शाही तोपें न पहुँचने पर रुष्ट होकर अपने दीवान गंगाधर यशवन्त तांत्या को अन्य स्थानों से अधिक से अधिक तोपों की व्यवस्था करने के लिए कहा, ताकि वह जाटों को नष्ट करने की अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सके। फतहसिंह बड़गूजर को भेजकर घसेरा से तोप मँगवाई गई और राजश्री अप्पाजी को उज्जैन से तथा मुज़फ्फ़र खान गारदी को अपना तोपखाना भेजने के लिए लिखा गया। मालवा और इन्दौर से भी तोपखाना भेजने के सम्बन्ध में पत्र लिखे गए।[७]

---

१. तारीखे अहमदशाही, पृ० ११७; भाऊ बखर, पृ० ५; अहिल्याबाई को छोड़ खाण्डू की सभी पत्नियाँ (नौ) उसके साथ सती हो गई और उसका स्मारक वहीं दुर्ग के सामने मैदान में बना दिया गया (दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ४८) जो आज भी गांगरसोली (कुम्हेर) में जाट शासकों की सद्भावना के प्रतीक के रूप में विद्यमान है।

२. तारीखे अहमदशाही, पृ० ११७ ब

३. वही, पृ० १२१ ब

४. वही

५. वही, पृ० १२२ अ

६. भाऊ बखर, पृ० ५

७. पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र ५६

सूरजमल की प्रतिरक्षात्मक कूटनीति[1] की सफलता

यद्यपि सैनिक दृष्टि से जाटों ने विशाल मराठा सेना के मुक़ाबले में कुम्हेर की प्रतिरक्षा में तीन महीने तक अद्भुत धैर्य एवं साहस का परिचय दिया, तथापि प्रतिशोध की उग्र भावना ने मराठा भुजा में जिस नवशक्ति का संचार किया उसका वज़न जाट भी महसूस करने लगे। हिन्दुस्तान में ऐसी कोई साहसी शक्ति नहीं थी, जो मराठों के विरुद्ध खुलकर उनकी सहायता के लिए अंगुली उठा सके। इस कारण सूरजमल को अपना भविष्य धुँधला दिखाई देने लगा। वह समझौते का इच्छुक था, किन्तु अब होल्कर का दुराग्रह उसके मार्ग में बाधक था।

ऐसे अवसर पर सूरजमल की चतुर पत्नी हंसिया ने अपनी उपाय कुशलता से पति के निस्तेज जीवन में आशा का संचार किया। वह मराठा सरदारों की आपसी स्पर्द्धा और जयप्पा सिन्धिया की विश्वसनीयता से अवगत थी। अतः शत्रु के शिविर में फूट डालने के उद्देश्य से एक रात्रि को उसने रूपराम के पुत्र तेजराम कटारी को, सूरजमल की पगडी एवं उसके पत्र के साथ, जयप्पा के पास पगड़ी बदलकर उसकी मित्रता एवं संरक्षण पाने की याचना के साथ भेजा। जयप्पा ने सूरजमल की धरोहर को स्वीकार करके एक उत्साहवर्धक पत्र के साथ अपनी पगड़ी भेजी और अपनी सदाशयता के सर्वाधिक पवित्र प्रमाण के रूप में बेल भण्डार से पुष्प भेजे।[2] इस समाचार के प्रकट हो जाने पर मल्हार राव अत्यन्त उदास हो गया।

दूसरी ओर सूरजमल ने सियार के लेखक के अनुसार सम्राट एवं वजीर इन्तिज़ाम को पत्र लिखा कि अगर उन्होंने मराठा एवं मीर शहाबुद्दीन (इमाद) को अपनी योजना पर चलने दिया, तो एक समय आएगा जब वह वज़ीर के पद के साथ साथ सिंहासन पर भी अपनी आँखें गढ़ाएगा और सरकार बदलने का प्रयास करेगा, ताकि नया शासन उसके अनुकूल हो। इसलिए शाही हित में वह सलाह देता है कि इन परिस्थितियों में क्या यह उचित नहीं होगा कि सम्राट अपने मन्त्री तथा सेना के साथ, शिकार एवं शाही भूमि के निरीक्षण के बहाने से सिकन्दरा की तरफ़ बढ़ें, जहाँ पर शामिल होने के लिए अब्दुल मंसूर खान को बुलाया जाय, जो मराठों व मीर शहाबुद्दीन को नष्ट करने हेतु साथ देने में नहीं चूकेगा।[3] सूरजमल की योजना

---

१. देखें चान्दावत, "कुम्हेर के घेरे में सूरजमल की प्रतिरोधात्मक कूटनीतिक योजना का स्वरूप," राजस्थान इतिहास कांग्रेस का १२ वां अधिवेशन, १९७९ ई०

२. भाऊ बखर, पृ० ५-६; गुलगुले दफ्तर, I, पत्र संख्या २१२ व २२७ से इसकी पुष्टि होती है।

३. सियार, III, पृ० ३३६; इसकी पुष्टि नवाब मुहब्बत खान के ग्रन्थ अखबार-ए-मुहब्बत (इलियट, VIII, पृ० २८९) से भी होती है।

थी कि सम्राट अलीगढ़ पहुँचे और वहाँ तब तक रुकें, जब तक कि नवाब सफ़दरजंग वहाँ न पहुँच जाय। अवध से आने वाली सेना के पहुँचते ही उसे तेज़ी से आगरा की ओर प्रयाण करना था, जहाँ कछवाहा एवं राठौड़ राजाओं को अपनी-अपनी सेनाओं के साथ उसके साथ मिलना था। योजना चम्बल पर घेरा बनाने की थी, ताकि शत्रु बचकर नहीं जा सके। अगर मराठे कुम्हेर का घेरा उठाकर आगरा पर प्रयाण करते हैं, तो सूरजमल उनके पीछे से आकर सम्राट के साथ सम्मिलित हो जाएगा।[1]

सूरजमल की यह सलाह सम्राट एवं वज़ीर द्वारा स्वीकृत कर ली गई।[2] जब सभी ओर से उत्साहजनक जवाब आ गए तो सम्राट २७ अप्रैल को अपने हरम, सेना व तोपखाने के साथ शिकार-ए-काफ़िले पर राजधानी से रवाना हुआ।[3] सफ़दरजंग भी गंगा के किनारे मेहदीघाट (कन्नौज के नीचे) पहुँचकर सम्राट के अलीगढ़ पहुँचने की प्रतीक्षा करने लगा। परन्तु सम्राट जैसा कि निश्चय किया गया था, अलीगढ़ पहुँचकर सुदृढ़ दुर्ग में शरण पाने की अपेक्षा मूढ़तावश सिकन्दराबाद (१७ मई) के पड़ोस में समय गंवाता रहा।[4] फलस्वरूप वह सफ़दरजंग के दल से प्रतिकूल स्थिति में हो गया। इस प्रकार सम्राट सूरजमल की सलाह के इस भाग पर विलम्ब एवं अनिच्छा से कार्य करता दिखाई दिया, जिसे वज़ीर एवं उसकी माता मलिका जमानी ने भी पसन्द नहीं किया।[5]

सम्राट के शिविर की इन मन्त्रणाओं और अनिश्चय के समाचार मीर शहाबुद्दीन को मिल गए, जो अत्यधिक सतर्क और अपनी योजना पर ध्येयरत था।[6] इमाद ने इन गतिविधियों का अवलोकन पूरी गम्भीरता से किया और होल्कर की सहायता से वह सम्राट को परास्त करने के लिए तैयार हो गया। इसके परिणाम स्वरूप इमाद का ध्यान कुम्हेर से हटकर सम्राट की योजना को विफल करने में लग

---

१. इस योजना का श्रेष्ठतम वर्णन तारीखे मुज़फ़्फ़री (पृ० ८८) में किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इमाद व मराठों को इस योजना का पता चल गया था और उन्होंने सूरजमल को कुम्हेर दुर्ग से बाहर निकाल लाने के उद्देश्य से एक जवाबी योजना बनाई, किन्तु उसमें वे सफल नहीं हुए, देखें, हिंगणे दफ्तर, I, पत्र ९०, १६ अप्रैल १७५४ ई०
२. सियार, III, पृ० ३३६; कैम्ब्रिज हिस्ट्री, पृ० ४३६
३. सियार III, पृ० ३३६; सरकार, पतन, I, पृ० २८९
४. फ़र्स्ट टू नवाब, पृ० २३७-३८; तारीखे अहमदशाही, पृ० १२७ ब; तारीखे मुज़फ़्फ़री, पृ० ८६
५. सियार, III, पृ० ३३७
६. वही

गया । ईसी उद्देश्य से उसने अपने षड्यन्त्रकारी दूत अकींवत को सम्राट के शिविर में भेजा ।[1] इस प्रकार सूरजमल की उपर्युक्त योजना ने इमाद पर दवाव का काम किया ।

दूसरी ओर भाऊ बखर के लेखक के अनुसार सूरजमल ने जयप्पा सिन्धिया को सन्देश भेजा, "आप कब तक मेरी परीक्षा करोगे ? या तो आप सहायता करने आओ या आक्रमण करके मुझे मारो ।" इस पर जयप्पा अपने सलाहकारों के साथ मन्त्रणा करने के पश्चात् रघुनाथराव के पास गया और कहा, "दादा साहब मैं साधारण घुड़सवार हूँ, नमक हराम नहीं हूँ । ऐसी स्थिति में मैं जो कहूँगा, उसे आप पसन्द नहीं करेंगे । इस समय जाटों से खंडणी लेकर इस अभियान को पूरा करो । अगर हम यहाँ एक स्थान पर लम्बे समय तक रहेंगे, तो भारी पड़ेगा ।" इस पर रघुनाथराव बड़ी दुविधा में फँस गया । उसने सखाराम बापू से इस प्रश्न पर सलाह मशविरा किया कि अगर शत्रु से समझौता करते हैं, तो मल्हार राव को खो बैठते हैं और नहीं करते हैं, तो अपनी बातें समाप्त होती हैं, इसका उपाय क्या किया जाय ? जब जयप्पा ने अपनी सेना के साथ कूच करने की धमकी दी, तो इस विकट समस्या पर वार्ता करने के लिए रघुनाथराव होल्कर के पास गया और कहा, शिन्दे तो जा रहा है । तुम वरिष्ठ होने के नाते मुझे क्या सलाह देते हो ? मल्हार ने यह अनुभव किया कि उसके अकेले दुराग्रह करने पर सारे परिणामों की जिम्मेदारी उसी पर होगी और अगर वह रघुनाथराव की सलाह पर ध्यान नहीं देता है तो यहाँ भी उसे कोई लाभ नहीं है । यह सोचकर उसने रघुनाथराव से कहा कि वह उसके स्वामी है, और जिसमें वह प्रसन्न है, वह उसे स्वीकार है । इस प्रत्युत्तर का श्रेष्ठ उपयोग करते हुए रघुनाथराव जयप्पा के पास आया और उसकी रवानगी को रोककर उसे जाटों के साथ सुलह करने की स्वीकृति दे दी ।[2] इस विवरण से स्पष्ट पता चलता है कि कुम्हेर के दुर्ग में घिरे सूरजमल को गम्भीर स्थिति से उबारने में जयप्पा की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही ।

जाट-मराठा सन्धि (१८ मई १७५४ ई०)

इस प्रकार सूरजमल की कूटनीतिक योजना ने घटनाक्रम को उसके पक्ष में इस तरह मोड़ दिया कि जाट सेना द्वारा कुम्हेर की अभूतपूर्व रक्षा के अन्तिम चरण में इमाद व मराठों का सक्रिय दवाव कम होने लगा और जब जाट राजा तीस लाख रुपयों के अतिरिक्त सम्राट को दी जाने वाली पेशकश की राशि इमाद व मराठों को देने को तैयार हो गया, तो १८ मई १७५४ ई० को दोनों पक्षों के बीच तुरन्त

१. वही, पृ० ३३७; तारीखे मुजफ्फरी, पृ ६०, सम्राट को धोखा देने के अकीवत के प्रयासों के लिए देखें सरकार, पतन, I, पृ० २८६-२६०

२. विस्तृत विवरण के लिए देखें, भाऊ बखर पृ० ७ से ११ और वर्वे सूबेदार मल्हार राव होल्कर, पृ० ७१ से ७३

शांति स्थापित हो गई।[1] अगले दिन इमाद व होल्कर मथुरा[2] तथा २२ मई को जयप्पा नारनौल[3] के लिए रवाना हो गए। इस सन्धि से सूरजमल ने बहुत बड़ी राहत महसूस की, अतः उसने शाही खेमे की ओर जाने का विचार बदल दिया। २६ मई को होल्कर द्वारा सिकन्दराबाद के शाही शिविर पर आक्रमण और २ जून को इमाद द्वारा मराठों की सहायता से वज़ीर एवं सम्राट की क्रमशः पदच्युति उपर्युक्त घटनाक्रम की पुष्टि करती है।

कुम्हेर का घेरा समाप्त होने पर सूरजमल की तात्कालिक समस्या जाट राज्य की पुर्नव्यवस्था और खोए हुए भूभाग पर पुनः अधिकार करने की थी। यद्यपि इस घेरे के दौरान सूरजमल की सैनिक शक्ति को कोई विशेष हानि नहीं पहुँची थी, किन्तु मात्र चार दुर्गों को छोड़कर सम्पूर्ण जाट राज्य व्यवहारतः इमाद एवं मराठा सेनाओं के अधिकार में जा चुका था। यही कारण था कि ऐसी परिस्थिति में सिकन्दराबाद एवं दिल्ली में घटित घटनाओं (सम्राट एवं वजीर की पदच्युति) में पूर्व निश्चय के अनुसार भाग न लेकर सूरजमल ने उदासीनता का रुख अपनाया। इसका परिणाम यह हुआ कि उसका राजनीतिक शत्रु इमाद वज़ीर का पद प्राप्त करके और अधिक शक्तिशाली बन गया।

जाट-मराठा समझौता (अगस्त १७५४ ई०)

अगस्त के प्रारम्भ में जाट पुनः सक्रिय हो गए। उन्होंने दिल्ली के निकटवर्ती इलाकों में लूटपाट शुरू कर दी और नरेला व सोनीपत के कई गाँवों में मराठों के साथ भी उनकी मुठभेड़ें हुई।[4] मराठों ने इस समय अपने विस्तार के लिए सूरजमल से समझौता कर लेना नीतिसंगत समझा। सूरजमल ने पिछले संघर्ष के अनुभव के आधार पर मराठों की तुलना में इमाद को अपना प्रमुख शत्रु समझा, जो अभी भी

---

१. तारीखे अहमदशाही, पृ० १२८ अ; भाऊ बखर (पृ० ११) के अनुसार यह राशि साठ लाख रुपये थी जो सही नहीं है। तारीखे अहमदशाही और पेशवा दफ्तर (XXI, पत्र ६०) में यह राशि तीस लाख ही बताई गई है। किन्तु सूरजमल ने इस राशि का भी भुगतान नहीं किया, पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र ८० व ८६

२. तारीखे अहमदशाही, पृ० १२८ अ

३. तारीखे मुजफ्फ़री (पृ० ९३) का वृतान्त भ्रान्तिपूर्ण है। मराठा पत्र से पता चलता है कि जयप्पा ने दिल्ली से नारनौल की ओर कूच किया था। इससे मालूम होता है कि दिल्ली में सम्राट परिवर्तन की क्रांति में सहायता देने के बाद ही सभवतः वह नारनौल के लिए रवाना हुआ होगा, शिंदेशाही इतिहासांची साधनें, I, पत्र, ११४

४. तारीखे आलमगीर सानी, पृ० १६ ब

जाट प्रदेशों पर अधिकार जमाए हुए था, जबकि मराठे जाट प्रदेश को खाली कर चुके थे। इस कारण सूरजमल ने भी इमाद से अपने प्रदेशों को मुक्त कराने के लिए मराठों के साथ समझौता कर लेना बुद्धिमतापूर्ण समझा। वैण्डल के अनुसार इस समझौते के अनुसार जाट राजा इस बात पर सहमत हो गया कि मराठों के युद्धों में वह उनका विरोध नहीं करेगा और उत्तर में जब मराठों की सेना का कूच होगा, तब वह किसी प्रकार का विरोध नहीं करेगा। उस समय आगरा सूबे का बड़ा भाग मराठों के हाथ में था। रघुनाथराव ने सूरजमल को यह अनुमति दे दी कि वह इस प्रदेश पर अधिकार कर सकता है।[१] मराठा सूत्रों के अनुसार सूरजमल को इस प्रदेश में बादशाह के खालसा के महाल, वजीर की जागीरें तथा अन्य जागीरों पर अधिकार करने की स्वीकृति दे दी गई थी।[२] यह समझौता संभवतः अगस्त (१७५४ ई०) के अन्त में हुआ, जब होल्कर का दीवान गंगाधर मथुरा में सूरजमल से मिला था।[3]

होडल, पलवल और मेवात पर अधिकार

मराठों को विश्वास में लेकर अब सूरजमल ने शाही अधिकार से अपने प्रदेशों की मुक्ति के लिए खुला संघर्ष छेड़ दिया। सितम्बर के प्रारम्भ में उसने होडल तथा उसके आसपास के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। २७ सितम्बर को उसने बालू जाट के पुत्र के नेतृत्व में एक जाट सेना पलवल पर अधिकार करने के लिए भेजी, जो वजीर की जागीर का महाल था। अगले दिन जाट सेना ने अचानक हमला करके पलवल पर अधिकार कर लिया। जाटों ने वहाँ के काजी को गिरफ्तार कर लिया और कानूनगो सन्तोपराय को, जिसने बालू जाट की हत्या के लिए अकीबत को उकसाया था, मौत के घाट उतार दिया।[४]

यह समाचार मिलते ही वजीर गाजीउद्दीन (इमाद) उसी समय अपनी सेना के साथ मल्हार राव होल्कर के पास गया और जाटों के विरुद्ध आक्रमण मे उसकी सहायता करने की प्रार्थना की। इस पर मल्हार ने उसे शान्त किया और अगले दिन वह वजीर को रघुनाथराव के पास ले गया। रघुनाथराव ने वजीर को स्पष्ट जवाब दिया, "हमने सूरजमल के साथ सन्धि की है। मैं अपने वचन से पीछे नहीं हटूँगा। आप धैर्य रखिए, मैं सूरजमल को आपकी जागीर के महालों पर अधिकार न करने के लिए लिख देता हूँ।"[५]

---

१. सरकार, पतन, II, पृ० २७२; तारीखे आलमगीर सानी, पृ० २२ अ से इसकी पुष्टि होती है।
२. हिंगणे दफ्तर, I, पत्र १७६
३. पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र ११४
४. तारीखे आलमगीर सानी, पृ० २२ अ
५. वही, पृ० २२ अ

इस बीच अकीबत ने बदख्शी सेना तथा रिसालेदारों के नेतृत्व में सैनिक टुकड़ियाँ भेजकर मेवात के जिलों के गाँवों में राजस्व वसूली तथा लूटमार शुरू कर दी थी। इस पर अक्तूबर के मध्य में सूरजमल ने एक शक्तिशाली जाट सेना को भेजकर शाही सेना को खदेड़ दिया और मेवात के अधिकांश क्षेत्र पर जाटों का पुनः अधिकार स्थापित हो गया।[1]

इमाद व सूरजमल के बीच समझौते के प्रयास की विफलता

इस समय वज़ीर अपनी सेनाओं में बकाया वेतन को लेकर विद्रोह तथा बढ़ते हुए शत्रुओं से परेशान था, अतः उसने सूरजमल से समझौता कर लेना हितकर समझा। बापू हिंगणे चाहता था कि जाट एवं वज़ीर के मामलात मराठों के मार्फ़त तय होने चाहिए। परिणामस्वरूप २२ अक्तूबर १७५४ ई० को जयसिंहपुरा स्थित मराठा शिविर में यह वार्ता शुरू हुई। होलकर के दीवान गंगाधर तांत्या और सूरजमल के पुरोहित रूपराम कटारी ने वार्ता प्रारम्भ करते हुए वज़ीर से कहा कि बल्लभगढ़ सूरजमल को दे दिया जाय, जो पहले उसके पास था। वज़ीर के इनकार करने पर यह वार्ता भंग हो गई।[2]

सूरजमल की निरन्तर सफलताएँ

२८ अक्तूबर को सूरजमल ने एक शक्तिशाली अभियान छेड़कर आगरा के निकटवर्ती सभी परगनों पर अधिकार कर लिया और वहाँ पर एक भी महाल खालसा भूमि में नहीं बचा।[3] इमाद ने बहादुर ख़ान बलूच को जाटों द्वारा अधिकृत परगनों पर पुनः अधिकार करने के लिए भेजा, किन्तु वह जाट (अलग-अलग) सेना द्वारा खदेड़ दिया गया।[4] ऐसा लगता है कि कुछ ही समय बाद जाट सेना बल्लभगढ़ पर पुनः अधिकार करने में सफल रही। अलीगढ़ पर भी आक्रमण करके दुर्ग पर अधिकार कर लिया गया और उसका नाम रामगढ़ कर दिया गया। अलीगढ़ को आधार बनाकर न केवल निकटवर्ती प्रदेश पुनः जाट राज्य में मिला लिए गए, बल्कि अब सूरजमल ने गंगा-यमुना के दोआब में आगे बढ़ना शुरू किया। यहाँ अन्ताजी माणकेश्वर के नेतृत्व में बढ़ती हुई मराठा सेना ने जाटों द्वारा अतिक्रमण के बावजद संघर्ष से बचने का प्रयास किया।[5]

---

१. वही, पृ० २२ ब
२. तारीख़ आलमगीर सानी, पृ० २६; सूरजमल के प्रति मराठों की नीयत साफ़ नहीं थी। वे चौथ की बकाया राशि के मामले में वज़ीर के साथ मिलकर जाटों पर आक्रमण करने के लिए भी सोच रहे थे, अतः यह सम्भव है कि वार्ता की विफलता में मराठों की भूमिका रही हो, देखें, हिंगणे दफ्तर, I, पत्र १०८
३. तारीख़ आलमगीर सानी, पृ० २८ ब, हिंगणे दफ्तर, I, पत्र १७६
४. तारीख़ आलमगीर सानी, पृ० २६ अ
५. पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र ६३, हिंगणे दफ्तर, I, पत्र १७८ व १७६

इमाद के विरुद्ध शुजाउद्दौला से गठबन्धन

१७५५ ई० के प्रारम्भ में अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने वज़ारत पर अपनी उम्मीदवारी के लिए समर्थन पाने हेतु अपने दूत अली कुली खान दागस्तानी को अपने वंशानुगत मित्र और इमाद के शत्रु भरतपुर के जाट राजा सूरजमल और फ़र्रुखाबाद के अहमद खान बंगश के पास भेजा। दोनों की ओर से इस योजना में शामिल होने के उत्साहजनक समाचारों के बाद अली कुली खान दिल्ली में बैठकर इस षड्यन्त्र पर अमल करने लगा। वह किशनचन्द सूद और दीवाने खास के उपअधीक्षक सैफुद्दीन मुहम्मद खान को अपने विश्वास में लेने में सफल रहा। किन्तु वज़ीर को इस षड्यन्त्र की गन्ध मिलते ही वह मई में राजधानी लौट आया और शीघ्र ही सैफुद्दीन को बर्खास्त करके गिरफ्तार कर लिया। किशनचन्द के मकान पर आक्रमण करके उसे लूटा, परन्तु वह बचकर भाग गया। अब वज़ीर ने सूरजमल से निपटने का निश्चय किया जो कि आसान कार्य नहीं था।[1]

वज़ीर का जाट विरोधी अभियान और नागरमल के शान्ति प्रयास

७ जून १७५५ ई० को वज़ीर ने नजीब खान रुहेला को एक शक्तिशाली सेना देकर दोआब से सूरजमल को निकाल बाहर करने के आदेश दिए। नजीब कुछ क्षेत्रों पर पुन: अधिकार करने में सफल हुआ,[2] किन्तु एक बड़ा संघर्ष होने के पूर्व ही शाही दीवान राजा नागरमल ने शान्ति के लिए हस्तक्षेप किया। नागरमल ने अपने दूत सुजानसिंह को नजीब के वकील मेघराज के साथ इस सन्देश के साथ भेजा कि वह वज़ीर को पेशकश की राशि देकर मामले का निपटारा कर दें। सूरजमल ने, जो वज़ीर पर भरोसा नहीं करता था, पाँच लाख रुपये इस शर्त पर देने की पेशक़श की कि जो परगने उसके अधिकार में हैं, वे उसके पास रहने दिए जाए, और सफ़दरजंग द्वारा उसे दी गई अठारह लाख की जागीर में उन्हें शामिल कर दिया जाय। वज़ीर ने इसे स्वीकार नहीं किया और वार्ता भंग हो गई।[3]

१७ जून को इमाद ने पुन: नजीब को सेना देकर जाटों के विरुद्ध रवाना किया। नजीब शिकारपुर से फ़र्रुखनगर पहुँचा। कुछ दिन बाद उसे पता चला कि सूरजमल ने जो दनकौर और खुर्जा में पड़ाव डाले हुए था, एक सैनिक टुकड़ी को सिकन्दराबाद भेजा, जहाँ मराठों ने वह दुर्ग उन्हें सौप दिया।[4] वज़ीर ने नजीब को पूरी शक्ति से सूरजमल के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के निर्देश भेजे और स्वयं

---

१. ए० एल० श्रीवास्तव, शुजाउद्दौला, I, पृ० २०-२१; सरकार, पतन, II, पृ० २८
२. तारीखे आलमगीर सानी, पृ० ५६ ब
३. वही, पृ० ५७ अ; हिंगणे दफ्तर, I, पत्र १७९
४. तारीखे आलमगीर सानी, पृ० ५७ अ

२ जुलाई को सम्राट के पास गया और उसे सूरजमल के विरुद्ध कूच करने का आग्रह किया। मीरबख्शी, शम्सुद्दौला, सैय्यद नियाज खान, मीर आतिश, जलालुद्दीन खान तथा अन्य लोग भी वहाँ उपस्थित हुए। इमाद ने कामगार खान, तसदीक बेग खान और सरहिन्द के फ़ौजदार को भी बुलावा भेजा। अन्त में यह निश्चय हुआ कि शाहज़ादा अली गौहर, वज़ीर तथा अन्य सरदार जाट विद्रोहियों के विरुद्ध कूच करें। इसके बाद सम्राट आलमगीर द्वितीय अपने महलों में चला गया। वज़ीर ने पेशखाना व तोपखाने को तैयार करने के आदेश दिए।[1]

शान्ति समझौता (२६ जुलाई १७५५ ई०)

जब युद्ध के बादल मंडराने लगे तभी राजा नागरमल ने, जो यह नहीं चाहता था कि युद्ध हो, वज़ीर को शान्ति के लिए प्रेरित किया। ७ जुलाई को वह वज़ीर के दो विश्वासपात्रों इबादुल्लाह एवं मुहम्मद आशिक के साथ यमुना पार करके नजीब के पास गया। उसी दिन नजीब अपनी २५,००० सेना के साथ फ़र्रुखनगर से दशना चला गया था, अतः नागरमल अगले दिन दशना जाकर उससे मिला। सूरजमल भी अपनी २०,००० सेना के साथ इस समय दशना के निकट पहुँच चुका था। नागरमल की मध्यस्थता से नजीब व सूरजमल के बीच यहाँ पर कई दिनों तक वार्ता चलती रही। कुछ समय बाद वज़ीर भी आकर इस वार्ता में सम्मिलित हो गया। अन्त में २६ जुलाई को सन्धि सम्पन्न हुई, जिसकी शर्तें निम्नलिखित थी—

(१) सूरजमल के पास अलीगढ़ तथा अन्य वे परगनें (खालसा) बने रहेंगे, जिन पर हाल ही में उसने अधिकार कर लिया था।

(२) इन प्रदेशों के राजस्व के रूप में २६ लाख रुपया देना तय हुआ। जावेद खान और सफदरजंग ने सूरजमल को पहले कुछ जागीरें दी थी, परन्तु उन पर कब्जा नहीं दिया था। अतः उन जागीरों के बदले वेतन के रूप में १८ लाख रुपये उपर्युक्त राशि में से घटा दिए जायेंगे।

(३) शेष आठ लाख रुपयों में से दो लाख रुपये सूरजमल ने तत्काल नक़द दिए और पचास हज़ार रुपये प्रति मास शाही खज़ाने में जमा कराने का वचन दिया।

(४) सूरजमल सिकन्दराबाद के दुर्ग को खाली कर देगा।[2]

---

१. वही, पृ० ५७ ब

२. सन्धि की धाराएँ तारीखे आलमगीर सानी (पृ० ५८) में दी हुई हैं। सन्धि की तारीख दिल्ली क्रानिकल्स से ली गई है। मराठा सूत्र उपर्युक्त शर्तों के अतिरिक्त एक और शर्त का उल्लेख-करते हैं, जिसके अनुसार सूरजमल ने ५,००० सेना के साथ शाही सेवा करना स्वीकार किया, हिंगणे दफ्तर, I, पत्र १७०

इस लिखित समझौते के अलावा अन्तर्वेद से मराठा थानों को हटाने और मराठों को चम्बल पार खदेड़ने के प्रश्न पर भी दोनों पक्षों के बीच मौखिक सहमति हो गई।[1] यद्यपि वज़ीर इस सहमति के प्रति ईमानदार नहीं था, फिर भी मराठों को जब इस समझौते की सूचना मिली तो वे अपने विरुद्ध एक बड़े राजनीतिक गठबन्धन की आशंका से भयभीत हुए। पेशवा ने दिल्ली स्थित अपने राजदूत हिंगणे बन्धुओं को लिखा कि वे इस बात की विस्तार से सूचना भेजें कि "करार के मुताबिक जाट का व्यवहार है अथवा नहीं और वह क्या मनसूबा कर रहा है।" साथ में उसने यह भी सलाह दी कि जो राजनीतिक स्थिति मराठों के विरुद्ध हो गई है, उसे जाट राजा के साथ बातचीत करके ठीक करें।[2] एक अन्य पत्र में पेशवा ने लिखा कि वे (हिंगणे बन्धु) जाट व नजीब की एकता को तोड़ने का प्रयास करें और बादशाह, वज़ीर, जाट तथा शुजाउद्दौला के मराठा विरोधी समझौते को सम्भव न होने दें।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुम्हेर की विपत्ति के एक वर्ष के भीतर ही सूरजमल अपने दोनों प्रमुख शत्रुओं (इमाद व मराठे) से पृथक-पृथक समझौते संपन्न करके अपनी राजनीतिक स्थिति को सुरक्षित, लाभप्रद एवं सुदृढ़ बनाने में सफल रहा। वह अपनी जागीरों की पुर्नप्राप्ति और उन पर शाही मान्यता प्राप्त करने में सफल हुआ और अब अधिक आत्म विश्वास के साथ अपने राज्य विस्तार के प्रयासों में लग गया।

मराठों के विरुद्ध गोहद के राणा की सहायता

भरतपुर के आगे आगरा व ग्वालियर के बीच में गोहद का छोटा सा राज्य[4] था। यहाँ के जाटों ने भरतपुर के जाट राजाओं के समर्थन से अपनी स्वतन्त्र

---

१. हिंगणे दफ्तर, I, पत्र १५६

२. वही, जि० I, पत्र १७०

३. वही, जि० I, पत्र १५६

४. यहाँ का प्रमुख जाटों की देशवाल शाखा के बमरौली परिवार से सम्बन्धित था, जो अपना वंश वृक्ष जेठसिंह से ढूँढते हैं, जिसके पास ग्यारहवीं शताब्दी में बैराठ (अलवर के दक्षिण में) में भूमि थी। बाद में यह परिवार ११९५ ई० के लगभग आगरा के निकट बमरौली गाँव में बस गया, जिस पर उसने बमरौली नाम धारण किया। मुसलमानों के विरुद्ध राजपूतों का साथ देने के कारण १५०५ ई० में इस परिवार को गोहद का प्रदेश और राणा की पदवी मिली थी। १८०६ ई० की ब्रिटिश सन्धि के अनुसार यह पूर्व में अधिकृत ग्वालियर और गोहद को खोकर, धौलपुर, बाडी एवं राजाखेड़ा को मिलाकर धौलपुर राज्य में परिवर्तित हो गया। इसका मुख्यालय धौलपुर आगरा के ३४ मील दक्षिण में तथा ग्वालियर के ३७ मील उत्तर पश्चिम में है। देखें, हन्टर, इम्पी० गजे० जि० IV, पृ० २७६-७७, १८८५ ई०, शेरिंग, दि ट्राइब एण्ड कास्ट ऑफ राजस्थान, पृ० ७६

सत्ता स्थापित कर ली थी। मराठों के उत्तर भारत के प्रवेश द्वार चम्बल पर स्थित होने के कारण इस समय यहाँ के राणा भीमसिंह को अपने प्रदेश की रक्षा के लिए उनसे लगातार संघर्ष करना पड़ा। १७५४ ई० में अन्ताजी माणकेश्वर के नेतृत्व में मराठा सेना ने मार्ग देने के बहाने उसके मुल्क को उजाड़ दिया और बहुत बड़े भूभाग पर अधिकार कर लिया।[1] मराठा आक्रमण से अपनी रक्षा के लिये राणा भीमसिंह ने अपने स्वजातीय एवं पड़ोसी जाट राजा सूरजमल की मैत्री एवं संरक्षण प्राप्त किया।

१७५५ ई० के प्रारम्भ में जब सूरजमल ने आगरा व दोआब में अधिकृत प्रदेशों की वापसी का अभियान तेज़ कर दिया था, उसी समय राणा भीमसिंह के नेतृत्व में गोहद के जाटों ने मराठों से अपने प्रदेश को मुक्त करा लिया और आगे बढ़ते हुए ग्वालियर के क़िले पर भी अधिकार कर लिया था। इस समय मुख्य मराठा सेना दिल्ली के निकट तथा दोआब की ओर थी, इस कारण विट्ठल सदाशिव के नेतृत्व में एक मराठा टुकड़ी इधर भेजी गई, जिसने गोहद के जाटों पर आक्रमण करके उन्हें पीछे हटने पर मजबूर किया। इस पर राणा ने अपने सरदार फतहसिंह को सूरजमल के पास सहायतार्थ भेजा। जुलाई में सूरजमल ने ५०० सवार और २००० पैदल उसके साथ रवाना कर दिए।[2]

भरतपुर की सेना के पहुँचते ही अगस्त में एक बड़ा युद्ध हुआ, जिसमें मराठा सेना बुरी तरह से पराजित हुई।[3] दिल्ली से मराठा कुमुक न आने के कारण विट्ठल सदाशिव को भारी रुपया खर्च करके अनेक जमींदारों को मिलाकर स्थानीय सेना तैयार करनी पड़ी। सेना की पुर्नव्यवस्था के बाद जाटों से फिर भयंकर संघर्ष छिड़ गया। सितम्बर में प्रमुख जाट सरदार फतहसिंह के मारे जाने पर जाट सेना मैदानों से हटकर जंगलों की तरफ़ चली गई। किन्तु जाटों के छापामार संघर्ष के कारण विट्ठल सदाशिव की सेना की स्थिति, विशेष रूप से आर्थिक दृष्टि से विषम होती गई। इसी समय दिल्ली से रघुनाथराव ने मराठों को सन्देश भेजा कि वह कुमुक भेज रहा है, अतः वे अपनास्थान न छोड़ें।[4]

दिल्ली से अतिरिक्त सेना के पहुँचने पर गोपाल गणेश के नेतृत्व में एक मराठा टुकड़ी जाटों को पराजित करके ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार करने में सफल रही। किन्तु गोहद का एक बड़ा भूभाग अभी भी जाटों के अधिकार में था, और उनके निरन्तर संघर्ष के कारण मराठा सेना इस क्षेत्र से हटने की स्थिति में नहीं

---

१. पेशवा दफ्तर, न्यू सिरीज़ जि० I, पत्र, १७५

२. पेशवा दफ्तर, जि० XXIX, पत्र ६०

३. वही

४. पेशवा दफ्तर, II, पत्र, ४५

थी ।[1] अन्तत. लम्बे अनिश्चित संघर्ष से परेशान राणा भीमसिंह ने रूपराम कटारी के माध्यम से रघुनाथराव से समझौते के सम्बन्ध में सम्पर्क किया । विट्ठल सदाशिव को जब पता लगा तो उसने रघुनाथराव को सतर्क करते हुए लिखा कि वह रूपराम की बातों पर विश्वास न करें ।[2] ऐसा प्रतीत होता है कि अन्त में सूरजमल, जिसका रघुनाथराव के साथ समझौता था, अपनी सद्भावना का उपयोग करके नवम्बर १७५५ ई० के अन्त में गोहद के झगड़े को शान्तिपूर्वक निपटाने में सफल हुआ ।

घसेरा की पुर्नविजय

कुम्हेर के घेरे के दौरान मराठा सेना ने घसेरा जाटों से छीन लिया था और उसे उसके पैतृक स्वामी बहादुरसिंह बड़गूजर के पुत्र फतहसिंह को सौंप दिया । सूरजमल के द्वारा घसेरा पर आक्रमण और अपने पिता की मृत्यु के समय दिल्ली में होने के कारण फतहसिंह बच गया था । बाद में वह जाटों के विरुद्ध इमाद का साथी बन गया था और कुम्हेर के घेरे में उसने मराठों के पक्ष में युद्ध किया था । ६ नवम्बर १७५५ ई० को सूरजमल के पुत्र जवाहरसिंह ने यह प्रदर्शित करते हुए कि वह जयपुर के राजा माधोसिंह से मिलने जा रहा है, मेवात से निकलकर अचानक घसेरा पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया । फतहसिंह अपने प्राण बचाकर कामगार खान बलूच की जमींदारी फ़र्रुख नगर भाग गया । जाट सेना ने दिल्ली से १२ कोस दूर सराय अलीवर्दीखान तक धावा बोला ।[3]

मराठों के विरुद्ध गठबन्धन के प्रयास

१७५५ ई० में राजपूताना मराठा अतिक्रमण से पीड़ित था । उनसे छुटकारा पाने के लिए मारवाड़ के राठौड़ राजा विजयसिंह ने, जो नागौर में मराठा सेनाओं से बुरी तरह से घिरा हुआ था, ठोस राजनैतिक कार्यवाही शुरू कर दी थी । उसने मुग़ल सम्राट, नजीब, सूरजमल और माधोसिंह को उत्तर भारत से मराठों को निकाल बाहर करने के लिए संयुक्त मोर्चा बनाने का आह्वान किया । सूरजमल ने, जो स्वयं साल भर पहले ऐसी ही स्थिति से गुज़र चुका था और मराठों को अपना शत्रु एवं दोआब में अपना मुख्य प्रतिद्वन्द्वी मानता था, इस प्रस्ताव का समुचित स्वागत तो किया, किन्तु वह सिन्धिया (जिसकी सहायता से उसने कुम्हेर के घेरे के संकट से मुक्ति पाई थी) के विरुद्ध युद्ध में प्रत्यक्ष भाग लेने से बचना चाहता था ।

---

१. वही, XXI, पत्र, ८७
२. वही, XXVII, पत्र, १०३
३. तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० ६१

ऐसी स्थिति में सूरजमल ने नई मराठा कुमुक को सिन्धिया की सहायतार्थ मारवाड़ की ओर जाने से रोकने का निश्चय किया।[1]

जयप्पा सिन्धिया की हत्या २५ जुलाई १७५५ ई० से हतप्रभ दत्ताजी व जनकोजी ने तुरन्त विभिन्न मराठा सरदारों को सहायतार्थ बुलाया। साहसी मराठा सरदार अन्ताजी माणकेश्वर, जो इस समय बुन्देलखण्ड में था, शीघ्र रवाना हो गया। उसने पूर्व में हुए समझौतों के अनुसार माधोसिंह दिसम्बर १७५३ ई० और सूरजमल अगस्त १७५४ ई० को भी ससैन्य शामिल होने के लिए लिखा। किन्तु सूरजमल और माधोसिंह, सभी के समान रूप से शत्रु मराठों को चम्बल के उस पार खदेड़ने और विजयसिंह की सहायता करने पर सहमत हो चुके थे। दोनों ने मन्त्रणा करके षडयन्त्र द्वारा इस मराठा सेना को नागौर की ओर जाने से रोकने का निश्चय किया।[2]

प्रत्यक्ष में तो माधोसिंह ने अपने बख़्शी के नेतृत्व में एक सेना और सूरजमल ने अपने पुत्र जवाहरसिंह के नेतृत्व में १०,००० सेना, नवम्बर १७५५ ई० के अन्त में अन्ताजी की सेना में सम्मिलित होने के लिए चम्बल पर भेज दी, किन्तु गुप्त रूप से दोनों ने यह समझौता कर रखा था कि किसी स्थान पर अवसर पाकर ये संयुक्त सेनाएँ मराठों पर टूट पड़ेगी और उन्हें राजपूताना में विजयसिंह के विरुद्ध नागौर जाने से रोक देगी। ऐसा प्रतीत होता है कि गोहद के जाट राज्य में पहुँचते ही अन्ताजी को इस षड्यन्त्र का पता लग गया। इस कारण उसने मारवाड़ जाने का विचार बदल दिया, क्योंकि वहाँ जाने के लिए मराठों को जाट व कछवाहों के प्रदेश में से होकर गुज़रना पड़ता, जो कि संभावित विपत्ति का कारण बन सकता

---

१. पेशवा द्वारा हिंगणे बन्धु को लिखे एक पत्र से इस समय मराठों की स्थिति और जाटों के साथ उनके सम्बन्धों पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। वह लिखता है, "बादशाह बाहर निकला है, वज़ीर भी बाहर निकला हुआ है। माधोसिंह विजयसिंह की मदद करेगा और जाट माधोसिंह के शामिल होगा। ये सारे लोग, हमारा विपरीत समय देखकर अपनी-अपनी जगह पर उठ रहे हैं तथा डींग हाँक रहे हैं।.........विजयसिंह के साथ मामलात ठीक ढंग से हों, इसलिए तुम वज़ीर से अच्छी तरह से बात करो। दामोदर पन्त की तुमसे व जाटों से अच्छी मित्रता है। रघुनाथराव ने जाटों पर बहुत उपकार किया था, तब मामला कठिन हो गया था (कुम्हेर के घेरे में) उस समय जयाजी सिन्धिया ने मध्यस्थता करके उसे सुलझा दिया था। ये सब बातें जाट मन में नहीं सोच रहा है। इस मामले में कार्य करने की पूरी जिम्मेदारी तुम्हारी ही है, अत: तुम जाट को ज़ोर देकर यह बात कहो, ताकि वह शर्मिन्दा हो। माधोसिंह के बहकाने से वह न बहके और उसके साथ शामिल न हो, ऐसा तुम कर सकते हो या नहीं कर सकते हो? अधिक सम्भावना यहीं है कि तुमने जाट को पक्ष में कर लिया होगा।" हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, १७१

२. पेशवा दफ्तर, II, पत्र, ५४ व ५६

था । क्रुद्ध होकर इस मराठा सेना ने गोहद के जाटों से संघर्ष मोल ले लिया, जिनसे हाल ही में समझौता हुआ था और जिनकी २००० सेना सहायतार्थ उनके साथ सम्मिलित थी । जनवरी १७५६ ई० में मराठे गोहद के कुछ भूभाग को जीतने में सफल हुए और अन्तर्वेद की ओर चले गए ।[1]

गोहद के मामले और सूरजमल द्वारा अन्ताजी को मारवाड़ पहुँचने से रोकने के षड्यन्त्र के कारण जाट-मराठा समझौता (अगस्त १७५४ ई०) व्यवहारतः जनवरी १७५६ ई० में समाप्त हो गया । किन्तु इस वर्ष सूरजमल को अपने दोनों शत्रुओं इमाद व मराठों से कोई विशेष परेशानी नहीं हुई, क्योंकि ये दोनों अधिकांश समय पंजाब में व्यस्त रहे । सूरजमल ने इस वर्ष का अधिकांश समय आन्तरिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने और अपने ज्येष्ठ पुत्र जवाहरसिंह के विद्रोह से निपटने में व्यतीत किया ।

अलवर क़िले पर अधिकार

मेवात में स्थित अलवर का क़िला बादशाही अधिकार में और अनिरुद्धसिंह के तालुका में था । जयपुर के राजा माधोसिंह ने १७५६ ई० के प्रारम्भ में अपने ५०० सिपाही भेजकर और वहाँ के क़िलेदार को ५०,००० रुपये घूस देकर इस शाही क़िले पर अधिकार कर लिया । जब सूरजमल को यह पता चला तो उसने दुर्ग पर आक्रमण करने का निश्चय किया, जो मेवात के अधिकांश भूभाग पर अपना क़ब्जा होने के कारण इस महत्वपूर्ण दुर्ग पर अपना अधिकार आवश्यक एवं उचित समझता था । उसने ५,००० सेना के साथ रूपराम कटारी को रवाना किया, जिसने वहाँ पहुँचकर मार्च के प्रारम्भ में अलवर के क़िले को घेर लिया । बाद में जवाहरसिंह और फिर स्वयं सूरजमल भी वहाँ पहुँच गया । २३ मार्च को इस जाट सेना ने बलपूर्वक इस क़िले पर अपना अधिकार कर लिया[2] और माधोसिंह ने सूरजमल से अपने मैत्री सम्बन्ध क़ायम रखने के उद्देश्य से मामले को वहीं खत्म कर देना बुद्धिमत्तापूर्ण समझा ।

जवाहरसिंह का विद्रोह

७ जून १७५६ ई० को सूरजमल के पिता बदनसिंह का डीग में देहान्त हो गया । इससे जाट राज्य के प्रबन्ध में कोई परिवर्तन नहीं आया, क्योंकि शासन संचालन का उत्तरदायित्व पहले से ही सूरजमल के हाथों में था । किन्तु जाट राज्य के सम्मुख जो नई विपत्ति सामने आई, वह जवाहरसिंह की अधीरता एवं उसके दुर्बुद्धि सलाहकारों की अहितकारी सलाह का परिणाम थी ।

---

१. पेशवा दफ्तर, II, पत्र, ५४ व ५६; जि०XXI, पत्र, ७६

२. पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र, १२८ एवं पेशवा दफ्तर, न्यू सिरीज़, I, पत्र, १८६ २६ मार्च १७५६ ई०

जवाहरसिंह बड़ा दिलेर एवं पराक्रमी युवक था, किन्तु वह हठी एवं उतावला था। उसमें आत्म संयम तथा दूरदर्शिता का अभाव था। वह अपने पिता के शान्त स्वभाव के विपरीत उग्र स्वभाव का था। सूरजमल शक्ति और सम्पत्ति से सम्पन्न होकर भी एक साधारण किसान का जीवन व्यतीत करता था, किन्तु जवाहरसिंह का चरित्र ठीक इसके विपरीत था। वह बहुत विलासी और अपव्ययी था। उसे उसके स्वार्थी चाटुकारों ने घेर लिया था और उन्होंने उसे अपने कठोर तथा मितव्ययी पिता के विरुद्ध उकसाया। ये लोग उससे उसकी आय से अधिक व्यय करवाने लगे। जब सूरजमल ने जवाहरसिंह के निकम्मे सलाहकारों को हटाना चाहा, तो उसने विद्रोह कर दिया और डीग के दुर्ग में जहाँ वह उस समय रहता था, युद्ध की तैयारी करने लगा। आवेश में आकर जवाहरसिंह ने अपने पिता की सेना पर हमला कर दिया। पान्हौरी के उत्तर दक्षिण में गोपालगढ़ में घोर युद्ध हुआ, जिसमें गोली, भाला व तलवार से जवाहर के तीन घाव लगे और वह गिरफ्तार कर लिया गया। घावों के कारण उसकी एक भुजा सदा के लिए निर्बल और एक टांग लंगड़ी हो गई। सूरजमल अपने स्नेह को रोक नहीं सका और उसे देखने गया। वह अपने साहसी एवं युद्धानुभवी पुत्र को खोना नही चाहता था। उसने उसे क्षमा कर दिया और इस प्रकार नवम्बर १७५६ ई० में यह गृह कलह समाप्त हो गया।[1]

मराठों के विरुद्ध शाही समर्थन पाने का विफल प्रयास

जब वजीर अहमद खान बंगश के द्वारा शुजाउद्दौला को इलाहाबाद से हटाने का प्रयास कर रहा था, तभी यह प्रबल अफवाह फैली कि सूरजमल और शुजाउद्दौला

---

१. वैण्डल, पृ० ७३; मीरात-ए-आफ़तावनुमा (सीतामऊ प्रतिलिपि), पृ० ३७७; मराठा सूत्रों से पता चलता है कि युद्ध के दौरान जवाहरसिंह ने मराठा सहायता पाने का भी प्रयास किया था, पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र, २२६; कहा जाता है कि पिता पुत्र में मुख्य अनबन पैसों को लेकर थी। एक बार सूरजमल द्वारा रुपया देने से इनकार किए जाने पर जवाहरसिंह ने खर्च के लिए अपने चाचा शोभाराम से सात लाख रुपये उधार लिए, बृजेन्द्र वंश भास्कर, पृ० ६८-७०; वैण्डल एक प्रचलित कहानी का उल्लेख करता है जिसके अनुसार बदनसिंह ने प्रेम के वश होकर अपने पोते जवाहर को एक कागज दिया था, जिसमें छिपे हुए कोष की सूचना थी। जब जवाहर का घाव लाइलाज होने लगा, तब सूरजमल ने यह कागज उसके हवाले करने के लिए बहुत अनुरोध किया। किन्तु दोनों की प्रकृति एक दूसरे के विरुद्ध थी। सूरजमल यह बात नहीं भूल सकता था कि वह एक किसान का पुत्र था और जवाहर भी यह नहीं भूल सकता था कि वह राजा का पुत्र था, देखें, सरकार, पतन, II, पृ० २७३-७४

ने मिलकर पहले अहमद खान को और बाद में वज़ीर को हटाने का निश्चय किया है। इससे वज़ीर आशंकित हुआ और उसकी इच्छानुसार राजा नागरमल ने सूरजमल को बुलाने के लिए अपने दूत सुजान ब्राह्मण को भेजा तथा नजीव ने अपने प्रभाव का उपयोग करके अहमद खान को शुजाउद्दौला के पक्ष में हाल ही में मिली इलाहावाद की सूबेदारी छोड़ने के लिए सहमत करा लिया।[1]

किन्तु सूरजमल के लिए शुजाउद्दौला की वज़ारत का समर्थन गौण प्रश्न था, जिसका वह अपने प्रमुख शत्रु इमाद के विरुद्ध राजनैतिक हथियार के रूप में काम लेना चाहता था। उसके लिए मुख्य प्रश्न यह था कि सैनिक दृष्टि से अधिक शक्ति शाली तथा आगरा व दोआव में अपने राज्य विस्तार में मुख्य प्रतिद्वन्द्वी मराठों का कैसे मुक़ावला किया जाय। कुम्हेर के घेरे में अपने विरुद्ध इमाद व मराठों के शत्रुता पूर्ण गठवन्धन को सूरजमल भूला नही था और जव उसने मराठों को पृथक कर इमाद के घुटने टिका (दिए २६ जुलाई १७५५ ई० की सन्धि) तो अव उसने मराठों से निपटने के लिए राजपूताना के राजाओं के साथ मिलकर उन्हें चम्वल के उस पार खदेड़ने की योजना पर सम्राट एवं वज़ीर को भी सहमत कराने का प्रयास किया।

११ नवम्वर १७५६ ई० को सूरजमल वज़ीर से वार्ता करने के लिए दिल्ली से १४ मील दक्षिण में तिलपत आकर रुका, जहाँ नागरमल आकर उससे मिला।[2] १३ नवम्वर को इस वार्तालाप में वजीर का दूत नजीव भी शामिल हो गया। वार्ता के दौरान सूरजमल ने नजीव को कहा, "हम जमींदार हमेशा ही सम्राटों की सहायता से खुशहाली में रहने के आदी रहे हैं। किन्तु अव मराठा सेनाएँ इन क्षेत्रों में आकर सभी की सम्पत्ति एवं सम्मान को लूट रही हैं तथा छोटे व वड़े सभी जमींदारों को परेशान कर रही हैं। जोधपुर, जयपुर वं अन्य स्थानों के कई राजा इस बात पर सहमत हो चुके है कि मराठों को नर्मदा के उत्तर में प्रवेश करने से रोका जाय और जिन क्षेत्रों पर उन्होंने अनधिकृत कब्जा कर लिया है, वहाँ से उन्हें निकाला जाय, ताकि वहाँ पर पुनः शाही अधिकार स्थापित हो।" सूरजमल ने सुझाव दिया, "मैं भी अपनी पुरानी जमीदारी को छोड़कर शेष सभी परगने शाही सत्ता को सौंप दूँगा, जिसके वदले वज़ीर मेरे साथ आगरा चलें और मराठों से मालवा एवं गुजरात छीनने में मेरी सहायता करें।"[3]

सूरजमल उत्तर में वढ़ते हुए मराठा हस्तक्षेप का प्रमुख कारण वज़ीर इमाद द्वारा उनके समर्थन को मानता था, इस कारण वह इमाद की मराठों पर निर्भरता को समाप्त करना चाहता था। किन्तु ऐसा प्रस्ताव इमाद कभी स्वीकार नही कर सकता था, जो हमेशा मराठों की छाती से वच्चे की तरह चिपका रहता था और उसे

---

१. तारीख आलमगीर सानी, पृ० ८३ अ
२. तारीख आलमगीर सानी, पृ० ८२ व
३. वही, पृ० ८३ व

आशंका थी कि वैसी स्थिति में उसे नजीब तथा सूरजमल पर अधिक निर्भर रहना पड़ेगा, जो पद एवं प्रतिष्ठा में उससे काफ़ी नीचे हैं। इमाद अपने विरोधियों के विरुद्ध अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए तथा अब्दाली के आक्रमण के ख़तरे का सामना करने के लिए मराठों को सैनिक सहायता अनिवार्य समझता था। इस कारण उसने सूरजमल के प्रस्ताव को ठुकरा दिया।[1]

इस प्रकार १७५६ ई० के अन्त में जब भारत पर अब्दाली के आक्रमण की काली छाया मंडरा रही थी, उस समय हिन्दुस्तान की विभिन्न राजनीतिक शक्तियाँ आपसी प्रतिद्वन्द्विता में लिप्त थीं। नजीब इस आक्रमण का मार्ग प्रशस्त कर रहा था और उसके विरोधी इमाद के समर्थक मराठे इस समय बहुत दूर दक्षिण में थे, जबकि राजधानी के निकट स्थित सूरजमल इस आशंका से अनजान इमाद व मराठा विरोध की अपनी राजनीतिक योजना पर ध्येयरत था।

१. तारीखे आलमगीर सानी, पृ० ८४

अध्याय—६

सूरजमल और अब्दाली
(१७५६–१७५८ ई०)

सूरजमल और अब्दाली
(१७५६–१७५८ ई०)

नवम्बर १७५६ ई० में कन्धार के बादशाह अहमदशाह दुर्रानी ने हिन्दुस्तान पर चौथी बार आक्रमण किया। मुग़ल सम्राट आलमगीर द्वितीय, जो वज़ीर इमाद-उल-मुल्क की महत्वांकाक्षाओं का बन्दी बन चुका था और अमीर उल उमरा नजीबुद्दौला ने अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति के लिए वज़ीर तथा उसके मराठा सहायकों के विरुद्ध अब्दाली को आमन्त्रित कर[1] हिन्दुस्तान के अफगानों द्वारा उसके समर्थन का आश्वासन दिया। मुग़लानी बेगम के विरुद्ध इमाद के अत्याचारों ने अब्दाली को वजीर को शीघ्र दण्डित करने का अवसर दिया। ३१ अक्तूबर को अब्दाली का दूत कलन्दर बेग ख़ान सम्राट के समक्ष उपस्थित हुआ। अब्दाली के आने की आशंका से वज़ीर घबड़ा गया, उसने नजीब ख़ान से सहायता की याचना की, किन्तु ८ नवम्बर को उसने वज़ीर का अपमान करते हुए उसे ठुकरा दिया।[2]

---

१. फ्रेंकलिन के इस आरोप में कोई सच्चाई प्रतीत नहीं होती है कि वज़ीर ग़ाज़ी-उद्दीन द्वितीय से छुटकारे के लिए जाट ने भी अब्दाली को आमन्त्रित किया था (शाह आलम, पृ० ५)। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूरजमल वज़ीर इमाद को अपना शत्रु समझता था और उसे हटाने के लिए शुजाउद्दौला के साथ मिलकर प्रयास भी कर रहा था, किन्तु इस प्रश्न पर उसकी नज़ीब से, जो राजधानी में अब्दाली के हितों का रक्षक था, सांठगांठ का कोई उल्लेख नहीं मिलता, यद्यपि इमाद व मराठे, नजीब एवं सूरजमल के समान शत्रु थे। यह सम्भव है कि इस समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए अब्दाली को आमन्त्रित करने के अपने गुप्त षड्यन्त्र में शामिल करने के लिए ११ नवम्बर (१७५६ ई०) की वार्ता में उसने सूरजमल का मानस टटोलने का प्रयास किया हो, किन्तु उसमें उसे सफलता नहीं मिली, जैसा कि बाद की घटनाओं और नजीब के एक वक्तव्य से स्पष्ट है। वह कहता है, "इस वक्त बादशाही उमराव शत्रु से मिलकर अपनी इज्जत बचाए हुए हैं, सिर्फ शुजाउद्दौला को वज़ीरी का दुःख है,..........एवं सूरजमल जाट तो अपना नहीं है..........अब एक ही उपाय है कि कन्धार का बादशाह अब्दाली एक शक्तिशाली व्यक्ति है"। भाऊ बखर, पृ० २६

२. तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० ८१ ब

यद्यपि यह आश्चर्य का विषय है कि ११ नवम्बर को नजीब एवं वज़ीर के दूत की सूरजमल से वार्ता के दौरान अब्दाली के ख़तरे के प्रश्न पर विचार नहीं हुआ, फिर भी जदुनाथ सरकार[1] और गण्डासिंह[2] की इस मान्यता के समर्थन में, कि इस वार्ता में सूरजमल ने यह सुझाव दिया था कि वज़ीर के नेतृत्व में संयुक्त सेना पहले मराठों को खदेड़े और बाद में अफ़गान आक्रान्ता का मुक़ाबला किया जाय, कोई मूल प्रमाण नहीं मिलता। इस वार्ता का एकमात्र समकालीन प्रामाणिक स्रोत तारीख़े आलमगीर सानी है,[3] जिससे स्पष्ट पता चलता है कि इमाद को वज़ारत से हटाने के शुजाउद्दौला एवं सूरजमल के षड्यन्त्र की अफवाह से चिन्तित वज़ीर ने सूरजमल से समझौता वार्ता करने के लिए नागरमल के द्वारा उसे आमन्त्रित किया था और जो वार्ता हुई उसमें सूरजमल का सुझाव मराठों को नर्मदा पार खदेड़ने में, वज़ीर के नेतृत्व में शाही सेना को शामिल करने तक ही सीमित था, जिसे वज़ीर ने अपनी मराठा मित्रता को दृष्टिगत रखते हुए ठुकरा दिया था। इस सम्बन्ध में आशीवार्दीलाल श्रीवास्तव की यह टिप्पणी अधिक युक्ति-संगत है कि, "यहाँ पर सूरजमल के व्यवहार के बारे में अभी भी कुछ अनिश्चितता बनी हुई है।"[4]

इस मान्यता को कि उस समय साम्राज्य पर अब्दाली के आक्रमण का ख़तरा मंडरा रहा था और इस कारण वार्ता में इस विषय पर अवश्य विचार हुआ होगा, स्पष्ट प्रामाणिक उल्लेख के अभाव में स्वीकार करना कठिन है।[5] इसके विपरीत यह सम्भावना अधिक प्रबल है कि धूर्त नजीब के बहकावे में आकर वज़ीर ने इस समय तक अब्दाली के आक्रमण की आशंका को गम्भीरता से महसूस नहीं किया होगा।

दिल्ली में भगदड़

९ दिसम्बर को जब राजधानी में ख़बर पहुँची कि अब्दाली को सिन्धु पार किए १३ दिन हो गए हैं, तो उसके इरादों के विषय में किसी को भ्रम नहीं रहा। १९ तारीख़ को जब यह समाचार पहुँचा कि अब्दाली पंजाब में बटाला व अदीनानगर को लूट रहा है, तब वज़ीर ने नागरमल की सलाह पर उसी दिन मराठों, सूरजमल और शुजा-उद्दौला को बुलाने के लिए पत्र भेजे।[6] अगले दिन दिल्ली में आतंक छा गया। अब्दाली

---

१. सरकार, पतन, II, पृ० ५१
२. गण्डासिंह, अहमदशाह दुर्रानी, पृ० १७०-७१
३. तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० ८२ ब-८४ अ
४. शुजाउद्दौला, I, पृ० २४
५. ११ नवम्बर को यह वार्ता हुई थी, जबकि दिल्ली में अब्दाली के आक्रमण की पहली ख़बर ९ दिसम्बर को पहुँची थी।
६. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ७४-७५

के आक्रमण से भयभीत राजधानी के अधिकांश उच्च घराने के लोग सूरजमल के प्रदेश मथुरा व आगरा की ओर भागने लगे। हसन ख़ान के नेतृत्व में अब्दाली की अग्रिम सैनिक टुकड़ी के सरहिन्द पर अधिकार की खबर से दिल्ली में भगदड़ मच गई और ३० दिसम्बर को राजा लक्ष्मीनारायण, खुशालचन्द, और नागरमल भी मथुरा भाग गए।[1] इसी दिन अन्ताजी माणकेश्वर के नेतृत्व में तीन हज़ार मराठा सवार वज़ीर के बुलाने पर राजधानी पहुँचकर यमुना के पूर्वी तट पर डेरा डाल चुके थे। वज़ीर के आदेश से इस मराठा सेना ने भागने वालों के रास्ते रोककर उन्हें पुनः दिल्ली में धकेला और इस प्रयास में अनेक लोगों को लूटा। इसके विपरीत जाटों का व्यवहार अधिक सद्-भावपूर्ण रहा। यद्यपि जाटों ने भी बदरपुर से मथुरा तक प्रत्येक चौकी पर लोगों से चुंगी के रूप में कुछ रुपया वसूल किया, किन्तु भारी भीड़ के बावजूद सैकड़ों लोगों को मथुरा व निकटवर्ती इलाक़ों में आश्रय भी प्रदान किया।[2]

१६ जनवरी १७५७ ई० को अब्दाली के डेरे दिल्ली के निकट नरेला में लग गए और १७ तारीख़ की रात्रि को नजीब ख़ान वज़ीराबाद से नदी पार करके लूनी में जहान ख़ान के डेरे में पहुँच गया। अब लोग स्पष्ट रूप से जान गए थे कि वह विदेशी आक्रान्ता से मिला हुआ है। १९ तारीख को सूर्योदय के पूर्व ही इमाद भी चुपके से अब्दाली के वज़ीर शाह वली खान के डेरे में पहुँच गया, जहाँ अब्दाली के सम्मुख उपस्थित होने पर उसे घृणा के साथ लताड़ा गया। अहमदशाह ने इमाद को कहा कि उसके विरोधी इन्तिज़ाम ने वज़ारत के पद के बदले में दो करोड़ रुपया देने को कहा है, परन्तु यदि वह (इमाद) उस पद को चाहता है, तो केवल एक करोड़ रुपये में भी वह देने को सहमत है। इमाद ने उत्तर दिया, "मैं दिल्ली से एक करोड़ कंकड़ भी इकट्ठे नहीं कर सकता, फिर रुपये की तो बात ही क्या ?" इस पर अब्दाली ने उसी समय उसे वज़ारत से हटाकर, एक फ़रमान जारी करके इन्तिज़ाम को वज़ीर नियुक्त कर दिया। इमाद को अपने साथ बन्दी बनाए रखा, ताकि वह अपने मराठा मित्रों को न बुला सके।[3]

अन्ताजी माणकेश्वर की पराजय

१९ जनवरी को प्रातःकाल लोगों को ज्ञात हुआ कि नजीब आक्रमणकारियों से मिल गया है, वज़ीर भाग गया है और मराठे पीछे हट गये हैं। विदेशी आक्रान्ताओं से बचाने के लिए साम्राज्य की राजधानी में एक भी रक्षक नहीं रहा था। २१ जनवरी को जहान खान ने सरवर खान के नेतृत्व में एक सैनिक टुकड़ी

---

१. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ७५; तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० ८५ ब; पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, ६६

२. तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० ८७ अ-८८ अ

३. सरकार, पतन, II, पृ० ५६-५७; गण्डासिंह, दुर्रानी, पृ० १५८-६०

फ़रीदाबाद का रास्ता अवरुद्ध करने भेजी, किन्तु मराठों व जाटों ने उसे पराजित कर दिया।[1] एक फरवरी को दुर्रानी के सेनापति जहान ख़ान के नेतृत्व में २०,००० सशक्त सेना ने फ़रीदाबाद के निकट अन्ताजी की मराठा सेना और सहयोगी जाट सेना पर भयंकर आक्रमण किया। लगभग एक हज़ार व्यक्ति खोने के बाद अन्ताजी किसी तरह से रास्ता निकालकर सूरजमल के प्रदेश मथुरा की ओर भाग गया। अफगान सैनिकों ने फ़रीदाबाद के क़स्बे को आग लगा दी और लगभग ७००-८०० जाट व मराठा सैनिकों के सिरो के साथ लौटे, जहाँ दुर्रानी ने उन्हें प्रति सिर आठ रुपया इनाम दिया।[2] अन्ताजी माणकेश्वर के साहसिक प्रतिरोध की इस निर्णायक पराजय के बाद, जब तक शाह भारत में रहा, मराठों ने उसके साथ शक्ति परीक्षण का दु:साहस नहीं किया।

सूरजमल की नीति

अब्दाली के इस आकमण के दौरान हिन्दुस्तान की शक्तियों में एकमात्र सूरजमल ही ऐसा व्यक्ति था, जिसने मित्रविहीन होते हुए भी राजनीतिक सूझ-बूझ, साहस एवं नीति कुशलता का प्रमाण दिया। शक्तिशाली विदेशी आक्रान्ता के विरुद्ध सूरजमल की नीति और व्यवहार को समझने के लिए हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि इस समय वह साम्राज्य के वज़ीर और शक्तिशाली मराठों की शत्रुता से जूझ रहा था[3] और राजपूताना के शासक विशेष रूप से माधोसिंह, जो पिछले

---

१. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ७८; एठले दफ्तर (सीतामऊ संग्रह), जि० ।, पत्र, ३० २१ जनवरी १७५७ ई० के अन्ताजी माणकेश्वर के इस पत्र से पता चलता है कि इस मराठा सेना की संख्या १२,००० थी।

२. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ८१-८२; पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, ९९; तज़किरा-ए-इमाद,उल-मुल्क (गण्डासिंह द्वारा उद्धृत), पृ० २०१-२०५

३. इस सम्बन्ध में रघुनाथराव को भेजी गई अन्ताजी की निम्न सूचना बहुत महत्वपूर्ण है। वह लिखता है, "गाजुद्दीन खान तुम्हारा पगड़ी बदल भाई है, इसलिए उसे पकड़कर अटक के पार ले जाते है, तो उसका बदला लिया जायगा और अब्दाली डूब जायगा।.........वर्तमान में सूरजमल से झड़प न करें। यह हो जाने (अब्दाली का मामला) के बाद, दिल्ली और दिल्ली का तोपखाना अपने हाथ में आ जाने के बाद सूरजमल से बात करेंगे। इस समय इस झगड़े को ज्यादा बढ़ाना नहीं चाहिए।.........खानखाना (इन्तिज़ामद्दौला), जाट व शुजाउद्दौला ये एक होकर मराठों के प्रति दबाव रखते हैं। सूरजमल को आपका और गाजुद्दीन खान का बहुत भय है। गाजुद्दीन खान बादशाह का तोपखाना लेकर स्वामी (आपके) के साथ शामिल होकर जाटों को नष्ट करेगा।" पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, १०० (फरवरी १७५७ ई०)।

कुछ समय से मराठों के विरुद्ध गठबन्धन के लिए उस पर दबाव डाल रहे थे, इसी उद्देश्य के लिए अब्दाली का स्वागत करने की तैयारियाँ कर रहे थे। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि चतुर नजीब ने अपने विदेशी स्वामी को साम्राज्य की कमज़ोरियों और हिन्दुस्तानी शक्तियों की जानकारी देते हुए यह अवश्य बता दिया होगा कि अफगान आक्रान्ता का प्रतिरोध करने की सामर्थ्य केवल मराठों व जाटों में हैं, और ये दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं।

१७ जनवरी को शत्रु खेमे में खुला पलायन करने के बाद हिन्दुस्तान पर अब्दाली के अभियान का मार्गदर्शक सही अर्थों में नजीब ही था।

अक्तूबर १७५६ ई० में जब नजीब अब्दाली को हिन्दुस्तान पर आक्रमण का निमन्त्रण दे रहा था, तब इस भावी खतरे से अनजान सूरजमल अपने विरोधी मराठा समर्थक साम्राज्य के वज़ीर को हटाने का प्रयास कर रहा था और ११ नवम्बर की वार्ता में नजीब ने सूरजमल की इस अन्दरुनी इच्छा को भलीभांति भांप लिया था कि वह वज़ीर इमाद को उसके पद से हटाना चाहता है और मराठों को नर्मदा पार खदेड़ना चाहता है। अब्दाली के लिए ये सूचनाऐं निश्चित रूप से उत्साहवर्धक रही होंगी और जब जनवरी १७५७ ई० में वह राजधानी के निकट पहुँचा, तब मुख्य मराठा सेना रघुनाथराव के नेतृत्व में संघर्ष को टालने के लिए उत्तर की ओर रेंग रही थी। कन्धार से अब्दाली और दक्षिण से मराठा सेनाऐं एक साथ रवाना हुई थीं और दिल्ली की समान दूरी को देखते हुए दोनों सेनाओं को वहाँ लगभग साथ-साथ पहुँचना चाहिए था। जब दूरस्थ प्रान्त जोधपुर, जयपुर आदि के शासकों ने भयभीत होकर समर्पण कर दिया, तो विशाल अफगान सेना (साठ-सत्तर हज़ार) के मुकाबले १५,००० जाट सेना के साथ सूरजमल राजधानी के ठीक पड़ोस में होने के नाते क्या रुख अपना सकता था ?[१]

यह सही है कि शाह के दिल्ली के निकट पहुँचने पर सूरजमल ने एक अधीनता सूचक पत्र भेजा था, जैसा कि सामिन हमें बतलाता है [२] और खानख़ाना इन्तिज़ामुद्दौला व नजीबुद्दौला द्वारा शाह को प्रस्तुत उस याचिका का अनुमोदन सूरजमल ने भी किया था, जिसमें यह कहा गया था कि शाह अगर मल्हार के पुत्र

---

१. इस स्थिति पर प्रकाश डालते हुए राजा केशवराज पेशवा को लिखता है, "आमेर व जोधपुर के राजा तो अब्दाली के नौकर कहलाते हैं। उन्होंने ही उसे यह कहकर बुलाया कि हमें मराठों से छुटकारा दिलाओ, हम तुम्हारी नौकरी करते रहेंगे। वे अब्दाली से झगड़ नहीं सकते। एक केवल जाट है। परन्तु वह अकेला क्या कर सकता है ? पैसा देकर समझौता करके वह अपने मुल्क की रक्षा कर लेगा।" पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, १०१

२. गण्डासिंह, दुर्रानी, पृ० १७२

और रघुनाथराव के पगड़ीवदल भाई वज़ीर इमाद को बन्दी बनाकर अटक पार भेज दे और इन्तिज़ाम को वज़ीर पद सौंप दे, तो वे सब मिलकर शाह को दो करोड़ रुपया देंगे।[1] परिस्थितियों को देखते हुए और शक्ति सन्तुलन के विशाल अन्तर को ध्यान में रखते हुए सूरजमल आवश्यकता पड़ने पर धन देकर शाह से छुटकारा पाना चाहता था, किन्तु वह अन्य लोगों की भाँति कायरतापूर्ण समर्पण के पक्ष में नहीं था। इसीलिए उसने अपने साहसी पुत्र जवाहरसिंह को वल्लभगढ़ में तैनात करके स्वयं ने मथुरा के निकट मुड़सान में डेरे लगाकर शाह की गतिविधियों पर नजर रखने का निश्चय किया।

२८ जनवरी को शाह ने दिल्ली में प्रवेश किया और शीघ्र ही रुपयों के लालच में नगरवासियों को लूटना शुरू कर दिया।[2] जब नजीव ने उसे वतलाया कि न केवल सूरजमल जाट के पास अपार धन है, वल्कि दिल्ली के अधिकांश सम्पन्न व्यक्तियों ने भी अपने सारे माल-असवाव के साथ उसके राज्य में शरण ले रखी है, तो ३१ जनवरी को अब्दाली ने अपने दूत सूरजमल के पास इस सन्देश के साथ भेजे कि वह शाह के समक्ष उपस्थित होकर नज़राना पेश करें और उसके झण्डे के नीचे सेवा करें। उसे यह भी कहा गया कि वह नागरमल सहित दिल्ली के सम्पन्न शरणार्थियों को तुरन्त लौटा दें। इस पर सूरजमल ने कूटनीतिक भाषा में निम्न उत्तर भेजते हुए शरणार्थियों को लौटाने से इनकार कर दिया, "जब अग्रणी जमींदार शाही दरवार में उपस्थित हो चुके हैं, यह गुलाम भी शाही देहलीज का चुम्वन करेगा। मैं राजा नागरमल और दूसरे लोगों को कैसे भेज सकता हूँ जिन्होंने मेरे पास शरण पाई है?"[3] सूरजमल ने सन्धि की शर्तों पर वातचीत के लिए

---

१. इन दो करोड़ रुपयों के भार के वहन के वारे में यह तय किया गया था—५० लाख इन्तिज़ाम, ५० लाख सूरजमल, ५० लाख अमीर-उमरा और ५० लाख नगर निवासियों से लेकर दिया जायगा, देखें, पेशवा दफ्तर, जि० XXVII, पत्र, १६६ और जि० XXI, पत्र, ९६; अब्दुल रशीद, नजीवुद्दौला, पृ० ४७।

२. दिल्ली में प्रवेश के वाद रुपयों की वसूली के लिए जब अब्दाली ने इमाद व इन्तिज़ाम के घरों की तलाशी लेनी चाही, तो उन्होंने ऐसा न करने का निवेदन करते हुए कहा कि आप जाट के ऊपर प्रयाण करें, वहाँ से हम आपको पांच करोड़ रुपया दिलवाएंगे, देखें, पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, १०५

३. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ८१; गण्डासिंह, दुर्रानी, पृ० १७२: फ्रैंकलिन लिखता है कि दिल्ली में प्रवेश करते ही अब्दाली ने सभी राज्यों को पत्र भेजे कि वे आकर शाह को नज़राना भेंट करें। जाटों के अलावा सभी ने आज्ञापालन किया, अतः उनके (जाटों) विरुद्ध उसने हथियार उठाने का निश्चय किया, शाह आलम, पृ० ६

आक्रान्ता के डेरे पर अपना दूत भेज दिया, साथ ही अफगान मन्त्री को दो लाख रुपये घूस में दिए, ताकि टालमटोल द्वारा कुछ समय निकाला जाय[1]

अब्दाली के विरुद्ध जाट-मराठा दृष्टिकोण

यद्यपि २१ जनवरी एवं १ फरवरी १७५७ ई० को अफगान सेना के विरुद्ध मराठा सेना के संघर्ष में जाट सैनिक टुकड़ी भी सम्मिलित थी, किन्तु वह केवल अपने प्रदेश फ़रीदाबाद की रक्षार्थ थी, जाट और मराठों में अभी तक कोई स्पष्ट समझौता नहीं था। २१ जनवरी की मुठभेड़ के पश्चात् भी अन्ताजी विशाल अफगान सेना के मुकाबले अपनी छोटी सी मराठा सेना के साथ आक्रान्ता का साहसिक प्रतिरोध करने के निश्चय के साथ दिल्ली के निकट डटा रहा। साथ ही वह इस तथ्य को भलीभांति समझ गया था कि अब केवल जाटों के सहयोग से ही आक्रान्ता का प्रतिरोध और मराठा हितों की रक्षा सम्भव है। इसी उद्देश्य से अन्ताजी ने २१ जनवरी को अपने सूबेदार त्रिम्बयंक मुकुन्द को पत्र देकर सूरजमल के पास भेजा।[2]

१ फरवरी को फ़रीदाबाद में जहान खान से पराजित होने के बाद ४ तारीख़ को अन्ताजी माणकेश्वर सूरजमल के पास मथुरा गया और उस पर इस बात के लिए बहुत दबाव डाला कि वे दोनों वापस लौटकर अफगान सेना पर संयुक्त आक्रमण करें। अनुभवी जाट राजा ऐसे अव्यवहारिक एवं विनाशकारी सुझाव से सहमत नहीं हो सकता था। उसने अन्ताजी को दो टूक उत्तर दिया, "ईरान का बादशाह ५०,००० फ़ौज लेकर हिन्दुस्तान आया और उसने हिन्दुस्तान की बादशाही जीत ली, तब तक एक ने भी उस पर गोली नहीं दागी और न एक भी मरा तो फिर मेरी क्या बात है, मैं उधर नहीं आ सकता।"[3] सूरजमल जो यह जानता था कि अब्दाली का मुख्य लक्ष्य मराठे हैं और जब तक मुख्य मराठा सेना उत्तर में पहुँचकर अब्दाली से युद्ध करने का स्पष्ट निर्णय नहीं कर लेती, उसके पूर्व ही अन्ताजी की तुच्छ सेना के साथ[4] शक्तिशाली अब्दाली को अपना शत्रु बना लेना राजनैतिक दृष्टि से अहितकर और जाटों के लिए विनाश का कारण बन सकता है। इसके अलावा मराठों, जिनके साथ

---

१. सरकार; पतन, II, पृ० ७१
२. २१ जनवरी १७५७ ई० को लिखा गया अन्ताजी का पत्र, एठले दफ्तर, I, पत्र, ३०
३. पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, ९९
४. शेजवलकर की यह मान्यता तथ्यों के विपरीत है कि इस समय अब्दाली से अपने राज्य की रक्षा करने और दुर्गों को बचाने के लिए अन्ताजी के संरक्षण का सूरजमल ने पूरा-पूरा लाभ उठाया था। देखें, पानीपत : १७६१ (हिन्दी अनुवाद), पृ० ९१

उसकी शत्रुता चल रही थी, के व्यवहार के प्रति पूर्ण आश्वस्त हुए बिना, तत्काल उनका पक्ष ग्रहण करके वह कोई खतरा नहीं उठाना चाहता था। किन्तु अन्ताजी ने अपनी ओर से जाट राजा को पूर्ण आश्वस्त करने का भरसक प्रयास किया। मराठों की विपरीत राजनीतिक परिस्थिति में अब्दाली के आक्रमण की गम्भीरता को सही अर्थों में समझते हुए इस मराठा सरदार ने जाट मैत्री की आवश्यकता एवं उपयोगिता पर ज़ोर देते हुए रघुनाथराव को लिखा, "सूरजमल ने ढाई महीने से मुइसान में मोर्चे लगा रखे है। हमने उसके घर में अपने आदमी रखे हुए हैं, और सूबेदार को उसके पास छोड़ रखा है, ताकि वह उसके पास मित्रता में बना रहे। उसे (सूरजमल) कह दिया है कि उसकी सरकार के सारे मामले तय कर देंगे। अब्दाली है, तब तक सूरजमल की हिम्मत नहीं कि वह दिल्ली की तरफ़ जाए, उसके पास पैसा भी बहुत है, इस कारण हिन्दुओं का परम द्वेषी (अब्दाली) उसे कभी छोड़ेगा नहीं।.......... शुजाउद्दौला को मीरबख़्शी की खिलअत भेजी, उसको यहाँ आने में एक महीना लगेगा। दोनों एक होने पर अपने लिए भारी हो जाएगे। जाट व शुजाउद्दौला अपनी-अपनी जगह फँसे हुए हैं। इसलिए आपके आने के पहले ही यदि अब्दाली कूच करके निकल गया, तब भी पीछा करने के लिए आप दिल्ली जरूर आइए। बीच में जाटों में न फंसे।"[1]

अन्ताजी के प्रयासों का फल सामने आया और सूरजमल ने अब्दाली के खतरे पर विचार विमर्श करते हुए इस मराठा सरदार को साफ़-साफ़ शब्दों में बताया, अब्दाली ने मुझको पत्र लिखा कि भेंट व नज़राना पेश करने आओ और अधिकृत प्रदेश को छोड़कर चाकरी करने आओ। किन्तु मैं न तो शाह के सामने उपस्थित होना चाहता हूँ और न ही उससे लड़ना चाहता हूँ। वकील भेजकर पैसों के बारे में बातचीत करने में मैंने १५ दिन निकाल दिए हैं। अगर आप दक्षिण से मराठा सेना के शीघ्र पहुँचने का भरोसा दिलाते हैं, तो मैं दरबार में लाख दो लाख रुपया खर्च करके कुछ और समय निकाल सकता हूँ। तब तक अगर आपकी फ़ौज आ जाती है, तो मैं उसका साथ देने को तैयार हूँ और अब्दाली को एक कौड़ी पैसा भी नहीं देने वाला हूँ। यदि १५ दिन में आपकी फौज नहीं आई तो मैं उसे पैसा देकर समझौता करके उसकी चाकरी स्वीकार कर लूँगा[2]

सूरजमल द्वारा व्यक्त किए इस स्पष्ट दृष्टिकोण और व्यवहारिक सुझाव पर मराठों ने ईमानदारी से अमल नहीं किया। जहाँ तक अन्ताजी माणकेश्वर का प्रश्न है, उसने इस अवधि में लिखे गए पत्रों द्वारा पेशवा और रघुनाथराव को सही स्थिति से पूर्णतया अवगत करा दिया था और मराठा सेनाओं के शीघ्र पहुँचने के बारे में निरन्तर लिखता रहा। ऐसे ही एक पत्र में अन्ताजी पेशवा को सूचित करता है,

---

१. पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, १००
२. १० फरवरी १७५७ ई० को पेशवा को लिखा गया अन्ताजी का पत्र, पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, ९९

"सूरजमल अपना मुल्क छोड़कर किसी सुदृढ़ स्थान पर अपना मोर्चा लगाकर बैठेगा अथवा नजीब ख़ान के हाथ से पैसा देता है, यह देखना है। यदि श्रीमंत राजश्री दादा साहब वगैरह सरदार यहाँ जल्दी नहीं पहुँचते हैं और दो महीनों में जाट राजा का मामला तय हो गया और सब मिल गए तो बहुत बड़ा संकट हो जायगा।......... शमशेर बहादुर, नारोपन्त, गोविन्दपन्त की फ़ौज दस हज़ार और हमारी दस हज़ार इस प्रकार बीस हज़ार फ़ौज एकत्र होने पर भी जाट आज शक्तिशाली है। जाट को हमने बुलवाया, तो उसके प्रदेश की हम रक्षा करेंगे। परन्तु यह सोचकर यदि हम पहले निकलते हैं, तो जाट का हमारा साथ रहना मुश्किल है। अन्तर्वेदी में यदि वह चला गया तो भी ठीक होगा। यदि सब तमाशा देखने लग गए तो सारा तमाशा ही हो जायगा, यह किसी के समझ में नहीं आ रहा है। यदि सूरजमल पैसा देकर उसका नौकर नहीं होता है, तो हम उससे मिलकर एक महीने तक रोकने की कोशिश करेंगे, जब तक कि श्रीमंत सरदार आ जाय। यदि जाट ने धीर धारण न किया और वह जाकर मिल गया तो फिर हमारी ताकत कब तक चलेगी ? हम कितनी देर तक रोके रहेंगे ?[1]

दूसरी ओर रघुनाथराव इस सारी स्थिति से अवगत होने के बावजूद अपने पत्रों में अब्दाली के विरुद्ध प्रतिरोध की किसी स्पष्ट योजना के अभाव में केवल जाट को रोके रखने की बात लिखता रहा और स्वयं दिल्ली पहुंचने में विलम्ब करता रहा।[2] जाट राजा द्वारा बाद में किए गए अब्दाली के सफल प्रतिरोध से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि रघुनाथराव शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ता और ईमानदारी के साथ जाटों के सहयोग से विदेशी आक्रान्ता का मुक़ाबला करता, तो देश को भयंकर विनाश एवं दुर्दशा से बचाया जा सकता था। किन्तु रघुनाथराव और होल्कर ने जानबूझकर आगे बढ़ने में देरी की, क्योंकि अब्दाली से युद्ध करने की उनकी इच्छा नहीं थीं। सम्भवतः उन्होंने यह सोच लिया था कि जब अब्दाली जाट वगैरह को कुचलकर चला जायगा, तब दिल्ली पहुँचकर वे आसानी से अपने

---

१. पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, १०५

२. २८ मार्च (१७५७ ई०) को, जिस दिन जाट प्रदेश से शाह की सेनाओं की वापसी हुई, रघुनाथराव ने बापू हिंगणे को, जो उस समय भरतपुर दुर्ग में शरण लिए हुए था, लिखा "शाह के विरुद्ध सूरजमल बलपूर्वक डटा हुआ है, इस बात से हमें प्रसन्नता है। हमारा जाट और अन्य राजे रजवाड़ों को मिलाकर पठानों से मुक़ाबला करने का विचार हैं। इतनी फ़ौज जमा होने में एक महीना लग जायगा, उस समय तक तुम जाट को उत्साहित करके उससे अच्छा मेलजोल रखना..................इस वक्त हम जयपुर के ताल्लुके में आ गए हैं।" हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, १९५

राजनैतिक विरोधियों को परास्त करके साम्राज्य की व्यवस्था अपने हाथ में ले सकेंगे।

अब्दाली का जाट विरोधी अभियान

फरवरी के तीसरे सप्ताह में जब अब्दाली जाटों पर आक्रमण का निश्चय कर चुका था, चारे की तलाश में गए उसके एक अग्रिम सैन्य दल पर जवाहरसिंह ने पाँच-छः हज़ार सवारों के साथ वल्लभगढ़ से निकलकर आक्रमण किया और १५० घोड़े छीनकर ले गया। यह सुनकर क्रुद्ध शाह ने उसी रात्रि को अब्दुल समद ख़ान को तुरन्त घटना स्थल की ओर भेजा। उसे निर्देश दिया गया कि वह एक या दो कोस दूर घात लगाकर रहे और वहाँ से एक सौ सवार शत्रु के विरुद्ध सम्पर्क साधने के लिए भेजें, तब पीछे हटकर युद्ध करते हुए उन्हें उस छिपे स्थान तक ले आए। इस प्रकार से जवाहरसिंह लगभग पूरी तरह से जाल में फँस गया, उसके अनेक व्यक्ति मारे गए और छीना हुआ कुछ हिस्सा बरामद हो गया। किन्तु जाट राजकुमार चतुराई से इस उलझन से बाहर निकलकर वल्लभगढ़ के दुर्ग में जा पहुँचा। अफगान सैनिकों ने अनेक गाँवों को नष्ट किया और ५०० सिरों के साथ दिल्ली लौटे।[1]

वल्लभगढ़ पर अधिकार

२२ फरवरी को अहमदशाह ने जाटों पर आक्रमण के लिए दिल्ली से कूच किया। दो दिन उसने ख़िज्राबाद पड़ाव किया, जहाँ इमाद उसके साथ हुआ। बदरपुर होते हुए २६ फरवरी को शाह वल्लभगढ़ के निकट पहुँच गया।[2] ऐसा लगता है कि पहले शाह का विचार सीधे मथुरा की तरफ़ निकल जाने का था, किन्तु २६ तारीख़ की रात्रि को जब जाटों ने शाह की सेना पर हमला करके अनेक लोगों को मार डाला और घायल कर दिया, तो अब्दाली ने वल्लभगढ़ को जीतने का निश्चय किया।[3] इसी रात्रि को अब्दाली ने अपने सेनापति जहान ख़ान और नजीब को बीस हज़ार सेना के साथ, इस निर्देश के साथ आगे रवाना किया कि "इन दुष्ट जाटों के प्रदेश को रौंद डालो। उनके प्रत्येक क़स्बे और जिले को लूटो और लोगों को मौत के घाट उतार डालो। हिन्दुओं के पवित्र नगर मथुरा को तलवार से बिल्कुल साफ़ कर दो। आगरा तक एक भी स्थान मत छोड़ो।" शाह ने अपनी सेना को एक सामान्य आदेश दिया कि वे जहाँ भी पहुँचे, खूब लूटें और मारें। लूट की सम्पत्ति उनकी मानी जायगी और काफ़िरों के सिर काटकर लाने वाले को प्रति सिर पाँच रुपये दिए जाएँगे।[4]

---

१. कानूनगो, जाट, पृ० ९८-९९; गण्डासिंह, दुर्रानी, पृ० १७३
२. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ८७; तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० १०३ अ
३. वही, पृ० ८८; वही, पृ० १०३ ब
४. गुलाम हसन सामिन, हालात-ए-अहमदशाह अब्दाली, इरविन कृत अँग्रेजी अनुवाद, इण्डियन एण्टीक्वेरी १९०७ ई०, पृ० ५८-५९

जवाहरसिंह, जो २८ फरवरी की रात्रि को क़िले में पुनः दाखिल हो गया था, के नेतृत्व में जाटों ने बहुत बहादुरी से क़िले की रक्षा की। जाटों के शौर्य और साहस को देखकर शाह भी ठिठका। उसने चार हज़ार मुग़लों को याहया ख़ान के नेतृत्व में शाही तोपखाना लाने के लिए दिल्ली भेजा और स्वयं ने बल्लभगढ़ के घेरे का निर्देशन किया। अफगान आक्रान्ता के पास पांच उन्नत नालमुख वाली तोपें थी, जिनसे एक विशेष क़िस्म का गोला बरसाया जाता था। लोहे के दो अर्द्ध गोले परस्पर ढले हुए होते थे, जो भूमि पर गिरते ही खुल जाते थे। इन पांच तोपों के कोण निरन्तर बदलकर दुर्ग पर ऐसी विनाशक अग्निवर्षा की गई कि उन्होंने दुर्ग प्राचीर से चलाई जाने वाली बन्दूकों और जम्बूरों पर पूर्ण नियन्त्रण पा लिया। तीन दिन के भीषण युद्ध के बाद जाटों का यह दुर्ग, जो उनके अपने सुदृढ़ दुर्गों में सबसे कमज़ोर था, अरक्षित हो गया। फलस्वरूप ३ मार्च की रात्रि को अंधेरे का लाभ उठाकर जवाहरसिंह क़िज़िलबाश की वेशभूषा पहनकर खाई में उतर पड़ा और शाह के सैन्य दल के बीच से अपना रास्ता पारकर अपने कुछ साथियों के साथ यमुना की ओर बच निकला। ४ तारीख को प्रातःकाल अफगान सेना ने दुर्ग पर हमला करके अधिकार कर लिया और क़िले में सैकड़ों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। दुर्ग में उनको १२,००० रुपया नकद, सोने चांदी के बर्तन, १४ घोड़े, ११ ऊंट और भारी मात्रा में अनाज तथा कपड़ों का भण्डार मिला।[1]

चौमुहा का युद्ध

अहमदशाह अब्दाली के दिल्ली से रवाना होने की सूचना मिलने पर जवाहरसिंह को मथुरा में तैनात कर सूरजमल डीग, कुम्हेर और भरतपुर के क़िलों की मोर्चाबन्दी में लग गया था। २६ फरवरी की रात्रि को नजीब के निर्देशन में और जहान ख़ान के नेतृत्व में २०,००० अफगान सेना मथुरा के लिए रवाना हो चुकी थीं। सम्भवतः इसकी सूचना जवाहरसिंह को मिल गई थी, अतः वह ५,००० जाट सेना के साथ आक्रमणकारियों का रास्ता रोकने के लिए मथुरा के ८ मील उत्तर में चौमुहा गांव के बाहर पहुँच गया। मराठों ने हिन्दुओं की पवित्र नगरी की रक्षार्थ रक्त की एक बूंद भी नहीं बहाई। अन्ताजी माणकेश्वर, शमशेर बहादुर,

---

१. सामिन, पृ० ५८-५९; तारीखे आलमगीर सानी, पृ० १०३ ब; तजकिरा ए इमाद, पृ० २४०; सियार, III, पृ० ३५२; गण्डासिंह, दुर्रानी, पृ० १७६; ४ मार्च को शाही तोपखाने की भारी तोपें बड़ी कठिनाई से घसीटकर जब दिल्ली दरवाज़े तक पहुँचाई गई, तभी बल्लभगढ़ पर शाह के अधिकार का समाचार वहां पहुँच गया, देखें, दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ८८ और तारीखे आलमगीर सानी, पृ० १०५ अ

नारोशंकर आदि मराठा सरदार पहले ही आगरा की ओर पलायन कर चुके थे।[1] सम्भवत: रघुनाथराव के अनिश्चयात्मक रुख और जाटों के साथ किसी स्पष्ट समझौते के अभाव में ये मराठा सरदार दक्षिण से नई सेना के आने के पूर्व युद्ध का कोई ख़तरा नहीं उठाना चाहते थे। परन्तु जाट किसानों ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि आक्रमणकारी उनकी लाशों पर होकर ही व्रज में प्रवेश कर सकेंगे। २८ फरवरी को सूर्योदय से लेकर ९ घण्टे तक घोर संग्राम हुआ। अल्प संख्या में होते हुए भी जाटों ने प्राणों की बाजी लगाकर अद्भुत शौर्य का परिचय दिया। दोनों पक्षों के हजारों सैनिक मारे गए और अनेकों घायल हुए। अन्त में बची-खुची जाट सेना के साथ जवाहरसिंह वल्लभगढ़ के दुर्ग में चला गया और अफगान विजेता ने मथुरा में प्रवेश किया।[2]

मथुरा की लूटमार और नरसंहार

जदुनाथ सरकार के शब्दों में "हिन्दुओं का बेथलेहम आक्रान्ताओं के सामने निस्सहाय पड़ा हुआ था।" १ मार्च को प्रातःकाल अफगान सेना एकाएक आरक्षित मथुरा नगर में घुस गई, जबकि किसी को इसकी आशंका नहीं थी। दो दिन पूर्व खेली गई होली का रंग छूटा भी नहीं था कि हिन्दुओं के खून से श्रीकृष्ण की जन्मस्थली पुनः लाल हो गई। चार घण्टे तक लूट, हत्या व बलात्कार का नंगा नाच होता रहा। यहाँ के अधिकांश निवासी ब्राह्मण-पुरोहित वर्ग के थे, जिनमें प्रतिरोध की शक्ति नहीं थी। जो थोड़े से मुसलमान थे, उन्होंने अपने गुप्तांग दिखाकर पैगम्बर के अनुयायी होने का विश्वास दिलाकर, अपने प्राणों की रक्षा की। मूर्तियों को खण्डित करके गेंद की तरह पैरों से इधर-उधर उछाला गया। मथुरा नगरी होली की तरह जलने लगी। तीन हज़ार लोगों के रक्त से तृप्त होकर, नजीब को नगर निवासियों से एक लाख रुपया वसूल करने का आदेश देकर, जहान खान उसी रात्रि को वहाँ से कूच कर गया।

लूट और हत्या के बचे-खुचे कार्य को नजीब ने पूरा किया। तीन दिन तक उसके सैनिकों ने मकानों को खोद-खोद कर लूटा और अनेक पाशविक कार्य किए।

---

१. पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, १०७

२. तारीखे आलमगीर सानी का लेखक दोनों पक्षों के १०-१२ हज़ार सैनिकों के मारे जाने का उल्लेख करता है (पृ० १०६ अ), जो अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है। राजवाड़े द्वारा संग्रहित एक पत्र के अनुसार "जाटों की ५००० सेना मथुरा नगर में अब्दाली की सेना से बड़ी वीरता के साथ लड़ी। परन्तु शत्रु की अधिक संख्या के कारण हार गई। ३००० जाटों ने वीरगति प्राप्त की और २००० जाट भाग निकले।" मराठांच्या इतिहासांची साधनें, जि० I, पत्र, ६३; तज़किरा ए इमाद, पृ० २४०

वह बहुत सी सुन्दर स्त्रियों को पकड़कर ले गया। अनेक औरतों ने यमुना नदी और घरों के कुओं में कूदकर अपमान से बचने के लिए मृत्यु का सहर्ष आलिंगन किया। जो ऐसा न कर सकीं, उन्हें मृत्यु से भी अधिक दारुण दु:ख झेलना पड़ा। माताओं की चिल्लाहट, जिनके वक्षस्थलों से बच्चों को क्रूर सैनिकों ने हत्या के लिए छीन लिया था, और अपमानित स्त्रियों के आर्तनाद से जलती हुई गलियाँ गूँज उठी थीं।

गुलाम हुसैन सामिन के अनुसार, जो इस वीभत्स नरसंहार के लगभग १४ दिन बाद मथुरा गया था, "नरसंहार के बाद सात दिन तक जमुना का पानी लाल और फिर सात दिन तक पीला रहा। तट के समीप मैंने वैरागियों और साधुओं की अनेक कुटियाँ देखी। प्रत्येक कुटी में एक नर मुण्ड और एक मरी हुई गाय का सिर पास-पास रखे हुए थे। दोनों का मुख मिलाकर रस्से से बांधा गया था।" एक स्थान पर खण्डहरों के ढेर के बीच से रेंगता हुआ एक नंगधड़ंग व्यक्ति बाहर आया जो उपर्युक्त हत्याकाण्ड का शिकार था और अब तक उस हादसे से सम्भल नहीं पाया था, उसने गुलाम हुसैन के सामने खड़े होकर दीनतापूर्वक खाने के लिए कुछ मांगा।[1] १५ दिन बाद तक विद्यमान इस भयावह स्थिति से ही नरसंहार वाले दिन की भयानकता का अनुमान लगाया जा सकता है।

गोकुल और वृन्दावन में कत्लेआम

६ मार्च को जहान खान पूरे रास्ते लूट और हत्या का खेल खेलता हुआ मथुरा के ७ मील उत्तर में वृन्दावन जा पहुँचा! यहाँ शान्त और निरपराध वैष्णव भक्तों का घोर संहार हुआ। सामिन ने यहाँ का वर्णन करते हुए लिखा है, "जहाँ कहीं टकटकी लगाओ, सिर्फ़ कटे हुए सिरों के ढेर नज़र आएँगे। भारी संख्या में पड़े हुए शवों और छितरे हुए खून के कारण मार्ग बहुत कठिनाई से ही निकल पाता है। एक स्थान पर जहाँ हम पहुँचे, हमने २०० मृत बच्चों का ढेर देखा। एक भी मृतक शरीर पर सिर नहीं था—हवा में सड़ान्ध और दुर्गन्ध इतनी थी कि मुँह खोलना व सांस लेना काफ़ी कष्टदायक था। बोलते समय प्रत्येक को अपने मुँह व नाक को रूमाल से ढकना पड़ता था।[2]

---

१. सामिन, पृ० ६०-६२; तारीखे आलमगीर सानी, पृ० १०६ अ एवं १०६ ब; सियार, III, पृ० ३५२; पेशवा दफतर, जि० XXI, पत्र, १०७ तथा जि० XXVII, पत्र, १५२; राजवाड़े, I, पत्र, ६३; सरकार, पतन, II, पृ० ७३-७४; कानूनगो, जाट, पृ० १०३-१०४; गण्डासिंह, दुर्रानी, पृ० १७७-७८

२. सामिन, पृ० ६२; इस हत्याकाण्ड से ब्रज का भक्त कवि वृन्दावनदास किसी तरह से बचकर भरतपुर पहुँच गया। यहाँ रचे गए अपने काव्य 'हरि कला वेली' में उसने इस आक्रमण एवं विपत्ति का उल्लेख किया है, ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ५१४

इस बीच अहमदशाह अब्दाली वल्लभगढ़ से मन्द गति से विचरण करते हुए मुख्य सेना के साथ १५ मार्च को मथुरा पहुँचा। यहाँ मृत लोगों की दुर्गन्ध से बचने के लिए उसने जमुना पार करके पश्चिमी तट पर नगर से दक्षिण-पूर्व में छः मील की दूरी पर महावन में अपना शिविर स्थापित किया। उसके दो मील पश्चिम की ओर गोकुल स्थित था, जो वल्लभ सम्प्रदाय का आसन और नागा साधुओं का आश्रय स्थल था। धनलिप्सा में उसने सेना की एक टुकड़ी गोकुल को लूटने के लिए भेजी। नागा वैरागी भभूति लगाए त्रिशूल, चिमटों के साथ अपनी देव प्रतिमा की रक्षार्थ गोकुल के बाहर आ डटे। एक भीषण युद्ध में लगभग २,००० वैरागी इतने ही शत्रुओं का संहार करके वीरगति को प्राप्त हुए। जब बंगाल के सूबेदार के वकील जुगलकिशोर ने शाह को विश्वास दिलाया कि गोकुल एकमात्र नागा साधुओं का आश्रयस्थल है और उनके पास अधिक धन नहीं मिल सकता, तब अब्दाली ने अपनी सेना को वापस बुला लिया और गोकुल बच गया[1]

आगरा की लूट

अब अब्दाली ने जहान ख़ान और नजीब को लूट और नरसंहार के कार्य से डेरे में वापस बुलाकर धन प्राप्ति के लिए आगरा भेजा, जहाँ राजधानी व अन्य स्थानों के अनेक सम्पन्न लोगों ने शरण ले रखी थीं। अफगान नरेश की योजना थी कि मथुरा व आगरा से दोतरफ़ा आगे बढ़कर जाटों के शक्तिशाली दुर्ग डीग कुम्हेर व भरतपुर को छीना जाय अथवा सूरजमल को बहुत बड़ा ख़िराज देने के लिए बाध्य किया जाय। संभवतः इसी समय उसने एक करोड़ रुपयों की मांग करते हुए सूरजमल को एक पत्र भी लिखा। २१ मार्च को प्रातःकाल जहान खान ने आगरा पर धावा बोल दिया। नगर के प्रमुख व्यक्ति उससे मिलने बाहर आए और निष्कृति धन के रूप में ५ लाख रुपया देने का वादा किया। किन्तु जब निश्चित समय के भीतर धन एकत्र होना कठिन दिखाई पड़ा तो आक्रान्ता शहर में घुस पड़े और लूट तथा हत्या शुरू कर दी, जिसमें २००० व्यक्ति मारे गए। आगरा दुर्ग को लेने के अफगान सैनिकों के प्रयास मिर्जा सैफुल्ला के उत्कृष्ट बचाव के कारण व्यर्थ रहे, जिसने दुर्ग की तोपों से गोलाबारी का संचालन इतनी अच्छी तरह से किया कि आक्रमणकारियों का आगे बढ़ना असंभव हो गया। फिर भी जहान खान वसूली की आशा में आगरा में रुका रहा। बड़ी कठिनाई से स्थानीय अधिकारी

---

१. सामिन, पृ० ६१; महावन के शिविर एवं गोकुल पर आक्रमण के भ्रान्तिपूर्ण तथ्यों के स्पष्टीकरण के लिए देखें, सरकार, पतन, II, पृ० ७४ पा० टि० २; शाऊ बखर के अनुसार वृन्दावन (गोकुल होना चाहिए) में ८,००० वैरागी मारे गए (पृ० ३१); एक मराठा पत्र के अनुसार वैरागी सब काम आ गए, किन्तु गोकुलनाथ की प्रतिमा बच गई, राजवाडे, I, पत्र, ६३

बंगाल के जगत सेठ के मुनीम सामलदास से उसे एक लाख रुपया दिलवा सके। २३ मार्च को उसे शाह का एक अत्यावश्यक संदेश मिला, जिसमें उसे शीघ्र मथुरा पहुँचने के लिए कहा गया। इस कारण निष्कृति धन की पूर्ण वसूली किए बिना ही जहान खान की सेना २४ तारीख को यहाँ से लौट गई।[1]

अत्याचारों की विभीषिका

अब्दाली की सेनाएँ जिधर से भी गुज़री, उधर ही अपनी बर्बर पाशविकता की क्रूर निशानियाँ पीछे छोड़ गई। दिल्ली से आगरा तक प्रत्येक गाँव उजड़ गया।[2] ३ मार्च के शाह के लूटमार एवं कत्लेआम के आदेशानुसार प्रत्येक सवार लूट के माल को घोड़े पर लादकर उस पर लड़कियाँ व दास बिठा देता था। इनके ऊपर कटे हुए सिरों की गठरियाँ रख देते थे। फिर ये सिर भाले पर टाँग कर वज़ीर के सम्मुख पुरस्कारार्थ पेश किए जाते थे। इस प्रकार लूट और संहार नित्य हुआ करते थे। ये घटनाएँ आगरा के तमाम रास्ते में होती रही तथा प्रदेश का कोई भी भाग इनसे नहीं बचा। इसी प्रकार प्रत्येक सैनिक ने अधिक से अधिक पशु इकट्ठे कर, उन पर लूट का माल लादा और सोना चाँदी के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ फैंक दी गई।[3]

अब्दाली के शिविर में महामारी

जब निर्दोष लोगों पर अफगान कहर ढा रहे थे, तब प्रकृति ने अपना प्रकोप दिखाया। शाह का डेरा वृन्दावन से नदी के नीचे की ओर १३ मील की दूरी पर महावन में लगा हुआ था। अब भीषण गर्मी प्रारम्भ हो गई थी, इस कारण नदी (जमुना) का जल भी काफ़ी नीचे चला गया था। इसमें मारे हुए और आत्मघात करके मरे हुए लोगों की बिना जली एवं अधजली लाशें भरी हुई थीं, जिन पर तीन सप्ताह की सूर्य की प्रचण्ड गर्मी ने अपना प्रभाव दिखाया। ऊपरी स्थानों, वृन्दावन, मथुरा आदि स्थानों, जहाँ कत्लेआम हुआ था, को धोता हुआ नदी का जल अब्दाली

---

१. सामित, पृ० ६५; तारीखे आलमगीर सानी, पृ० १०६ अ; तारीखे मुज़फ़्फ़री पृ० १२१; सियार, III, पृ० ३५२; पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, १११; राजवाडे, I, पत्र, ६३

२. तारीखे आलमगीर सानी, पृ० ११४ ब; वैण्डल लिखता है, "सूरजमल ने दूर से अपने प्रदेश ब्रज की इस घोर विपत्ति को देखा। दुर्रानियों और रुहेलों की पाशविकता ने मिलकर इसे भस्मीभूत और रक्तरंजित कर डाला था। उन्होंने किसी पर दया नहीं की। इस अवसर पर आगरा नगर और उसके समीपस्थ स्थान ऐसे नष्ट कर डाले थे जैसे पहले कभी नहीं हुए। उसके करुण चिह्न इस समय भी दिखाई देते है।" सरकार, पतन, II, पृ० ७६, पा० टि०

३. सरकार, पतन, II, पृ० ७६-७७; पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, १०८

के डेरों में पहुँच गया। इस दूपित जल के परिणामस्वरूप महावन में हैजा फैल गया और प्रतिदिन १५० सैनिक मरने लगे। इमली, जिसका पानी हैजे में लाभदायक बताया गया, का भाव १००) रुपये प्रति सेर हो गया। घोड़ों का भी भारी नुक़सान हो रहा था। ऐसी स्थिति में बचे हुए सैनिक शीघ्र अपने घरों को लौटने के लिए चिल्लाने लगे। इससे अब्दाली विवश हो गया। उसने आगरा से जहान खान एवं नजीब को बुलाने के लिए तेज सवार रवाना कर दिए और मुग़ल सम्राट को सूचित किया कि वह वापस लौट रहा है।[1]

सूरजमल का साहसिक एवं कूटनीतिक पत्र व्यवहार

जब ब्रज में अपनी प्रजा पर अफगान सेना द्वारा भीषण अत्याचार हो रहे थे और अब्दाली की क्रूर सेनाएे विनाश की आँधी फैलाते हुए साक्षात् मृत्यु की भाँति निरन्तर सूरजमल की ओर बढ़ती जा रही थी, तब भी जाट राजा ने अपार धैर्य एवं साहस का परिचय दिया। जहाँ एक ओर उसने झाँसा देने और टालमटोल के लिए शत्रु के खेमे में दूत वार्ता जारी रखी, वहीं दूसरी ओर वह डीग, कुम्हेर और भरतपुर मे जोरदार सैनिक तैयारियाँ भी कर रहा था।[2] जब अब्दाली की एक करोड़ रुपये माँग की चिट्ठी आई, तब सूरजमल ने रूपराम कटारी से सलाह मशविरा किया। रूपराम ने अपने स्वामी से कहा, "देशी शत्रु (मराठे) नर्मदा पार करके आवें तब तक रुकना बहुत मुश्किल है। उसे (अब्दाली) मेज़बानी के बतौर

---

१. तारीखे आलमगीर सानी, पृ० १०६ ब एवं ११४ ब; सामिन, पृ० ६४-६५; वैण्डल, पृ० ७६; सियार, III, पृ० ३५२

२. तारीखे आलमगीर सानी का लेखक इस तैयारी का विस्तृत विवरण देते हुए लिखता है, "सूरजमल जाट के पास चार क़िले बहुत ही मजबूत है, जिनकी दीवारे काफ़ी ऊँची और चौड़ी है। उनके चारों ओर इतनी गहरी खाईयाँ खुदवाई है कि जमीन से पानी उबलने लग गया था। उन चारों क़िलों के आसपास एक दूसरे क़िले इस तरह बनवाए कि वे परकोटे की तरह उन चारों क़िलों को बीच में रखते थे। अन्दर से बाहरी क़िलों पर पहुँचने के पूर्व दो तीन कोस की दूरी पर मरहले (पड़ाव) तैयार किए और वहाँ पर रहकलें, बन्दूकची, सवार, सामान, उठाने वाले मजदूर आदि तैयार रहते। क़िलो के अन्दर अन्न, घी, तेल और घोड़ों के लिए इतना चारा इकट्ठा किया कि कई वर्षो तक चलता रहे। युद्ध सामग्री, बड़ी व छोटी तोपे, रहकलें, सीसा, बारूद वग़ैरह इतना जमा किया कि दुर्भाग्य से अगर कोई विशाल सेना चारों क़िलों का घेरा डाल दे, जिसका सोचना विचारना भी समझ के बाहर है, तो वर्षों के घेरे के बावजूद उन क़िलों को लेना कठिन है।" तारीखे आलमगीर सानी, पृ० ११४ अ

दस लाख रुपया दे दिया जाय। अगर वह इन्हें स्वीकार कर ले तो उत्तम अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहना चाहिए। तब तक शत्रु अपने दरवाज़े पर पहुँच जाएंगे।"[1]

जब अब्दाली मथुरा के उत्तर में लगभग १६ मील पर शेरगढ़ पहुँचा, तो उसने सूरजमल से जो कुछ भी प्राप्त हो सके, लेने का अन्तिम प्रयास किया। उसने बंगाल के सेठ जुगल किशोर और एक अफगान अधिकारी को एक धमकी भरे पत्र के साथ सूरजमल के पास भेजा कि अगर उसने नज़राना पेश करने में निरन्तर टालमटोल की तो डीग, कुम्हेर और भरतपुर के उसके तीनों दुर्ग भूमिसात् करके धूल में मिला दिए जाएँगे और उसके प्रदेश की जो भी दुर्गति होगी, उसकी पूरी ज़िम्मेदारी उसी की होगी। किन्तु जाट राजा भयभीत नहीं हुआ। उसने कूटनीतिक शब्दों में उत्तर भेजकर अपने साहस एवं सूझबूझ का परिचय दिया। सूरजमल ने लिखा : "हिन्दुस्तान के साम्राज्य में मेरी कोई महत्वपूर्ण स्थिति एवं शक्ति नहीं है। मैं रेगिस्तान में रहने वाले जमींदारों में से एक हूँ और मेरी इस महत्वहीनता की वजह से, इस युग के एक भी सम्राट ने मेरे मामलों में हस्तक्षेप करना उपयोगी नहीं समझा। अब आपके समान एक शक्तिशाली सम्राट ने मुझ से युद्ध के मैदान में आमने सामने मिलने एवं विरोध करने का निश्चय किया है। अपनी सेनाओं को एक मामूली व्यक्ति के विरुद्ध लाना, यह अकेला कार्य ही शाह की महानता एवं प्रतिष्ठा के लिए अपयशकारी होगा और (लोकानुमान में) मेरी प्रतिष्ठा को बढ़ाने में सहायक होगा तथा स्वयं मेरे लिए गर्व का विषय होगा। दुनियाँ यह कहेगी कि अत्यधिक भयग्रस्त होकर ईरान व तूरान के सम्राट ने एक अपने जमींदार के विरुद्ध अपनी सेनाओं का प्रयाण किया। अकेले ये शब्द ही ताज प्रदान करने वाले आप महामहिम के लिए लज्जा का विषय होंगे। इससे भी बढ़कर प्रश्न यह है कि अन्तिम परिणाम अनिश्चितता से पूर्णतया मुक्त नहीं होगा। अगर इस सारी शक्ति एवं सामग्री के साथ आप मुझ जैसे कमज़ोर व्यक्ति को नष्ट करने में सफल हो जाते हैं, तो आपको क्या यश प्राप्त होगा? (मेरे बारे में) वे केवल यहीं कहेंगे, 'उसे दुर्बल व्यक्ति की क्या शक्ति और स्थिति थी?' किन्तु अगर दैवी निर्णय से, जो किसी को भी ज्ञात नहीं है, घटनाएँ दूसरा मोड़ ले लेती हैं, तब क्या होगा? आप महामहिम के बहादुर सैनिकों ने ग्यारह वर्षों के दौरान जो शक्ति और गुरुता हासिल की है वह एक क्षण में लुप्त हो जायगी।

"यह आश्चर्य का विषय है कि आप जैसे विशाल हृदय महामहिम ने इस छोटी सी संभावना पर विचार नहीं किया और इस सारी मण्डली तथा विशाल सेना के साथ आपने इस साधारण एवं महत्वहीन अभियान पर कष्ट उठाया। जहाँ तक कत्लेआम और मेरे तथा मेरे प्रदेश के विनाश के लिए जारी किए गए हिंसा एवं

---

१. भाऊ बखर, पृ० ३७

धमकी भरे आदेश का प्रश्न है, योद्धाओं को उस हिसाब पर कोई भय नहीं है। यह भलीभाँति ज्ञात है कि कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इस क्षणभंगुर जीवन में विश्वास नहीं रखता है। जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं जीवन की पचास सीढ़ियाँ पार कर चुका हूँ और शेष के लिए कुछ भी नहीं जानता हूँ। इससे बड़ा कोई आशीर्वाद नहीं हो सकता कि मैं शहादत के घूँट का पान करूँ, जो जल्दी या देर से बहादुर सैनिकों को योद्धाओं की कर्मभूमि में करना है, और यादगार के रूप में युग के इतिहास पृष्ठों पर मेरा तथा मेरे पूर्वजों का नाम रह जायगा कि एक साधारण किसान इतने बड़े शक्तिशाली सम्राट से, जिसने शक्तिशाली राजाओं को अधीन बनाया, बराबरी से लड़ा और लड़ते हुए मारा गया। और ऐसा ही दृढ़निश्चय मेरे विश्वसनीय साथियों एवं अनुयायियों के हृदय पटल पर अंकित है। फिर भी अगर मैं आपके दैवी दरबार की देहलीज पर उपस्थित होने का निश्चय करूँ तो मेरे मित्रों का सम्मान मुझे ऐसा करने की अनुमति नहीं देता। इन परिस्थितियों में न्याय के स्रोत आप महामहिम अगर मुझे क्षमा कर दें, जो एक तृण के समान ही कमज़ोर है, और अपना ध्यान अधिक महत्व के अभियान की ओर परिवर्तित करें तो आपके गौरव एवं प्रतिष्ठा को कोई नुक़सान नहीं होगा।

"आपके क्रोध का कारण मेरे तीन क़िलों, जो आप महामना के सरदारों के द्वारा मकड़ी के जाले की भाँति कमजोर माने गए है, के बारे में सच्चाई का पता तो वास्तविक संघर्ष के बाद ही चलेगा। ईश्वर कृपा से वे सिकन्दर के परकोटे की तरह अपराजित सिद्ध होंगे।"[1]

---

१. तज़किरा ए इमाद, पृ० २४३-४५; गण्डासिह, दुर्रानी, पृ० १८१-८३

कद्रतुल्लाह अपने ग्रंथ जाम-ए- ज़हांनुमा में सूरजमल जाट और अहमदशाह अब्दाली के इस पत्र व्यवहार को इस प्रकार सक्षिप्त रूप मे लिखता है "अपने विशाल कोष, सुदृढ़ दुर्गों, असंख्य सेना और भारी मात्रा में युद्ध सामग्री के कारण सूरजमल ने अपना स्थान नहीं छोड़ा और अपने को युद्ध के लिए तैयार किया। उसने शाह के दूत को कहा 'आपने अभी तक भारत नहीं जीता है। अगर आपने एक अनुभव हीन बच्चे (इमाद उल मुल्क गाज़ीउद्दीन), जो दिल्ली पर अधिकार रखता है, पर नियन्त्रण कर लिया है तो इसमें गर्व की क्या बात है? अगर आपकी कोई महत्वाकांक्षा है तो मुझ पर आक्रमण करने में देरी क्यों?' जैसे ही शाह समझौतावादी हुआ तो जाट का गर्व एवं अक्खडपन बढ़ा और उसने कहा 'मैंने इन दुर्गों पर भारी मात्रा में धन खर्च किया है। मेरे साथ युद्ध करके शाह मुझ पर यह कृपा कर सकता है, ताकि दुनियाँ भविष्य में याद रख सकें कि विलायत से एक बादशाह ने आकर दिल्ली जीती, किन्तु एक साधारण जमींदार के विरुद्ध वह असहाय रहा था।' जाट दुर्गों की शक्ति के भय से शाह पुनः लौट गया और दिल्ली जाकर मुहम्मदशाह की पुत्री के साथ स्वयं का तथा आलमगीर द्वितीय की पुत्री का अपने पुत्र के साथ विवाह करके कन्धार लौट गया।" गण्डासिह की अहमदशाह दुर्रानी (पृ० १८३, पा० टि०) से उद्धृत।

फिर भी, शाह किसी तरह से लौट जाय, यह सोचकर सूरजमल ने पाँच लाख रुपया अब्दाली और दो लाख रुपया वकील को देना स्वीकार किया। कुल सात लाख रुपयों का करार जाटों ने जुगलकिशोर की उपस्थिति में किया। सूरजमल ने, जिसे संभवतः इस समय अफ़गान डेरों में फैली महामारी और उससे उत्पन्न अब्दाली की विवशता की सूचना मिल चुकी थी, यह शर्त रखी कि शाह की सेनाओं के दिल्ली लौट जाने पर आधा धन और दिल्ली से आगे प्रयाण करने पर शेष धन दिया जायगा। जाट राजा ने जुगलकिशोर और अफ़गान दूत को अपने पास बनाए रखा[1]

अब्दाली की निराशाजनक वापसी

जब अहमदशाह ने देखा कि उसकी विशाल सेना और जाट प्रदेश की भीषण तबाही से अविचलित जाट राजा अभी भी साहस एवं दृढ़ निश्चय के साथ खड़ा है, तो उसने यह सोचकर कि इन दुर्गों को लेने में काफ़ी समय लग सकता है, और महामारी का प्रकोप निरन्तर बढ़ता जा रहा है, सूरजमल के उपर्युक्त प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और तुरन्त दिल्ली के लिए लौट पड़ा।[2] २७ मार्च को शाह की वापसी शुरू हुई और २९ मार्च तक जाट प्रदेश शत्रु सेना से खाली हो गया।[3] इस प्रकार सैनिक दृष्टि से जाटों के विरुद्ध अब्दाली का यह अभियान असफल रहा। वह न तो जाट राजा को घुटने टेकने के लिए विवश कर सका और न ही उसकी सैनिक शक्ति अथवा चार सुदृढ़ दुर्गों को किसी प्रकार की हानि पहुँचा सका। उसका अभियान केवल दो चार क़स्बों पर अधिकार करने और नागरिक आबादी की लूट तथा हत्याकाण्ड तक सीमित रहा। इस प्रकार भारतीय मैदानों में गर्मी आ जाने और दक्षिण से मराठा सेना के पहुँचने तक प्रतीक्षा करने की सूरजमल की युक्ति काम कर गई।[4]

---

१. पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, १११; भाऊ बखर के आधार पर कानूनगो ने लिखा है कि दस लाख रुपयों के भुगतान का समझौता हुआ था (जाट, पृ० १०६)। किन्तु इस सम्बन्ध में रघुनाथराव को लिखा गया अन्ताजी का उपर्युक्त पत्र अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है जिसमें समझौते का स्पष्ट वर्णन किया गया है।

२. तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० ११४ ब; सियार, III, पृ० ३५२; २८ मार्च को कलन्दर खान अब्दाली का एक पत्र लेकर यह कहते हुए सम्राट के सम्मुख उपस्थित हुआ कि उसने जाटों के विरुद्ध अपना अभियान स्थगित कर दिया है और इस रास्ते से लौट रहा है, तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० १०९ ब

३. सामिन, पृ० ६५

४. कानूनगो, जाट, पृ० १०६

कुछ समय तक तो अब्दाली की गतिविधियों को संदिग्ध मानकर सूरजमल ने उसके वकीलों से वार्ता जारी रखी। दिल्ली से शाह की सेना के प्रयाण कर जाने पर सूरजमल के द्रुतगामी ऊँट सवारों ने लौटकर अपने स्वामी को अब्दाली के निश्चित रूप से अपने देश के लिए रवाना होने की शुभ सूचना दी। इस पर जाट राजा ने एक कौड़ी दिए विना तत्काल अफगान दूतों को, जिन्हें अब्दाली सात लाख रुपयों की वसूली के लिए छोड़ गया था, दुर्ग से बाहर निकाल दिया और बहुत प्रार्थना करने पर उन्हें दिल्ली तक सुरक्षित पहुँचाया।[1] लूट का माल लादने के लिए पशुओं की कमी पड़ जाने के कारण, अब्दाली जो तोपखाना जाट दुर्गों को जीतने के लिए लाया था, पीछे छोड़ गया, जिसे जाट अपने दुर्ग में ले गए।[2] सूरजमल ने तुरन्त ही खाली किए गए स्थानों पर सेना भेजकर, पुनः अपना अधिकार स्थापित कर लिया।[3] यही नहीं, जब उसे यह सूचना मिली कि लाहौर की ओर बढ़ते हुए अब्दाली की सेना को आला जाट ने रोककर लूटमार की तो लूट की अभिलाषा में सूरजमल ने भी तुरन्त सेना इकट्ठी कर अब्दाली का पीछा करना शुरू किया,[4] परन्तु संभवतः उसने विचार बदल दिया था।

जाट-मराठा समझौता

अहमदशाह अब्दाली के जाट राज्य पर आक्रमण से दो बातें उभर कर सामने आईं। एक तो यह कि जाट राजा सूरजमल ने विदेशी शत्रु की अपेक्षा देशी शत्रु के साथ सहयोग को प्रधानता दी। ४ फरवरी को मथुरा में अन्ताजी माणकेश्वर से बातचीत और मार्च में बापू महादेव हिंगणे (जब वह भरतपुर दुर्ग में ही प्रवास कर रहा था) के साथ निरन्तर वार्तालाप के विषयों से यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि सूरजमल मन, वचन और कर्म से अब्दाली के विरुद्ध मराठों के साथ मिलकर लड़ने को तैयार था।[5] दूसरी बात यह हुई कि अब्दाली के विरुद्ध जाट राजा ने जिस धैर्य, साहस एवं कूटनीतिक चातुर्य का परिचय दिया, उस कारण मराठे भी जाट शक्ति का लोहा मान गए और स्वयं पेशवा ने निरन्तर अपने सरदारों को यह सख्त हिदायत दी कि वे किसी भी हालत में जाटों से शत्रुता मोल न लें।[6] इन परिस्थितियों में जाट-मराठा समझौता अनिवार्य था।

---

१. पेशवा दफ्तर, II, पत्र, ७२; तारीखे आलमगीर सानी के अनुसार भी सूरजमल ने अब्दाली को कुछ भी नहीं दिया (पृ० ११४ ब)।

२. पेशवा दफ्तर, II, पत्र, ७१

३. तारीखे आलमगीर सानी, पृ० ११७ ब एवं ११८ अ

४. पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, ११६

५. पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, ९९; हिंगणे दफ्तर I, पत्र, १६५।

६. पेशवा बालाजी बाजीराव ने रघुनाथराव को लिखा "अब्दाली बहुत जल्दी दिल्ली के उस ओर चला गया इसलिए मैं जल्दी चिट्ठी लिख रहा हूँ।........

राजपूताना में पहुँचने पर रघुनाथराव ने मई १७५७ ई० में सखाराम बापू के नेतृत्व में अग्रिम मराठा सेना आगरा की ओर रवाना कर दी। जाट दुर्ग वैर के निकट पहुँचने पर मराठों ने सूरजमल से चौथ की मांग की। जाट राजा ने इस विषय पर बातचीत करने के लिए रूपराम कटारी को मराठा डेरे में भेज दिया। आगरा पहुँचने पर विट्ठल सदाशिव और अन्ताजी माणकेश्वर भी इस वार्ता में शामिल हो गए थे। दोनों पक्षों में इस बात पर सहमति हो गई कि आगरा जिले में और दोआब की पश्चिमी सीमा पर दनकौर आदि इलाके, जिन पर सूरजमल ने अधिकार कर लिया था, वे उसके पास रहने दिए जाए। सूरजमल ने १७५४ ई० की युद्धक्षति की शेष राशि के भुगतान का वचन दिया।[1] उसने दोआब में मराठा विस्तार में बाधा न डालने का आश्वासन भी दिया, इससे मराठों को अपने पीछे का भय नहीं रहा और उन्होंने तेज़ी से दोआब पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। किन्तु जब सूरजमल ने आगरा सूबे, जिसकी सूबेदारी और नायब सूबेदारी पेशवा ने मल्हार होल्कर तथा विट्ठल सदाशिव को दे रखी थी, पर अपने पूर्ण प्रशासनिक अधिकारों का दावा किया, तो विट्ठल सदाशिव ने पेशवा की इच्छा जानने तक रूपराम कटारी को प्रतीक्षा करने के लिए कहा।[2]

इस प्रकार जाट-माराठा समझौते की वजह से अब्दाली के लौटने के शीघ्र बाद ये दोनों शक्तियाँ अपने-अपने प्रदेशों पर अपने अधिकारों की पुर्नस्थापना करने में सफल रहीं। इस समझौते के बाद मराठों द्वारा नजीब से बदला लिये जाने के मामले में सूरजमल ने इसी कारण अहस्तक्षेप की नीति अपनाई।

सूरजमल और वज़ीर के बीच समझौता

अहमदशाह अब्दाली ने दिल्ली छोड़ने के पूर्व आलमगीर द्वितीय को पुनः

जाट उसे (अब्दाली) शक्तिशाली समझकर बुद्धिमत्तापूर्वक चल रहा है। यदि जाट आपके साथ ज्यादती भी करता है, तो भी आप उसे सभी प्रकार से कृपा प्रदर्शित करते रहें।..........मल्हार व जाटों का दिल साफ़ नहीं है, अगर वे युद्ध का सोचते भी हैं तो परिणाम कुछ नहीं होगा। इस वर्ष जहाँ तक संभव हो जाटों से झगड़ा न करें।" पेशवा दफ्तर, II, पत्र, ८०

१. तारीखे आलमगीर सानी, पृ० १२४ ब; पेशवा दफ्तर, II, पत्र, ७६, जाटों के साथ मराठों के आर्थिक मामले रूपराम के माध्यम से ही तय होते थे। २१ जुलाई १७५८ ई० के एक पत्र से पता चलता है कि रघुनाथराव ने रूपराम से ३५०० रुपये (जो इस युद्धक्षति की राशि का अंश प्रतीत होता है) वेतन के भुगतान के लिए आगरा में रामचन्द्र कृष्णराव को दिलवाए थे, चन्द्रचूड दफ्तर, I, पत्र, ४५

२. रघुनाथराव को लिखा गया विट्ठल सदाशिव का पत्र, २७ मई १७५७ ई०, पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र, १५८

सम्राट और इमाद उल मुल्क गाज़ीउद्दीन को वज़ीर का पद प्रदान कर दिया था। एक वर्ष बाद जून १७५८ ई० में रघुनाथराव और मल्हार राव होल्कर के नेतृत्व में मुख्य मराठा सेनाएँ अपना कार्य पूरा करके दक्षिण को लौट गई थीं। इस दौरान नजीबुद्दौला को दिल्ली से निकाल बाहर कर दिया गया था और वजीर इमाद पुनः शक्तिशाली होकर राजधानी में सम्राट के विरुद्ध षड्यन्त्रों में लिप्त हो गया। यही नहीं, उसने भावी मुगल सम्राट अली गौहर (शाह आलम) को भी नहीं बख्शा और साल भर तक उसके पीछे पड़ा रहा।

यद्यपि इमाद के प्रति सूरजमल के विचारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था, किन्तु अब्दाली के विरुद्ध जाट प्रतिरोध को देखकर इमाद सूरजमल के प्रति नरम हो गया था। जब १ जून १७५८ ई० को विट्ठल सदाशिव के साथ अली गौहर भटकते हुए पटौदी पहुँचा और सूरजमल ने अपने पुत्र रतनसिंह को उसके पास भेंट देकर स्वागतार्थ भेजा[1] तो वज़ीर घबरा गया। अगले ही दिन वज़ीर ने नागरमल को सूरजमल के पास यह समझाने के लिए भेजा कि वह शाह आलम का समर्थन न करें। ३ जून को नागरमल पलवल में सूरजमल से मिला और इस सम्बन्ध में वार्ता हुई।[2] ६ तारीख को नागरमल सूरजमल का जवाब लेकर उसके पुत्र नाहरसिंह के साथ दिल्ली लौटा।[3] यद्यपि जाटों और वज़ीर के बीच सम्पन्न समझौते का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है, परन्तु यह अनुमान लगाना कठिन नहीं कि इस समय वज़ीर और सूरजमल के बीच किसी तरह का समझौता हो गया था और जाट राजा ने शाह आलम का समर्थन करने से अपने हाथ खींच लिए थे।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि १७५८ ई० के अन्त में जब नजीब और

---

१. तारीखे आलमगीर सानी, पृ० १७५

२. तारीखे आलमगीर सानी, पृ० १७६ ब; ३ जून को ही अन्ताजी माणकेश्वर रघुनाथराव को लिखता है, "नागरमल और दलेलसिंह की विट्ठल सदाशिव तथा सूरजमल के साथ सहमति हो गई है। नागरमल के मन में यह है कि विट्ठल से कोशिश करके शाहज़ादे को सूरजमल के सुपुर्द करके स्वयं मध्यस्थ बनकर झगड़े को बढ़ाता रहे। पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, १६०

३. तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० १७६ ब

४. तारीखे आलमगीर सानी से इस अनुमान की पुष्टि होती है, जिसमें लिखा है कि कुछ समय बाद (मार्च १७५९ ई०) वजीर ने शाह आलम के विरुद्ध सूरजमल की सैन्य सहायता प्राप्त करने के विचार से बादशाहज़ादा हिदायत बख्श को आगरा की तरफ़ भेजा था (पृ० २०२ ब)।

सम्राट एक बार फिर अब्दाली को आमन्त्रित कर रहे थे,[१] तब जाट-मराठा एवं जाट-वजीर समझौते के कारण हिन्दुस्तानी शक्तियों का नया समीकरण तैयार हो रहा था।

१. मुंशी बिहारीलाल लिखता है कि जब (अगस्त १७५७ ई०) मराठा सेनाओं ने राजधानी दिल्ली में नजीब को घेर लिया, तभी नजीब ने अहमदशाह अब्दाली को लिखा, "दक्षिणी मराठों ने मुझे घेर लिया है। अगर आप अपने जातीय बन्धुओं को बचाना चाहते हैं तो आवें।" अहवाल-ए-नजीबुद्दौला, पृ० ४-५, जदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद, इस्लामिक कलचर, अक्तूबर १९३६ ई०

अध्याय–७

पानीपत का तीसरा युद्ध
और
सूरजमल
(१७५८–१७६१ ई०)

पानीपत का तीसरा युद्ध और सूरजमल (१७५६-१७६१ ई०)

१७५६ ई० के प्रारम्भ में दत्ताजी सिन्धिया के नेतृत्व में मराठों की नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई दिए, जब उसने होल्कर समर्थक इमाद और नजीब के विरुद्ध कठोर व्यवहार की नीति अपनाई। पंजाब को पुनर्विजय करके दत्ताजी मई में दिल्ली के निकट आया, तो उसने इमाद को वज़ीर पद छोड़ देने अन्यथा युद्ध की चेतावनी दी, किन्तु किसी तरह से दिल्ली मराठा आक्रमण से बच गया। परन्तु नजीब के प्रति दत्ताजी के मन में जो भयंकर द्वेष एवं घृणा भरी हुई थी, उसकी आग ने घातक रूप ले लिया। जुलाई में शुकरताल में मराठों ने नजीब को घेर लिया, किन्तु चतुर रूहेले सरदार ने अगले चार महीने तक मराठा सेना का युक्तिपूर्वक सामना किया। इस बीच नजीब ने शुजाउद्दौला के साथ-साथ सूरजमल से भी सहायता प्राप्त करने का भरसक प्रयास किया। दूसरी ओर दत्ताजी एवं जनकोजी सिन्धिया ने भी सूरजमल से सैनिक सहायता भेजने की प्रार्थना की।

इस समय सूरजमल के मित्रों, विशेष रूप से माधोसिंह का उस पर इस बात के लिए बहुत दबाव पड़ा कि वह शुजाउद्दौला को वज़ीर बनाने और मराठों को नर्मदा पार खदेड़ने के अपने पुराने प्रस्ताव पर अमल करे,[1] किन्तु अब सूरजमल के दृष्टिकोण और राजनैतिक परिस्थितियों में काफ़ी बदलाव आ चुका था। अब्दाली के पिछले आक्रमण के दौरान नजीब का चरित्र भी खुलकर सूरजमल के सामने आ चुका था और अब्दाली के लौटने के बाद मराठों से हुए समझौते के कारण, जिसके बाद मराठों ने सूरजमल को नाराज करने अथवा जाट राज्य के हितों को

१. ड्राफ्ट खरीता, दीवान नन्दलाल द्वारा राजा सदाशिव को, आश्विन शुक्ला ६ वि० सं० १८१६ (२७ सितम्बर १७५६ ई०); इसके पूर्व जब सूरजमल माधोसिंह से मिलने २४ मार्च १७५६ ई० को जयपुर गया, तब अपने लम्बे प्रवास (६ अप्रैल तक वह वहाँ पर रुका रहा) के दौरान भी इस विषय पर बातचीत हुई होगी, यह अनुमान करना असंभावित नहीं, देखें, दस्तूर कौमवार, जि० VII, पृ० ५७४-७६ एवं ५६६

हानि पहुँचाने वाला कोई कार्य नहीं किया,[1] सूरजमल ने सिन्धिया की सहायता करने का निश्चय किया, ताकि वह कुम्हेर के घेरे के दौरान जयप्पा सिन्धिया द्वारा संकट में की गई उसकी सहायता के ऋणभार से भी मुक्त हो सके।

सूरजमल द्वारा दत्ताजी की सहायतार्थ सेना भेजना

३ नवम्बर (१७५९ ई०) को शुजाउद्दौला की अग्रिम सेना ने शुकरताल के निकट पहुँचकर गोविन्द बल्लाल की मराठा टुकड़ी पर धावा बोल दिया।[2] आठ तारीख को सूरजमल द्वारा भेजी गई ५,००० जाट सेना मराठों की सहायतार्थ पहुँच गई। उसी दिन अब्दाली की सेना द्वारा खदेड़ा गया लाहौर का मराठा सूबेदार साबाजी सिन्धिया मराठा शिविर में पहुँचा। इससे दत्ताजी घबरा गया और उसने होल्कर एवं वज़ीर को तुरन्त बुलावा भेजा। दत्ताजी ने इमाद को लिखा, "आप किस गहरी नींद में सो रहे हैं?......................यहाँ मैं आपकी प्रार्थनानुसार लड़ने में व्यस्त हूँ और आप भागकर भरतपुर जाने की सोच रहे हैं।"[3] उधर २५ अक्तूबर १७५९ ई० को अब्दाली के पंजाब में प्रवेश के समाचार को सुनकर राजधानी में वज़ीर ने आक्रान्ता के साथ गुप्त सहयोग के सन्देह में १९ नवम्बर को सम्राट तथा इन्तिज़ाम की हत्या कर दी और अगले दिन कामबख्श के पौत्र को शाहजहाँ द्वितीय के नाम से सिंहासन पर बैठा दिया।[4]

हिन्दुस्तान की दो प्रमुख शक्तियों जाटों व मराठों के समर्थन के बल पर वज़ीर इमाद ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने और दिल्ली के कानूनी शासक शाह आलम द्वितीय को कमज़ोर बनाने तथा राजधानी में उसके प्रवेश को रोकने के हरसंभव प्रयास किए।[5] अपने पिता के हत्यारे एवं घातक शत्रु इमाद से परेशान

---

१. १७५९ ई० के प्रारम्भ में जब जाट राजा की दृष्टि आगरा क़िले पर नियन्त्रण करने की थी, तब महादेव गोविन्द ने इसकी सूचना भेजते हुए पेशवा से सलाह एवं निर्देश भेजने के लिए आग्रह किया। उसके प्रत्युत्तर में पेशवा ने लिखा, "अगर यह स्थान हम ले लेते हैं, तो जाटों से बहुत विरोध हो जायगा और वज़ीर व बादशाह का स्थान हाथ से निकल गया तो वे बुरा मानेंगे। फिर भी यह स्थान बहुत मौक़े का है।" पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, १६८

२. शुजाउद्दौला, I, पत्र, ७३

३. सरकार, पतन, II, पृ० १३१

४. तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० २१४ अ—२१५ अ; सियार, III, पृ० ३७५

५. जून १७५८ ई० में नागरमल की मध्यस्थता से इमाद अपने अब तक के शत्रु शक्तिशाली जाट राजा द्वारा शाह आलम द्वितीय का समर्थन करने से रोकने में सफल रहा था और मार्च १७५९ ई० में जब शाह आलम एक बड़ी सेना इकट्ठी कर पटना की ओर बढ़ रहा था, तब इमाद ने उसके विरुद्ध सूरजमल

शाह आलम द्वितीय ने इस समय बिहार से अहमदशाह अब्दाली को एक पत्र भेजा। उसने शाह को लिखा कि हिन्दुस्तान का ताज एवं सिंहासन उसे प्रदान किया जाय अन्यथा 'इमाद और जाट मिलकर किसी नामधारी व्यक्ति को सिंहासन पर बैठा देंगे और साम्राज्य को पहले से सौ गुना अधिक उजाड़ देंगे, तथा दक्षिणी अपनी शक्ति को हजार गुना बढ़ा देंगे और देश में लोगों का जीवन दुःखद बना देंगे।" भरतपुर के जाट राजा सूरजमल के बारे में बड़े ही तिरस्कारपूर्ण ढंग से उसने लिखा: "लोग जाटों को भारत की कुन्जी के रूप में मानते हैं। यह व्यक्ति कब से इतना शक्तिशाली बन गया कि उसे कुन्जी माना जाने लगा? यह सब नागरमल की छल-रचना है। साम्राज्य के बुरे दिनों में गिरने के साथ ही, इन लोगों ने बादशाह के खर्च के लिए सुरक्षित प्रदेशों के राजस्व का दुरुपयोग किया और खज़ाने को लूटा। इस तरह से उसने सरदारों की श्रेणी में प्रवेश पाया। चूहों को पकड़ते समय एक बिल्ली तेंदुआ होती है, किन्तु तेंदुआ से लड़ते समय वह केवल चूहा होती है। जैसे ही हम अपना ध्यान देश के प्रशासन की ओर परिवर्तित करके दृश्यपटल पर प्रकट होंगे, तो वह भारी मात्रा में धन अदा करेगा, लाखों रुपयों के राजस्व की कीमत वाला अधिकृत प्रदेश खाली कर देगा और अपनी नौकरी में आ जायगा। अगर वह ऐसा नहीं करेगा, तो उसे नष्ट कर दिया जायगा।"[1]

बरारी घाट का युद्ध और दत्ताजी की मृत्यु

सम्राट की हत्या से क्रुद्ध अब्दाली तेजी से दिल्ली की ओर बढ़ा। मुल्तान में अब्दाली द्वारा मराठा सेना के संहार से बचे ५०० सिपाही बड़ी दुर्दशापूर्ण अवस्था में २३ नवम्बर १७५६ ई० को जब दत्ताजी के शिविर में पहुँचे, तो वह भावी विपत्ति का संकेत था।[2] अन्ततः दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में दत्ताजी शुकरताल का घेरा उठाकर दिल्ली की ओर लौट पड़ा। अफगानों के साथ छुटपुट मुठभेड़ों के बाद ४ जनवरी १७६० ई० को दत्ताजी दिल्ली से १० मील उत्तर की ओर बरारी नामक स्थान पर पहुँच गया। ६ जनवरी को नजीब और रुहेलों ने, जो दुर्रानी सेना के अग्रभाग का नेतृत्व कर रहे थे, अकस्मात जमुना पारकर साबाजी के नेतृत्व

की सैन्य सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से हिदायत बख्श को आगरा भेजने का विचार किया था, किन्तु जाट राजा के उस समय जयपुर में होने के कारण वह इस योजना पर अमल नहीं कर सका, तारीखे आलमगीर सानी, पृ० १७६ ब और २०२ ब; शाह आलम के विरुद्ध इमाद के षड्यन्त्र एवं मराठा समर्थन के लिए देखें, सरकार, पतन, II, पृ० १०१-१०५ और ३३४-३३७

१. मुरसालात ए अहमदशाह दुर्रानी, संख्या, २१ गण्डासिंह द्वारा उद्धृत, दुर्रानी, पृ० २३२-३३

२. राजवाड़े, I, पत्र, १४६

में बरारी घाट पर तैनात मराठा टुकड़ी पर हमला कर दिया। जब दत्ताजी उसकी सहायतार्थ पहुँचा, तो एक गोली लगने से वह मारा गया। इस दुःखद समाचार से मराठा सेना में भगदड़ मच गई और भारी संख्या में उनका विनाश हुआ। पीछे खड़ी बीस हज़ार मराठा सेना भय एवं निराशा की अवस्था में अपने अग्रभाग की दुर्गति देखती रही। जनकोजी ने साहस जुटाकर पुनः युद्ध करने का प्रयास किया, किन्तु उसके भी घायल हो जाने पर सैनिक उसे रणभूमि से बाहर ले आए। अब मराठा सेना तेज़ी से दिल्ली की ओर भाग छूटी।[1]

सूरजमल द्वारा शरणागत वज़ीर एवं मराठों की सहायता

यह समाचार आग की लपटों की तरह चारों ओर फैल गया। दिल्ली में एक बार फिर भगदड़ मच गई और लोग सुरक्षा के लिए जाट राज्य की ओर भागते दिखाई दिए। शाह के क्रोध से बचने के लिए भयभीत वज़ीर सुरक्षा के लिए सूरजमल के सुदृढ़ दुर्ग कुम्हेर में पहुँचा। वैण्डल तथा गुलाम अली के अनुसार यह वही गाज़ीउद्दीन था, जिसने कुछ ही वर्ष पूर्व सूरजमल को नष्ट करने के लिए हिन्दुस्तान की सारी शक्तियों को संगठित किया था और उन दीवारों के प्रति कठोर शत्रुता प्रदर्शित की थी, जिनसे अब वह सुरक्षा चाह रहा था। परन्तु सूरजमल ने अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया। दुर्ग से बाहर आकर जाट राजा ने शरणागत का उसके पद की गरिमा के अनुसार सम्मान और स्वागत किया तथा भरतपुर के श्रेष्ठ महलों में उसकी सुविधानुसार रहने की व्यवस्था की।[2]

उधर बरारी घाट युद्ध क्षेत्र से घायल जनकोजी सिन्धिया को बाहर निकालकर दीवान रामाजी पन्त और रूपराम कटारी ने बिना कहीं रुके, पूरे लश्कर के साथ द्रुतगति से रेवाड़ी की ओर कूच किया। रास्ते में रूपराम कटारी ने यह सलाह दी : "दुर्रानी की गति बहुत तेज है और वह हमारी फ़ौज को नहीं बख्शेगा। इसलिए बाई (दत्ताजी की विधवा भागीरथी बाई) व जनकोजी को रामाजीपन्त के साथ, बिना किसी को मालूम पड़े, भरतपुर, रामगढ़ अथवा कुम्हेर में सुरक्षित पहुँचा दिया जाय, ताकि दुर्रानी की फ़ौज अगर जल्दी आ भी जाय, तो हम इन्हें उनके हाथ में नहीं पड़ने देंगे। शेष फ़ौज का जो भाग्य में लिखा है, वह हो जायगा।" इस पर जनकोजी ने, जो उस समय भागीरथीबाई की पालकी में था, कहा कि बाई को पूछा जाय। तब बाई ने इस विचार को नापसन्द करते हुए उत्तर दिया : "इस विचार पर मेरा कोई मत नहीं है, तुम जैसा उचित समझो वैसा करो" और दूसरे ही क्षण भीड़ की मर्यादा को त्यागते हुए कहा "तुमने यह

---

१. सरकार, पतन, II, पृ० १३७-३८; म०न० इ०, II, पृ० ४२८-२९
२. वैण्डल, पृ० ५१; इमाद, पृ० ७३; मजमाउल अखबार. इलियट, VIII, पृ० २७२; तारीखे मुज़फ़्फ़री, पृ० १७७; वंश भास्कर, पृ० ३६८२; कानूनगो की यह मान्यता भ्रान्तिपूर्ण प्रतीत होती है कि बरारी घाट युद्ध के पूर्व ही वज़ीर

मंसूबा क्यो सोचा है ? यह जाट हमारे पिताभाई के समान हे, किन्तु वेंकटराव अथवा मावला भापकर के समान नही है । इन्ही लोगों ने हमे कैद मे डाल दिया तो पेशवा क्या करेगा ?" भागीरथी ने आदेश दिया कि, "पालकी चलने दो ।" इस समय पूरे लश्कर मे यह अफवाह फैल गई कि जनकोजी को जाटो ने कुम्हेर मे पहुँचा दिया है और उन्हे जगल मे ही छोड़ दिया हे ।[1]

होल्कर द्वारा सूरजमल से सहायता की याचना

दत्ताजी पर आई विपत्ति के समय होल्कर मुकन्दरा (सवाई माधोपुर के निकट) मे रुका हुआ था । २७ दिसम्बर १७५९ ई० को उसे अप्रत्याशित रूप से दत्ताजी का घबराहट भरा पत्र मिला, जिसमे अब्दाली के विरुद्ध युद्ध करने के लिए उसे तुरन्त बुलाया गया था । फलस्वरूप पांच दिन बाद ही उसने दिल्ली के लिए कूच कर दिया था । किन्तु उसके लिए बरारी घाट के युद्ध मे इतना जल्दी सम्मिलित होना सभव नही था । वह शीघ्रता से सूरजमल जाट के पास पहुँचा और उससे आग्रह किया कि दुर्रानी शाह से युद्ध करने मे वह उसका साथ दे । जाट राजा ने उत्तर दिया, "मैं अपने राज्य से बाहर निकल कर उससे लड़ाई नही लड़ सकता, क्योकि मेरे पास जमकर लड़ाई लड़ने का साधन नही हे । यदि शत्रु यहाँ आक्रमण करेगा, तो मैं अपने दुर्गो मे शरण ले सकूंगा ।"[2]

१५ जनवरी १७६० ई० को कोटपुतली मे मल्हार राव होल्कर जनकोजी से आकर मिल गया ।[3] कुछ दिन यहाँ रुकने के बाद चम्बल पार करके दक्षिण जाने का विचार करके २३ तारीख को मराठा लश्कर कोटपुतली से रवाना हुआ ।

जाट दुर्ग मे जा चुका था (जाट, पृ० ११३-१४) । अली मुहम्मद खान के अनुसार वजीर बरारी घाट युद्ध मे मराठा पक्ष की ओर से उपस्थित था और युद्ध के बाद सूरजमल के दुर्ग भरतपुर मे शरण के लिए भाग गया, जहाँ सतर्कता के तौर पर वह अपनी सम्पत्ति एव परिवार को पहले ही भेज चुका था, देखे, मीरात-ए-अहमदी (अंग्रेजी अनुवाद), पृ० ६०५; राजा नागरमल व दिलेरसिंह सहित राजधानी के अनेक महत्वपूर्ण व्यक्ति भी शरण के लिए जाट दुर्गो मे पहुँच गए, हिंगणे दफ्तर, II, पत्र, ४२

१. भाऊ बखर, पृ० ८८-९२

२. तारीख-ए-इब्राहीम खान, इलियट, VIII, पृ० २०२; गुनाम हुसैन का वर्णन भी शब्दश यही है, सियार, III, पृ० ३८०; तारीखे मुजफ्फरी, पृ० १७७; दत्ताजी पर आई विपत्ति के लिए होल्कर के जिम्मेवार होने सम्बन्धी आरोप व स्पष्टीकरण के लिए देखें, म० न० इ०, II, पृ० ४२८ तथा सरकार, पतन, II, पृ० १४४-४५

३. हिंगणे दफ्तर, II, पत्र, ४२

एक दिन अचानक सूरजमल का ऊँट सवार भागता हुआ सिन्धिया के पास यह सन्देश लाया कि, "दुर्रानी की फ़ौज दिल्ली के निकट यमुना पार कर, अन्तर्वेद प्रान्त से होकर आपकी ओर आ रही हैं, अतः आप इस ऊँट सवार को देखते ही अपना स्थान छोड़ देना।" आगरा के निकट पहुँचने पर मराठों को शीघ्र यमुना पार करने की चिन्ता सताने लगी। मल्हार स्वयं भी घबरा गया और उसने रूपराम को बुलाकर कहा, "बाबा (जनकोजी) ज़ख्मी है, उसे पार करने में मदद करो, ऐसा कठिन समय शत्रु पर भी न आवें।" मल्हार के मुँह से ये शब्द सुनकर रूपराम ने भी मर्यादा तोड़कर कहा, "डोकरे (बूढ़े) रोता क्यों है? तुम्हारी जान से पहले हमारी जान है, चिन्ता न करें।" यह कहकर रूपराम ने दो नावें मंगवाई और तम्बू के पास खूँटी से बांध दी। पहले दोनों महत्वपूर्ण व्यक्तियों को सुरक्षित आगरा क़िले[1] में पहुँचाकर रातोरात फ़ौज को नदी पार करवाई गई।[2]

यहाँ पर होल्कर ने अपनी सेना के अलावा मराठा लश्कर को आगे भेज दिया, जिसने ३ फरवरी को चम्बल पार की। बापू हिंगणे, नाना साहब, गणपतराव आदि कुछ मराठा सरदार सुरक्षा के लिए डीग दुर्ग में चले गए। इस समय अब्दाली

---

१. ठोस प्रमाणों के अभाव में यह कहना कठिन है कि आगरा का क़िला इस समय जाटों के अधिकार में था। यद्यपि १७५९ ई० के प्रारम्भ में जब सूरजमल इस पर अधिकार करना चाहता था, तब पेशवा ने अपने सरदारों को उसके रास्ते में न आने की सलाह दी थी (पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, १६८), किन्तु बाद में सूरजमल ने दुर्ग पर अधिकार कर लिया हो, ऐसा कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। इस समय पुरुषोत्तम हिंगणे एक पत्र में होल्कर को सूचित करता है कि अब्दाली अब जाटों के विरुद्ध जायगा, इसलिए सूरजमल ने अपने सभी दुर्गों सहित आगरा क़िले का अच्छा बन्दोबस्त कर लिया है, देखें, वा० वा० ठाकुर, होल्कर शाहीच्या इतिहासांची साधनें, I, पत्र, १४९; मजमाउल अखबार के विवरण से भी पता चलता है कि जाट राजा ने ११७३ हिज्री (१७५९-६० ई०) में आगरा क़िले पर अधिकार कर लिया था, देखें, इलियट, VIII, पृ० २७२-७३; दूसरी ओर अधिकांश प्रामाणिक स्रोत पानीपत युद्ध के बाद ही आगरा क़िले पर सूरजमल के अधिकार किए जाने का वर्णन करते हैं, जैसा कि बाद की घटनाओं में हम देखते हैं। ऐसी स्थिति में यह संभावना व्यक्त की जा सकती है कि १७५९ ई० के अन्त में सूरजमल ने अस्थायी रूप से आगरा क़िले पर नियन्त्रण कर लिया होगा, अथवा वज़ीर ने, जो इस समय साम्राज्य का सर्वेसर्वा था और बाद में जाट राजा की शरण में आ गया था, अपने प्रभाव का उपयोग करके अब्दाली के विरुद्ध इसका उपयोग करने की सूरजमल को अनुमति दे दी होगी।

२. भाऊ बखर, पृ० ९८-१००

द्वारा अपना पीछा किए जाने के समाचार से भयभीत होल्कर अपनी २०,००० फ़ौज के साथ जाट प्रदेश में डीग से ३४ मील दूर एक स्थान पर पहुँच गया। बापू हिंगणे जो डीग में शरण पाने के पूर्व तक इस सेना के साथ था, इस सेना की दशा के बारे में १ फरवरी (१७६० ई०) को लिखता है,..........."कहने को तो होल्कर के पास बीस हज़ार फ़ौज है, किन्तु वह बेंत की तरह कांप रही है। इसमें केवल आठ-दस हज़ार फ़ौज अच्छी है, किन्तु वह भी डरी हुई है। ऐसा दिखाई नहीं देता है कि वह अब्दाली के सामने जाकर लड़ने की हिम्मत करेगी। यह फ़ौज जिधर भागती है, उसी तरफ़ वह (अब्दाली) भी आ रहा है। उसको तो यह धुन लगी हुई है कि इनको पीटकर चम्बल पार खदेड़ दिया जाय।"[1]

जाटों के विरुद्ध अब्दाली का अभियान

इस बीच अहमदशाह अब्दाली बेरोकटोक राजधानी पर अधिकार करके तथा याकूब खान को उसका नियन्त्रण सौंपकर १४ जनवरी १७६० ई० को खिज्राबाद पहुँच गया। यहाँ से उसने जाट राजा सूरजमल और राजपूताने के शासकों को पत्र लिखे कि वे उसके सम्मुख उपस्थित होकर नजराना पेश करें।[2] पेशवा को लिखे गए राजा केशवराव के एक पत्र से पता चलता है कि उत्तर के हिन्दू शासक जहाँ एक ओर मराठा लुटेरों से परेशान थे, वहीं वे अब्दाली की शक्ति से आतंकित उसका विश्वास करने की मनः स्थिति में भी नहीं थे। अत्यधिक धन की मांग के कारण भयभीत शुजा भी अब्दाली के पास जाने को तैयार नहीं था। अब्दाली का पत्र आने पर सूरजमल ने दूरदर्शितापूर्वक इस बात की प्रतीक्षा करने की नीति अपनाई कि होल्कर और अब्दाली आपस में क्या फ़ैसला करते हैं।[3] साथ ही आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षात्मक युद्ध के लिए उसने अपने चारों दुर्गों सहित आगरा व अलीगढ़ के क़िलों में भी अच्छा बन्दोबस्त कर लिया।[4] तब उसने स्पष्ट किन्तु चातुर्यपूर्ण निम्नलिखित उत्तर भेजा, "आप पहले मराठों को दिल्ली से निकालकर हमको आश्वासन दें कि आपका वहाँ पर पूर्ण अधिकार हो गया है, तब मैं इस मामले में आवश्यकतानुसार पैसा दूँगा, उसके पहले मैं कुछ नहीं कर सकता।"[5]

स्वाभिमानी जाट से सन्तोषजनक उत्तर न पाने पर नजीब की सलाह पर

---

१. हिंगणे दफ्तर, II, पत्र, ४२; शाकिर खान (पृ० १००) और तारीख-ए-इब्राहीम खान (इलियट, VIII, पृ० २०३) के अनुसार जनको जी सिन्धिया ने भी इस समय जाट दुर्ग में शरण ले रखी थी।

२. सरकार, पतन, II, पृ० १४०; गण्डासिंह, दुर्रानी, पृ० २३३

३. पेशवा दफ्तर, II, पत्र, ११८

४. होल्कर शाहीच्या इतिहासांची साधनें, I, पत्र, १४६

५. पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र. १८६

अहमदशाह ने जाटों को दण्डित करने और पेशकश की वसूली के लिए २७ जनवरी को खिज्रावाद छोड़ दिया[1] और शेरगढ़ के रास्ते से जाट प्रदेश की ओर कूच किया। ६ फरवरी को डीग पहुँचकर उसने दुर्ग पर आक्रमण कर दिया।[2] किन्तु यह आक्रमण पूरी तत्परता से नहीं किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अब्दाली का उद्देश्य जाटों पर मराठों से मिलने से रोकने हेतु दबाव डालने तक ही सीमित था। यहाँ से उसने अपनी सैनिक टुकड़ियों को मराठों का पीछा करने हेतु रवाना किया। और स्वयं भी डीग का घेरा उठाकर होल्कर पर आक्रमण करने के उद्देश्य से १५ फरवरी को मेवात एवं १८ फरवरी को रेवाड़ी की तरफ़ चला गया।[3] रास्ते में प्रतिरोध प्रदर्शित करने पर अब्दाली ने महुआ गांव के निवासियों को कत्ल कर डाला और वसवा के निवासियों को धन देने पर छोड़ा गया।[4] कुछ दिन तक मराठा अफगान छिपाटोली संघर्ष चलता रहा। अन्ततः ४ मार्च को जहान खान ने सिकन्दरावाद के निकट होल्कर पर आकस्मिक आक्रमण कर उसे बुरी तरह से पराजित कर दिया।[5] मल्हार भागकर आगरा पहुँचा और उसका दीवान गंगाधर मथुरा पहुँचा।[6]

अलीगढ़ पर शाह का अधिकार

५ मार्च को शाह अपनी सेना के साथ अलीगढ़ पहुँच गया, जो जाट राजा के अधिकार में था और जिसने इसका नामकरण रामगढ़ कर दिया था। यह अच्छी तरह से दुर्गीकृत एवं साधन सम्पन्न था। शाह के आक्रमण के समय यहाँ दुर्जनसाल के नेतृत्व में जाट सैन्य दल था।[7] अफगान सैनिकों ने जमुना के पश्चिम में इसे डीग व भरतपुर से, जो क्रमशः ५० व ६० मील दूर थे, काट दिया। इसके अलावा बीच में स्थित जमुना नदी उसके स्वामी सूरजमल से सम्पर्क में बाधा थी। बीच का सारा प्रदेश अफगानों के घुमक्कड़ दलों से भरा हुआ था। चारों ओर लूटमार करते हुए जाटों के परगने फ़रीदाबाद व सादाबाद सहित कोईल के एक बड़े भूभाग पर अपना अधिकार स्थापित[8] करने के बाद लगभग २५ मार्च के आस-पास अफगान सेनाओं

१. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ११२; मीरात-ए-अहमदी, पृ० ९०६
२. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ११३
३. वही, पृ० ११३
४. वा० वा० खरे, ऐतिहासिक लेख संग्रह, I, पत्र, २१
५. सिकन्दराबाद में होल्कर की पराजय के विस्तृत विवरण के लिए देखें, सरकार, पतन, II, पृ० १४१ और गण्डासिंह, दुर्रानी, पृ० २३४-३५
६. पेशवा दफ्तर, जि० II, पत्र, १२१ एवं जि० XXI, पत्र, १८८
७. सिद्दीकी, अलीगढ़ डिस्ट्रिक्ट : ए हिस्टारिकल सर्वे, पृ० ११२
८. सैय्यद नूरुद्दीन, अहवाल-ए-नजीबुद्दौला, पृ० ३२ ब, जदुनाथ सरकार के अंग्रेजी अनुवाद (इस्लामिक कलचर, जुलाई १९३३ ई०) से उद्धृत।

ने अलीगढ़ दुर्ग पर आक्रमण कर दिया।[1] जाट राजा से सम्पर्क टूट जाने और शत्रु सेना द्वारा बुरी तरह से घिर जाने के कारण दुर्जनसाल को आत्मसमर्पण करना पड़ा। इस प्रकार १५ दिन बाद ९ अप्रेल १७६० ई० को अलीगढ़ पर शाह का अधिकार हो गया।[2] नजीब ने, जो यह चाहता था कि अब्दाली के लौटने के पूर्व मराठों के साथ फ़ैसला हो जाना चाहिए, इस समय शाह को दक्षिण से नई सेना पहुँचने तक यहीं पर रुकने की सलाह दी। नजीब ने दुर्रानी से कहा, "अब ग्रीष्म ऋतु है और वर्षा ऋतु आने वाली है। इस वर्ष आपको कोईल में ही डेरा लगाना चाहिए, क्योंकि जब तक मराठे जड़मूल समाप्त नहीं कर दिए जाते, हमारे लिए हिन्दुस्तान में रहना मुश्किल होगा। मैं आपकी सेना का ख़र्च वहन करने को तैयार हूँ।" परिणामस्वरूप शाह ने अपनी सेनाओं के डेरे स्थायी रूप से अलीगढ़ में लगा दिए।[3]

सूरजमल द्वारा मराठा पक्ष ग्रहण करना

घटनाओं के प्रवाह से अब यह स्पष्ट हो गया था कि हिन्दुस्तान की भावी राजनीति का निर्णय मराठा-अफगान संघर्ष के द्वारा होगा। १७५४ ई० में कुम्हेर में मराठा शक्ति का सफल प्रतिरोध करके और १७५७ ई० में अब्दाली का साहसिक विरोध करके सूरजमल ने जाट शक्ति को उस मूल्यवान् एवं निर्णायक बिन्दु पर पहुँचा दिया था, जो उपर्युक्त संघर्ष में शक्ति सन्तुलन को अपने पक्ष में मोड़ने की सामर्थ्य रखता था। यही कारण था कि जहाँ एक ओर पेशवा ने उत्तर भारत में अपने मराठा सरदारों को जाटों से बिगाड़ न करने के कठोर आदेश दे रखे थे, वहीं दूसरी ओर अब्दाली ने डीग के निकट पहुँचकर भी जाटों को शत्रु न बनाने का निश्चय किया। दोनों पक्षों ने अपने-अपने तरीकों से जाटों का समर्थन पाने के प्रयास तेज़ कर दिए।

सिकन्दराबाद की पराजय के बाद मल्हार राव होल्कर आगरा होते हुए भरतपुर के निकट पहुँचा। अब होल्कर ने वज़ीर इमाद पर अब्दाली से समझौता वार्ता करने का आग्रह किया। हाफ़िज़ रहमत ख़ान के वकील को भरतपुर बुलाया गया। उसके साथ सम्पन्न वार्ता के परिणामस्वरूप होल्कर एवं हाफ़िज़ रहमत के बीच समझौता हो गया।[4] किन्तु अब्दाली के साथ वार्ता का कोई परिणाम नहीं निकला। बाद में भरतपुर से ३० मील दूर किसी स्थान पर होल्कर एवं सूरजमल के बीच प्रस्तुत संकट पर विस्तृत बातचीत हुई। ऐसा प्रतीत होता है कि होल्कर ने

१. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ११५
२. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ११५,; नूरुद्दीन, पृ० ३२ ब; इमाद, पृ० ७६
३. नूरुद्दीन, पृ० ३२ अ
४. पेशवा दफ्तर, II, पत्र, १२१

जाट राजा पर अब्दाली के विरुद्ध संघर्ष में उसका साथ देने के लिए वैसा ही दवाव डाला, जैसा अब्दाली के पिछले आक्रमण के दौरान ४ फरवरी १७५७ ई० को अन्ताजी माणकेश्वर ने मथुरा पहुँचकर सूरजमल पर डाला था। सूरजमल के लिए दोनों परिस्थितियाँ लगभग समान थी। अन्ताजी की ही तरह शक्तिशाली अब्दाली के विरुद्ध वह होल्कर की कमज़ोर स्थिति से भी भलीभाँति परिचित था। अतः दक्षिण से नई मराठा सेना आने के पूर्व वह मराठा पक्ष ग्रहण करने की सार्वजनिक घोषणा करके अब्दाली की शत्रुता मोल नहीं लेना चाहता था। इसके अलावा मराठों विशेषकर होल्कर की सदाशयता पर उसका विश्वास कम था।[1] जाट राजा की इस मनःस्थिति को भांपते हुए होल्कर ने इस बार ईमानदारीपूर्वक अपनी मैत्री का उसे पूरा भरोसा दिलाया। १३ मार्च को पुरुषोत्तम महादेव हिंगणे इस वार्ता के बारे में सूचित करता है कि होल्कर ने बिलपत्र एवं गंगाजल हाथ में लेकर सूरजमल के साथ अपनी मित्रता की शपथ ली और उसे वचन दिया कि पूर्व में जो-जो करार मराठों ने उसके साथ किए थे उन पर वह स्वयं अपनी इच्छानुसार (अनुकूल) निर्णय करेगा।[2] बदले में संभवतया जाट राजा ने अब्दाली के विरुद्ध संघर्ष में उचित समय पर (दक्षिण से नई सेना आ जाने पर) मराठों का साथ देने का आश्वासन दिया होगा। यद्यपि सूरजमल को इस समय दक्षिण से विशाल मराठा सेना के शीघ्र पहुँचने का पूरा भरोसा हो चुका था, फिर भी उसने बुद्धिमत्तापूर्वक अफगान नरेश के साथ सन्धिवार्ता जारी रखी।

अफगान नरेश ने अलीगढ़ में बैठकर भावी संघर्ष की तैयारी में हिन्दुस्तान की विभिन्न राजनैतिक शक्तियों को मराठों के विरुद्ध अपने झण्डे के नीचे एकत्र करने के प्रयास तेज़ कर दिए। जयपुर के राजा माधोसिंह ने शाह के प्रति पहले से ही अपनी वफ़ादारी प्रदर्शित कर दी थी। नजीब के माध्यम से शुजाउद्दौला के साथ चल रही आशाजनक वार्तालाप पर उसे सन्तोष था। २६ अप्रैल को शाह ने जाटों के साथ ४५ लाख रुपया पेशकश की राशि तय की,[3] किन्तु जाट राजा

---

१. अब्दाली के पिछले आक्रमण के दौरान जहाँ पेशवा रघुनाथराव को निरन्तर जाट से झगड़ा न करने और कृपा एवं सहयोग प्रदर्शित करने की सलाह देता रहा (पेशवा दफ्तर, ।।, पत्र, ८०), वहीं रघुनाथराव एवं होल्कर ने पहले तो दिल्ली की ओर पहुँचने में देरी की, ताकि अब्दाली उनके शत्रु जाटों को कुचल कर निकल जाय, और बाद में जाट प्रदेश में (वैर के निकट) पहुँचते ही सूरजमल से चौथ देने की माँग की (मई १७५७ ई०)।

२. पेशवा दफ्तर, ।।, पत्र, १२१, पुरुषोत्तम महादेव हिंगणे का पत्र, १३ मार्च १७६० ई०।

३. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ११६

ने शाह का समर्थन करने अथवा उसके सम्मुख उपस्थित होने का कोई आश्वासन नहीं दिया। अब्दाली ने सूरजमल और इमाद का समर्थन पाने के उद्देश्य से नए शान्ति प्रस्तावों के साथ हाफ़िज़ रहमत खान को दूत बनाकर भेजा। २१ मई को मथुरा में इमाद, सूरजमल और हाफ़िज़ रहमत के बीच समझौता वार्ता प्रारम्भ हुई।[1]

सूरजमल के सामने विदेशी एवं धर्म विरोधी अब्दाली और अविश्वासी किन्तु स्वधर्मी मराठों में से एक को चुनने की कठिन समस्या थी। राष्ट्रीय एवं धार्मिक भावना ने उसे विदेशी शत्रु के मुक़ाबले देशी शत्रु का पक्ष ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया, किन्तु अन्तिम निर्णय के पूर्व वह भावी परिणामों का आकलन करके अपने राज्य की सुरक्षा के प्रति पूर्णतया आश्वस्त हो जाना चाहता था। अब्दाली से उसकी विशेष शत्रुता नहीं थी और सहज ही में वह उसका विश्वास प्राप्त कर सकता था। परन्तु विजय के बाद उसके व्यवहार के प्रति वह शंकालु था। उस परिस्थिति में यदि अब्दाली ने नजीब एवं हिन्दुस्तानी अफगानों के साथ मिलकर उसे नष्ट करने का निश्चय किया, तो उसके लिए अपना राज्य बचाना कठिन हो जायगा। तब मराठे तो शत्रु होंगे ही, अन्य छोटे-मोटे राज्य अब्दाली की शक्ति से आतंकित होकर उसका साथ देने का खतरा नहीं उठायेंगे। इसके विपरीत विजयी मराठों के साथ अगर उसकी शत्रुता पुनः प्रारम्भ हो जाती है, तो १७५४ ई० की तरह वह अपने ही बलबूते पर जाट राज्य की रक्षा कर सकता है और उनके विरुद्ध राजपूताना के राज्यों की सहायता एवं शुजाउद्दौला की मित्रता पर भी भरोसा किया जा सकता है। इसके अलावा मार्च में होल्कर द्वारा गंगाजल लेकर की गई सुरक्षा एवं मित्रता की पवित्र प्रतिज्ञा से मराठो के प्रति सूरजमल के विश्वास में निश्चित बढ़ोतरी हुई होगी। यही कारण था कि उसने वजीर इमाद को भी, जिसने अब्दाली के खेमे में जाने का मानस बना लिया था, इस पवित्र वचन के द्वारा रोका कि अफगानों की पराजय हो जाने पर मराठों की सहायता से वह वजीर का पद उसे ही दिलवाएगा, अतः दक्षिण से नई मराठा सेना के आ पहुँचने तक उसे प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया।[2] ८ जून को जैसे ही भाऊ के नेतृत्व में मराठा सेना के धौलपुर के निकट चम्बल पार करने का समाचार मिला, सूरजमल ने अब्दाली के साथ सन्धिवार्ता भंग करके अफगान दूत को लौटा दिया।[3]

---

१. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ११६; तारीखे हुसैन शाही, पृ० ५३७ (कानूनगो द्वारा उद्धृत, जाट, पृ० ११९) और शाकिर खान पृ० १०० से इसकी पुष्टि होती है।

२. कानूनगो के अनुसार यद्यपि इमाद निर्धन, शरणार्थी तथा शक्तिहीन था, किन्तु उसका समर्थन दोनों पक्षों ने उत्सुकता के साथ पाने का प्रयास किया, जो काफ़ी नैतिक महत्व रखता था और सूरजमल ने उसे मराठों के लिए प्राप्त किया, देखें, जाट, पृ० १२०-२१

३. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ११७

सूरजमल का भाऊ की सेना में शामिल होना

उधर पेशवा बालाजी बाजीराव द्वितीय ने अब्दाली के आक्रमण से उत्पन्न संकट का सामना करने और उत्तर भारत में मराठा सत्ता की पुर्नस्थापना के उद्देश्य से सदाशिवराव भाऊ[1] के नेतृत्व में एक शक्तिशाली सेना भेजने का निश्चय किया। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र १६ वर्षीय युवा विश्वासराव को नाममात्र का सेनापति बनाकर उसके साथ रवाना करते हुए अत्यधिक विश्वास एवं उच्च आकांक्षा से प्रेरित होकर इमाद के लेखक के अनुसार निम्नलिखित निर्देश दिया : "अपने इस भतीजे को हिन्दुस्तान साथ ले जाओ और साम्राज्य के सभी गैर अफगान शासकों को अपनी ओर मिला लेना। भवानी के आर्शीवाद से मैं भी शीघ्र ही एक दूसरी शक्तिशाली सेना के साथ तुम्हारी सहायतार्थ रवाना हो सकूँगा। मैं कन्धार को मानवरहित कर दूँगा और पृथ्वी से अफगान नस्ल को मिटा दूँगा उसके बाद शुजाउद्दौला एवं जाफ़िर अली खान (बंगाल) जैसे केवल एक दो मुसलमान बच रहेंगे। अगर उन्होंने भी शत्रुता दिखाई, तो उनका अस्तित्व भी समाप्त कर दिया जायगा, यदि उन्होंने समर्पण कर दिया, तो हम उन्हें परकटे कबूतर की भाँति रखेंगे। तब विश्वासराव को सिंहासन पर बिठाकर मैं तीर्थयात्रा करने जाऊँगा।[2] १४ मार्च १७६० ई० को भाऊ लगभग ३०,००० सेना के साथ पटदूर[3] से रवाना हुआ।[4] मार्ग में स्थान-स्थान पर मित्र सेनाएँ इसमें शामिल होती गई, जिससे पानीपत के मैदान तक पहुँचते-पहुँचते इसकी संख्या लगभग एक लाख हो गई थी।

८ जून १७६० ई० को भाऊ ने धौलपुर के निकट चम्बल पार की और जाट प्रदेश की सीमा लगते ही उसने अपनी सेना को कठोर चेतावनी जारी की कि कल से वे न तो किसी गाँव को आग लगाएँगे और न उस प्रदेश के निवासियों को परेशान करेंगे।[5] मराठा सेना ने चम्बल के उत्तरी तट पर पहुँचकर आगरा से लगभग २० मील दक्षिण की ओर गम्भीरी नदी के निकट डेरा किया, जहाँ १३ जुलाई तक उनका पड़ाव रहा। १८ जून के लगभग मल्हार आकर भाऊ से मिला[6]। भाऊ ने उसे सूरजमल को लाने के लिए एक पत्र देकर भेजा। मार्च में हुए समझौते के बाद सूरजमल की होल्कर के साथ वैसी ही घनिष्ठता एवं मैत्री क़ायम हो गई थी, जैसी पहले सिन्धिया परिवार के साथ थी। मल्हार जब कुम्हेर पहुँचा तो सूरजमल ने अपनी मैत्री एवं सहायता का पूरा विश्वास दिलाते हुए कहा, "आप मेरे भाई हैं,

---

१. यह बाजीराव प्रथम के छोटे भाई चिमनाजी अप्पा का पुत्र था।
२. इमाद, पृ० ७८; कानूनगो, जाट पृ० १२३
३. जालना से २७ मील दक्षिण पूर्व में
४. म० न० इ० ।।, पृ० ४३४-३५
५. पेशवा दफ्तर, ।।, पत्र, १२६
६. सरकार, पतन, ।।, पृ० १५३-५४

मैं सभी प्रकार से आपका हूँ। ईश्वर की कृपा से मारूं या मरूं, आप जो कहेंगे वह पूरा करूंगा, चिन्ता न करें।" श्री एठले को प्राप्त एक दूसरी भाऊ वखर से पता चलता है कि अब्दाली के विरुद्ध भावी युद्ध की रणनीति पर विचार विमर्श के दौरान दोनों सरदारों में काफ़ी मतैक्य पाया गया और दोनों ने युद्ध का संचालन अपने हाथों में लेने का निश्चय किया। तदनुसार होल्कर ने कुम्हेर से ही भाऊ को पत्र लिखा कि, आप फ़ौज के साथ इधर आ जावें, मैं और सूरजमल मिलकर अब्दाली पर आक्रमण करने के लिए चले जायेंगे।[१]

परन्तु भाऊ ने बलवन्तराव मेहेनडले को भेजकर उनके प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए उनसे अपने डेरे पर ही आने का आग्रह किया।[२] फलस्वरूप सूरजमल ३० जून को होल्कर के साथ भाऊ के पास पहुँचा।[3] भाऊ ने दो मील आगे बढ़कर अपने महत्व-पूर्ण सहयोगी का सम्मान किया। मल्हार राव होल्कर और जनकोजी सिन्धिया ने इस अवसर पर शपथ लेकर सूरजमल को उसकी सुरक्षा का पक्का आश्वासन दिया और फिर भाऊ से उसका परिचय कराया। बाद में वजीर इमाद उल मुल्क भी सूरजमल के माध्यम से भाऊ से मिला।[४] सूरजमल अपने ८,००० जाट सैनिकों के साथ मराठा सेना में सम्मिलित हो गया।

---

१. भाऊ साहेबांची दूसरी वखर, वि० एठले द्वारा संग्रहित, (सीतामऊ प्रतिलिपि), पृ० ८-१०; तारीखे इब्राहीम खान से इस बात की पुष्टि होती है कि भाऊ के आदेश से होल्कर व जनकोजी सूरजमल को लेने के लिये गए थे, इलियट, VIII, पृ० २०४

२. सूरजमल व होल्कर ने भाऊ को अनेक प्रकार से समझाते हुए निवेदन किया कि वह कुम्हेर में रुके और सेना उनके साथ भेज दें और वे गिलच्या (दुर्रानी) को पराजित कर उसका सिर काटकर उसके पास ले आयेंगे, परन्तु आपको प्रयाण नहीं करना चाहिए। इस पर भाऊ ने जवाब दिया, "जब तक मैं स्वयं नहीं जाता हूँ, तब तक कार्य पूरा नहीं होता है। मैं परशुराम का अवतार हूँ, मेरे सामने गिलच्या क्या बड़ा आदमी है?"........इस पर सब सरदारों ने कहा, आप हमारे स्वामी है, आपका आदेश हमारे लिए प्रमाण है। भाऊ वखर, दूसरी. पृ० ११-१२

३. पुरन्दरे दफ्तर, I, पत्र, ३८७; १ जुलाई १७६० ई०, इस भेंट के समय ही सूरजमल ने होल्कर के माध्यम से भाऊ के साथ मराठा पक्ष में शामिल होने का विधिवत् समझौता किया था, देखें, पेशवा दफ्तर, II, पत्र, १२७, बापू जी बल्लाल फड़के के इसी पत्र से पता चलता है कि २७ जून को ही भाऊ के खेमे में यह निराशाजनक समाचार पहुँचा कि नजीब ख़ान व जहान खान शुजाउद्दौला को अपने पक्ष में करने में सफल हो गए है।

४. सियार, III, पृ० ३८२-८३; तारीखे मुजफ्फ़री, पृ० १८०; नूरुद्दीन, पृ० ३२ ब; तारीखे इब्राहीम खान, इलियट, VIII, पृ० २०४; भाऊ वखर, पृ० ११४

भाऊ व सूरजमल के बीच मतभेद

पानीपत के युद्ध के ठीक पूर्व अवध के नवाब शुजाउद्दौला का अब्दाली के पक्ष में जाना और भरतपुर के जाट राजा सूरजमल द्वारा मराठा पक्ष का त्याग, ऐसी निर्णायक घटनायें थीं, जिन्होंने युद्ध के परिणाम को मराठों से विमुख कर दिया था। अधिकांश इतिहासकारों ने सूरजमल द्वारा पानीपत के तृतीय युद्ध के ठीक पूर्व मराठा पक्ष त्याग देने का कारण भाऊ के साथ उसके गम्भीर मतभेदों का होना बतलाया है। वस्तुतः सूरजमल ने बहुत सोच-विचार के बाद अब्दाली-मराठा में से मराठा पक्ष ग्रहण करने का निर्णय लिया था। इसलिए मराठा पक्ष को त्यागने का उसका कोई नीतिगत कारण न होकर मात्र व्यक्तिगत कारण था, जो भाऊ के साथ उसके विरोधाभास के रूप में उत्पन्न हुआ था[1] और जो आगे चलकर इस सीमा तक बढ़ गया कि अन्ततः न चाहते हुए भी उसे विवश होकर मराठा पक्ष त्यागना पड़ा। दोनों के बीच विरोध का प्रथम लक्षण आगरा की युद्ध परिषद में प्रकट हुआ था।

आगरा की युद्ध परिषद में मतभेद

१४ जुलाई १७६० ई० को आगरा पहुँचने पर भाऊ ने मल्हार राव और सूरजमल के साथ जमुना का निरीक्षण किया और पानी की गहराई देखकर उसने पुरानी योजना छोड़ने का निर्णय किया जिसके अनुसार नदी को पारकर दोआब में गोविन्द बल्लाल के पास शक्तिशाली सेना भेजने का निश्चय किया गया था।[2] भाऊ ने जाटों को अपने थाने स्थापित करने की पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी और इस सम्बन्ध में गोविन्द बल्लाल को भी आवश्यक निर्देश दे दिए थे।[3] गहरे पानी के बावजूद दो-तीन हजार जाट सेना जमुना पारकर दोआब में पहुँच गई, किन्तु एक भी मराठा सवार जाटों का अनुसरण करके गोविन्द बल्लाल की सहायतार्थ नहीं पहुँच सका।[4] जमुना की बाढ़ के कारण भाऊ ने तुरन्त दिल्ली की ओर प्रयाण करने का निश्चय किया।

अब्दाली के विरुद्ध सैनिक रणनीति तय करने के लिए भाऊ ने आगरा में ही मराठा सरदारों की युद्ध परिषद की बैठक बुलाई, जिसमें जाट राजा सूरजमल को भी आमन्त्रित किया गया। स्वभाव एवं विचारों की भिन्नता के कारण भाऊ व

---

१. देखें, चान्दावत, 'सूरजमल जाट और सदाशिव राव भाऊ के बीच अनबन के कारणो की विवेचना,' राजस्थान भारती, भाग १६, अंक ४, अक्तूबर-दिसम्बर १६७७ ई०

२. सरकार, पतन, II, पृ० १५४

३. भाऊ द्वारा गोविन्द बल्लाल को लिखे गए पत्र, राजवाडे, I, पत्र, २१५, (८ जुलाई १७६० ई०) और पत्र, २१६ (१० जुलाई १७६० ई०)

४. राजवाड़े, I, पत्र, २१७, १६ जुलाई १७६० ई०

सूरजमल में मतभेद होना अनिवार्य था। जहाँ दम्भी तथा हठी भाऊ सूरजमल को एक साधारण जमींदार समझता था और होल्कर के साथ उसकी मित्रता को सन्देह एवं ईर्ष्या की दृष्टि से देखता था, वहीं सूरजमल और होल्कर को इस बात का अभिमान था कि उत्तर के सैनिक युद्धों की रणनीतियों में वे अधिक कुशल एवं अनुभवी हैं, तथा भाऊ इस मामले में नया है, अतः युद्ध संचालन की बागडोर उन्हें सौंप दी जानी चाहिए।[1] यही कारण था कि भाऊ ने जाट शक्ति के महत्व का सही मूल्यांकन नहीं किया और सूरजमल के ठोस एवं व्यवहारिक सुझावों के प्रति भी दुराग्रह अपनाया।

युद्ध परिषद की बैठक में जब भाऊ ने सूरजमल से अपनी सम्मति प्रकट करने को कहा, तो उसने कहा, "*यद्यपि मैं एक साधारण जमींदार हूँ और आप एक बड़े* राजकुमार, फिर भी प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार योजनाएँ बनाता है। यह एक महान शासक के विरुद्ध युद्ध है, जिसका समर्थन इस्लाम के सभी मुखिया कर रहे हैं। यद्यपि हिन्दुस्तान में शाह प्रवासी है, किन्तु उसके सारे अनुयायी इस देश के निवासी और बड़ी जमींदारियों के स्वामी हैं। अगर आप चतुर हैं, तो शत्रु चतुरतम है..............निस्सन्देह यह उचित होगा कि आप इस युद्ध का संचालन बहुत सावधानी से करें। आपके अनुमान के अनुसार अगर विजय समीर गाय की पूँछ पर बह रही है, तो यह माना जायगा कि वह आपके भाग्यशाली ललाट पर नियति की कलम से लिखी हुई थी। परन्तु युद्ध अवसरों का खेल है, जिसके दोनों पहलू होते हैं ....बुद्धिमतापूर्ण यह है कि न तो अत्यधिक विश्वास में रहा जाय और न ही अत्यधिक आराम में। उचित तो यह दिखाई देता है कि आप अपने स्त्री-बच्चों, आवश्यकता से अधिक असबाब एवं बड़ी तोपें चम्बल के पार झाँसी या ग्वालियर के क़िले में भेज दें और आप लोग हल्के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर शाह का मुक़ाबला करें। अगर विजयश्री हमें प्राप्त होती है, तो हमारे हाथ लूट का अत्यधिक माल आएगा। विपरीत परिणाम को स्थिति में हम परिवार तथा भारी सामान की चिन्ता से मुक्त होकर सफलतापूर्वक भाग सकेंगे। यदि इन्हें इतनी दूर भेजने के

---

१. भाऊ कैफियत का लेखक लिखता है कि होल्कर की उपस्थिति में सूरजमल ने भाऊ के समक्ष यह विचार रखा, "दिल्ली शहर का नियन्त्रण मुझे सौंप दें, गाजुदीखान को वज़ारत प्रदान करें और होल्कर, सिन्धिया तथा मैं मिलकर शत्रु पर आक्रमण करेंगे, आवश्यकतानुसार आप हमें कुमुक भेजिएगा।" परन्तु भाऊ ने यह सोचकर कि जाट होल्कर की सहमति से बोल रहा है, इस सुझाव को ठुकराते हुए कहा, "इस विषय में मुझे राजश्री नानासाहेब का आदेश चाहिए। वर्तमान में हम और तुम हस्तिनापुर जाएँगे।" काशीनाथ नारायण साने द्वारा सम्पादित भाऊ साहेब यांची कैफियत, पृ० ८-९

विचार को आप अव्यवहारिक समझकर विरोध करते हैं, तो मैं अपने चार अजेय दुर्गों में से कोई भी एक खाली करने को तैयार हूँ, जहाँ आप अपनी स्त्रियों एवं सामान को सुरक्षित छोड़ दे और सारी सुविधाएँ जुटा सकें, ताकि संघर्ष के निर्णायक क्षण में अपनी स्त्रियों की मान रक्षा के बारे में चिन्ता से आपका दिल भारी न हो और हाथ न कांपे। और अकाल की स्थिति में अनाज की रसद के लिए मार्ग अवश्य खुले रहने चाहिए, जिससे अन्न की कमी के कारण सेना कठिनाई में न पड़े। मेरी सेना के साथ आपके निर्देश का मैं इन्तजार करूंगा और चूँकि मेरा प्रदेश शत्रु की लूटमार से मुक्त होगा, इसलिए वहाँ से रसद आसानी से प्राप्त हो सकेगी''''''शाह के विरुद्ध राजाओं की भाँति आमने-सामने युद्ध लड़ने की अपेक्षा हल्की घुड़सवार सेना के साथ कज्जाक (गुरिल्ला) युद्ध किया जाय। वर्षा ऋतु आने पर दोनों पक्ष अपने-अपने स्थानों से हट नहीं सकेंगे और अन्त में शाह, जो हमारी तुलना में अलाभदायक स्थिति में होगा, निराश होकर अपने प्रदेश को लौट जायगा। इस प्रकार निराश अफगान आपको समर्पण कर देगा।"[1] जाट राजा ने भाऊ को यह सलाह भी दी कि सेना का एक डिवीजन पूर्व में और दूसरा लाहौर की ओर भेजा जाय, जो उन प्रदेशों पर आक्रमण करके दुर्रानी सेना को भेजी जाने वाली अनाज की रसद को काट दें।[2]

काशीराज लिखता है कि मल्हार राव सहित सभी मराठा सरदारों ने इस सलाह से सहमति व्यक्त करते हुए कहा, "तोपखाने की गाड़ियाँ शाही सेनाओं के लिए उपयुक्त हैं, किन्तु युद्ध का मराठा तरीक़ा लूटमार का है, और उनके लिए श्रेष्ठ मार्ग यही है वे उस तरीक़े का अनुसरण करें, जिसके वे अभ्यस्त रहे हैं। हिन्दुस्तान पर उनका वंशानुगत अधिकार नहीं रहा है और अगर वे उस पर नियंत्रण करने में सफल नहीं होते हैं, तो उनके लिए पुनः पीछे हटना अपयशकारी नहीं होगा। अतः सूरजमल की सलाह सर्वश्रेष्ठ है और उसके द्वारा सुझाई गई योजना निश्चित रूप से शत्रु को पीछे हटने के लिए मजबूर करेगी, क्योंकि इस देश में उनका

---

१. इमाद, पृ० १७९-१८० (कानूनगो, जाट, पृ० १२५-२७); काशीराज का मूल वृतान्त इमाद से प्रायः शब्दशः मिलता है, देखें एच० जी० रालिन्सन कृत अँग्रेजी अनुवाद 'एन एकाउण्ट ऑफ दि लास्ट बेटल ऑफ पानीपत', पृ० ६-७; तारीखे इब्राहीम ख़ान (इलियट, VIII, पृ० २०४) और बयान ए वाकया (कानूनगो, जाट, पृ० १२७ पा० टि०) संक्षेप में उपर्युक्त विवरण की पुष्टि करते हैं।

२. कानूनगो के अनुसार सूरजमल और मराठों ने पंजाब में अब्दाली के प्रमुख शत्रु सिक्खों और शुजाउद्दौला के शत्रु बनारस के राजा बलवन्तसिंह से सम्पर्क किया था, ताकि पंजाब व अवध से अब्दाली के शिविर में पहुँचने वाली रसद को काटा जा सकें, जाट, पृ० १२७-२८

कोई निश्चित अधिकार नहीं है। इसलिए वर्तमान में उनका उद्देश्य वर्षा शुरू होने तक समय निकालने का होना चाहिए, जब तक दुर्रानी निश्चित रूप से अपने प्रदेश को लौट जायगा।"[१]

सारे मराठा सरदारों की सर्वसम्मति के बावजूद भाऊ ने, जिसे अपनी सैनिक शक्ति एवं निजी योग्यता पर अत्यधिक विश्वास था, इस सलाह पर ध्यान नहीं दिया। उसने अपने जैसे महान राजकुमार के लिए जो पेशवा का भाई था, गुरिल्ला युद्ध प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझा। भाऊ ने जवाब दिया कि, "उससे निम्न लोगों ने इस देश में सैनिक प्रतिष्ठा अर्जित की थीं, और उसके लिए, जो कि उच्च था, यह शिकायत कभी नहीं रहनी चाहिए कि रक्षात्मक युद्ध करते हुए उसने अपयश के अलावा कुछ नहीं पाया।" भाऊ ने होल्कर की समझ एवं कार्यों की भर्त्सना करते हुए जाट राजा के बारे में कहा कि, "सूरजमल सिर्फ एक जमींदार है और उसकी सलाह उसके पद एवं क्षमता के अनुरूप ठीक है, किन्तु उस जैसे सर्वोच्च व्यक्ति के विचारार्थ मूल्यवान् नहीं है।"[२]

काशीराज आगे लिखता है कि अनुभवी एवं बुद्धिमान लोगों को इस व्यक्ति (भाऊ) में हठ एवं अहंकार देखकर आश्चर्य हुआ, जिसने पूर्व में हमेशा बहुत सतर्कता एवं विवेक प्रदर्शित किया था, जैसा कि भाऊ ने इस अभियान तक किया था और यह निष्कर्ष निकाला कि भाग्य ने उनके कार्य की विफलता निश्चित कर दी है। प्रत्येक व्यक्ति उसके उग्र एवं कटु भाषणों से विरक्त हो गया था और वे आपस में कहने लगे कि यह अच्छा है कि यह ब्राह्मण एक बार पराजय का सामना करे, चाहे कोई भी प्रतिफल हमें स्वीकार करना पड़े?[३]

यह सम्भव है कि भाऊ युद्ध के नवीन ढंग का अनुसरण करना चाहता था,[४] किन्तु उसने जिस तरह से सूरजमल[५] और होल्कर[६] का अपमान किया और अपने दम्भ एवं हठ में उनकी सलाह की उपेक्षा की,[७] वह भावी संघर्ष के प्रति एक श्रेष्ठ

---

१. काशीराज, पृ० ७-८; इमाद (पृ० १८०-१८१) से इसका समर्थन होता है।

२. काशीराज, पृ० ८; इमाद, पृ० १८०-१८१

३. काशीराज, पृ० ८

४. शेजवल्कर, पृ० ८३

५. काशीराज और इमाद के कथन की पुष्टि करते हुए वैण्डल भी कहता है कि भाऊ ने सूरजमल का एक किसान कहकर अपमान किया (पृ० ८१), यद्यपि सरकार इस पर सन्देह व्यक्त करते हैं, देखें, पतन, II, पृ० १५६

६. किनकेड एवं पारसनीय लिखते हैं कि भाऊ ने होल्कर को निम्न कुल का बतला कर अपमान किया, ए हिस्ट्री आफ दि मराठा पीपुल, जि० III, पृ० ३३७

७. वाकया ए होल्कर, पृ० १० ब

सेनापति की नीति एवं व्यवहार के विषय में प्रश्न चिन्ह अवश्य लगाता है। मराठा इतिहासकार ग्रान्ट डफ के अनुसार भाऊ ने सूरजमल के प्रस्ताव का विरोध इसलिए किया क्योंकि वह होल्कर का विरोधी था और जो होल्कर तथा जाट के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों के कारण दुराग्रह रखता था।[1] भाऊ के अनुचित व्यवहार से सूरजमल को अत्यधिक ठेस पहुँची और वह उससे सम्बन्ध विच्छेद को उतारू हो गया, किन्तु होल्कर व सिन्धिया ने उसे शीघ्रता न करने और परिस्थितियों के अनुसार चलने की सलाह देकर किसी तरह शान्त किया।[2] दूसरी ओर इन मराठा सरदारों ने भाऊ को भी जाट समर्थन के महत्व एवं प्राथमिकता से अवगत कराते हुए उसे धैर्य अपनाने की सलाह दी। इस पर भाऊ ने सूरजमल के सामने जमुना जल लेकर भविष्य मे उसके उचित परामर्श पर ध्यान देने का आश्वासन दिया।[3] इस प्रकार होल्कर व सिन्धिया के आग्रह पर सूरजमल सारी बात भुलाकर उनकी सफलता के लिए कार्य करने लगा।

दिल्ली पर मराठा अधिकार

१६ जुलाई को भाऊ की सेना आगरा से रवाना होकर मथुरा पहुँच गई।[4] यहाँ अब्दुनबी की मजिस्द के दृश्य ने भाऊ के क्रोध को भड़काया। भाऊ ने सूरजमल से कहा, "तुम हिन्दू हो फिर भी तुम्हारे प्रदेश में यह मस्जिद इतने लम्बे समय से क्यों खड़ी है ?" सूरजमल ने, जो मराठों के हिन्दू पद पादशाही के सिद्धान्त की तुलना में बहुत उदारवादी था और राजनैतिक औचित्य के अनुसार नीति एवं व्यवहार अपनाए जाने में विश्वास रखता था, उत्तर दिया, "श्रीमन्त काफ़ी समय से हिन्दुस्तान की भाग्य देवी वेश्या की तरह चंचल हो चुकी है, आज रात्रि वह एक व्यक्ति की भुजा में है, तो कल किसी दूसरे व्यक्ति का आलिगन करती है। अगर मुझे इस बात का पक्का भरोसा हो जाय कि मैं आजीवन इस क्षेत्र का मालिक रहूँगा, तो मैं इस मस्जिद को भूमिसात् कर दूँगा। किन्तु इसका क्या लाभ होगा, अगर आज मैं इस मस्जिद को गिरा दूँ और कल मुसलमान आकर महान् मन्दिरों को नष्ट करके, एक के स्थान पर चार मस्जिदें खड़ी कर दे ? चूँकि अब आप स्वयं यहाँ आ गए हैं, अतः अब ये मामले आपके हाथ में है।" इस पर भाऊ ने कहा, "इन अफगानों को पराजित करने के बाद मैं प्रत्येक स्थान पर मस्जिदों के खण्डहरों पर मन्दिरों का निर्माण करवाऊंगा।"[5]

---

१. ग्रान्ट डफ, हिस्ट्री आफ दि मराठाज़, I, पृ० ५१६
२. काशीराज, पृ० ८
३. भाऊ बखर, पृ० ११७
४. राजवाडे, I,पत्र, २१७
५. वाकया ए आलमगीर सानी पर आधारित कानूनगो का विवरण, जाट, पृ० १२४-२५ परन्तु किसी अन्य स्रोत से इसकी पुष्टि नहीं होती है।

मथुरा से भाऊ ने सूरजमल, इमाद, होल्कर, सिन्धिया और बलवन्त गणेश मेहेनडले के नेतृत्व में अग्रिम सेना दिल्ली पर अधिकार करने के लिए भेज दी। २३ जुलाई को इस सेना ने दुर्ग के अलावा, राजधानी पर अपना अधिकार कर लिया।[1] इस समय शाहजहाँनाबाद दुर्ग के स्वामी याक़ूब अली खान की सहायतार्थ अब्दाली ने अनेक सैनिक टुकड़ियाँ भेजी, किन्तु जमुना की बाढ़ के कारण सभी प्रयास विफल रहे। २९ जुलाई को भाऊ भी दिल्ली पहुँच गया। दुर्ग के चारों ओर इब्राहीम ख़ान गर्दी की भीषण गोलाबारी और अब्दाली की तरफ़ से रसद न आ पाने के कारण निराश याक़ूब अली ने सन्धि की याचना की। भाऊ ने उसे सुरक्षित अपने स्वामी के पास जमुना पार जाने की अनुमति दे दी। इस प्रकार संभवतः २ अगस्त (१७६० ई०) को दिल्ली के क़िले पर मराठा सेना का अधिकार हो गया।[2]

क़िले पर अधिकार होते ही, उसके नियन्त्रण को लेकर भाऊ और सूरजमल के बीच एक बार पुनः विरोध सामने आया। दुर्ग पर विजय के साथ ही जाट राजा ने इमाद की सहमति से अपने लोगों को तैनात करके दुर्ग के भीतर अपनी व्यवस्था स्थापित कर दी। इससे भाऊ बहुत क्रुद्ध हुआ और उनसे शाही तख्त एवं क़िला देखने का निश्चय किया। भाऊ ने विश्वासराव, दमाजी गायकवाड और अन्य विश्वासपात्र लोगों के साथ क़िले में प्रवेश किया और क़िले के अन्दर से जाटों के बन्दोबस्त को हटाकर स्वयं के लोगों को नियुक्त कर दिया। उसने अन्दर से एक राजकुमार को बुलाकर सिंहासन पर बिठाया और दरबार लगाया। इस प्रकार क़िले का नियन्त्रण अपने लोगों को सौंपकर भाऊ अपने डेरे में लौट आया। इमाद और जाट ने, जो क़िले पर अपना नियन्त्रण क़ायम करना चाहते थे, भाऊ को सन्देश भेजा, "शाही क़िले की सुरक्षा उनका अधिकार है, अतः उसे अपने आदमी वहाँ से हटा देने चाहिए।" अली मुहम्मद खान लिखता है कि दम्भ और हठ ने भाऊ के मस्तिष्क में घोंसला बना दिया था। भाऊ ने उनके प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए कुछ ग़लत व अनर्गल शब्दों का प्रयोग किया।[3]

---

१. नूरुद्दीन, पृ० ३३ अ; तिथि तारीखे मुज़फ़्फ़री से, पृ० १८०

२. सियार, III, पृ० ३८४; काशीराज, पृ० ६; राजवाडे, I, पत्र, २२२ व २२४; भाऊ बखर, पृ० ११४; दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ११८; तारीखे मुज़फ़्फ़री के अनुसार दुर्ग का समर्पण करके याक़ूब २ अगस्त को शाह की सेना में शामिल हो गया था (पृ० १८०-१८१); अली मुहम्मद ख़ान लिखता है कि याक़ूब ने वजीर व सूरजमल के माध्यम से कठोर प्रतिज्ञा की और बाहर निकल आया, मीरात-ए-अहमदी, पृ० ६०७

३. यह वृतान्त मीरात ए अहमदी से लिया गया है (पृ० ६०७-६०८); भाऊ कैफियत का लेखक लिखता है कि दिल्ली जीतने के बाद सूरजमल जाट ने पहले की तरह शहर अपने अधीन करने की शर्त रखी, किन्तु उसकी बात नहीं मानी गई (पृ० १०)।

दीवाने आम की छत

दुर्ग पर अधिकार हो जाने के बाद भाऊ ने शाही महलों की लूट के समय दीवाने आम की चाँदी की छत तुड़वाने का विचार होल्कर, सिन्धिया व सूरजमल के सामने रखा। इसका कारण यह था कि भाऊ दक्षिण से दो करोड़ रुपये लेकर आया था, जो समाप्त हो चुके थे और सेना का वेतन चुकाने के लिए उसे धन की अत्यन्त आवश्यकता थी।[1] किन्तु भाऊ के इस विचार ने सूरजमल के दिल पर तत्काल आघात किया और उसने शाही प्रतिष्ठा की इस अन्तिम निशानी को बचाने के लिए भाऊ से प्रार्थना की, "भाऊ साहब दीवाने आम बादशाह के दरबार करने का स्थान है, इसकी बड़ी इज्ज़त है, नादिरशाह और अहमदशाह ने भी इस छत को हाथ नहीं लगाया। हम अपनी आँखों से इस वस्तु को मिटते हुए नहीं देख सकते। इससे हमारी प्रतिष्ठा नहीं बढ़ेगी, बल्कि विश्वासघात का लांछन ही लगेगा। कृपया मेरी इस विनम्र प्रार्थना पर उचित ध्यान दें। अगर आपके पास धन की कमी है, तो आप केवल मुझे आदेश दे दीजिए। मैं आपको पाँच लाख रुपये देने को तैयार हूँ।"[2] भाऊ ने इस परामर्श पर कोई ध्यान न देते हुए ६ अगस्त को चांदी की यह छत तुड़वा डाली, जिसको गलाने से उसे लगभग ९-१० लाख रुपये मिले।[3] सूरजमल इस समय अपने ऊपर और अधिक नियन्त्रण नहीं रख सका और भाऊ के पास जाकर कहने लगा, "भाऊ साहब आपने मेरी उपस्थिति में शाही तख्त की पवित्रता को नष्ट किया है, जिससे मेरे चरित्र पर भी लाँछन लगा है। जब कभी मैं किसी विषय पर प्रार्थना करता हूँ, तो आप उससे असहमति प्रकट करके उसे

---

१. पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र, २५७-२५८
२. भाऊ बखर, पृ० ११६-११७
३. सियार का लेखक इस घटना का विवरण देते हुए लिखता है कि दीवाने आम की चांदी की छत को उखाड़ देने के बाद उन्होंने (मराठों) पवित्र वस्तुओं का सम्मान किए बिना अपने अधार्मिक हाथ सोने व चांदी के बर्तनों पर डाले, जो धर्मार्थ कार्यों के उपयोग के लिए थे। उन्होंने शेख़ निजामुद्दीन तथा मुहम्मद शाह के मक़बरे को भी नहीं छोड़ा, जिसकी धूपदानी, चिराग़ और अन्य सोने का सामान खींच लिया, और वह सब ढालने के लिए भेज दिया, सियार, III, पृ० ३८५-८६; जदुनाथ सरकार के अनुसार इससे भाऊ को नौ लाख रुपये मिले, पतन, II, पृ० १६५; मीरात ए अहमदी के अनुसार दस लाख रुपये मिले, पृ० ९०८; तारीखे इब्राहीम ख़ान (इलियट, VIII, पृ० २०५) और काशीराज (पृ० ९) के अनुसार १७ लाख रुपये मिले, तारीखे मुज़फ्फ़री का लेखक कहता है कि सूरजमल और इमाद ने शाही महलों की लूट एवं विनाश लीला में भाग नहीं लिया था (पृ० १८१)।

ठुकरा देते हैं। हम अपने दिल में अपने को हिन्दू मानते हैं, क्या आप जमुनाजल का इतना ही आदर करते है. जिसे आपने अपने हाथ मे लेकर मेरे परामर्श पर उचित विचार करने का वचन दिया था।"[1]

वज़ारत पर मतभेद

१८ जुलाई को जब शुजाउद्दौला दुर्रानी से मिल गया, तो भाऊ ने भवानी शंकर पण्डित को उसके पास इस उद्देश्य से भेजा कि उसे कम से कम तटस्थ किया जा सके।[2] १ अगस्त को जब मराठे दिल्ली दुर्ग को घेरे हुए थे, तभी जमुना किनारे अब्दाली व मराठों के बीच सन्धि-वार्ता प्रारम्भ हो चुकी थी। शुजाउद्दौला को वज़ीर बनाने और जवान बख्त को सम्राट बनाने के प्रस्ताव पर सहमति के बारे में जैसे ही सूरजमल को पता चला, वह तुरन्त अप्रसन्न होकर इमाद के साथ तुग़लकाबाद की ओर चल पड़ा।[3] अगले दिन २ अगस्त को मराठे सूरजमल और इमाद को मनाकर वापस लाए।[4] १२ अगस्त को भाऊ ने नारोशंकर को दिल्ली का क़िलेदार व सूबेदार नियुक्त कर दिया।[5] भाऊ इस समय इमाद को वज़ारत दिए जाने के अपने समझौते से बचना चाहता था, अतः उसने अप्रत्यक्ष रूप से वज़ीर के कार्यों की देखभाल नारोशंकर को सौंप दी थी। सूरजमल ने वज़ारत का आश्वासन देकर ही इमाद को मराठा पक्ष के लिए रोक रखा था और मराठा पक्ष में विधिवत् शामिल होने के पूर्व जाट और मराठों के बीच निश्चित रूप से इस प्रश्न पर सहमति हो चुकी थी। इसी कारण जब भाऊ ने शुजाउद्दौला को वज़ीर बनाने के सम्बन्ध में समझौता करना चाहा, तो सूरजमल और इमाद ने अपना विरोध प्रदर्शित किया। भाऊ की दृष्टि से यह उचित हो सकता है कि वह शुजा को अपने पक्ष में मिलाने के उद्देश्य से अथवा अब्दाली के साथ शान्ति समझौते के सन्दर्भ में वज़ारत के पद को रिक्त रखकर आवश्यकतानुसार उसका उपयोग करें। किन्तु सूरजमल की दृष्टि से यह उसको दिए गए आश्वासन के प्रति विश्वासघात होता और शान्ति समझौते के

---

१. भाऊ बखर, पृ० ११६-११७; शेजवलकर भाऊ के इस कार्य को राजनैतिक दृष्टि से हानिकारक मानते हुए लिखते हैं कि भाऊ यह कार्य करने वाला प्रथम व्यक्ति नहीं था, पहले भी ऐसा हुआ था, किन्तु भाऊ के व्यवहार के प्रति सभी भड़क उठे, देखें, पानीपत, पृ० ८८

२. शुजाउद्दौला, I, पृ० ८८; भाऊ व शुजाउद्दौला के बीच दूतवार्ता और अब्दाली के साथ समझौता वार्ता के सम्बन्ध में प्रामाणिक विवरण के लिए देखें, काशीराज, पृ० १३-१६

३. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ११८

४. वही, पृ० ११६

५. सरकार, पतन, II, पृ० १६५

सम्बन्ध में वज़ारत के निर्णय को तभी बदला जा सकता था, जब स्वयं इमाद और सूरजमल को विश्वास में लिया जाता। इस कारण वज़ारत के प्रश्न पर जाट राजा का भाऊ के प्रति शंकालु होना स्वाभाविक था।

सूरजमल ने ज़ोरदार शब्दों में भाऊ से शिकायत करते हुए कहा कि वज़ारत पर इमाद का अधिकार है और अनुचित तरीक़ों से नारोशंकर को वज़ीर बनाना इमाद का ही नहीं, मेरा भी अपमान है। होल्कर व सिन्धिया ने भी उसका समर्थन किया।[१] किन्तु भाऊ पर इस विरोध का कोई प्रभाव नहीं हुआ। निराश सरदारों ने भारी चिन्ता के स्वर में यह टिप्पणी की कि, "हिन्दुस्तान में हमारी प्रतिष्ठा जा चुकी है और आगे क्या होगा?" सूरजमल ने भी अपने डेरे में लौटकर अपने राजनैतिक सलाहकार रूपराम कटारी से विचार विमर्श करते हुए कहा कि भाऊ ने गाज़ीउद्दीन इमाद को वज़ारत प्रदान करने के उनके संयुक्त एवं ईमानदारी पूर्ण निवेदन को ठुकरा दिया है। अब यहाँ रुकना ठीक नहीं है, कोई अनिष्ट हो सकता है। यह बुद्धिमतापूर्ण होगा कि हम किसी तरह यहाँ से बच निकलें।[२] चिन्तातुर जाट राजा इस प्रकार अब मराठा शिविर को छोड़ देने पर गम्भीरता से विचार करने लगा।

सूरजमल द्वारा मराठा पक्ष का त्याग

राजधानी की तुच्छ विजय से गर्वित भाऊ ने शुजा के सन्धि प्रस्तावों को अब्दाली की कमजोरी समझा। लगभग पूरे अगस्त व सितम्बर माह में शुजा व नजीब भाऊ के साथ सन्धि वार्ता चलाते रहे, किन्तु भाऊ की बढ़ी-चढ़ी मांगों के कारण कोई समझौता नहीं हो रहा था।[३] दूसरी ओर अब्दाली के डेरे से भाऊ को इस समय निरन्तर ऐसे समाचार मिलते रहे, जिससे अपनी शक्ति और सफलता के प्रति उसका विश्वास एवं अहंकार निरन्तर बढ़ता गया।[४] यही कारण था कि उसने बढ़ते हुए आर्थिक एवं खाद्यान्न संकट[५] की गम्भीरता और परिणामों का सही आकलन नहीं किया और सूरजमल के साथ बढ़ते हुए मतभेदों पर विवेकसंगत एवं दूरदर्शिता पूर्ण रूख़ न अपनाकर भाऊ ने उसके साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया।

---

१. कानूनगो, जाट, पृ० १३०

२. भाऊ बखर, पृ० ११५

३. इस सम्बन्ध में देखें, भाऊ द्वारा पेशवा को लिखा गया पत्र, म० न० इ०, II, पृ० ४३६

४. राजवाडे, I, पत्र, २३६, २४६ व २४७

५. भाऊ के आर्थिक साधन एवं कठिनाइयों के विषय में विस्तृत विवरण के लिए देखें, सरकार, पतन, II, पृ० १६२-६४

जब दीवाने आम की छत से प्राप्त चाँदी से भी काम न चला तो भाऊ ने सोने चाँदी के बर्तन तुड़वाने प्रारम्भ कर दिए,[1] इस कारण सूरजमल ने भावी युद्ध के परिप्रेक्ष्य में भाऊ में एक महान् सेनापति के स्थान पर लोभी लुटेरे के गुण अधिक देखे। उसे ऐसा दिखाई देने लगा कि मराठों का अन्त अच्छा नहीं होगा। सितम्बर के तीसरे सप्ताह में जब भाऊ ने कुंजपुरा पर आक्रमण करने पर विचार के लिए युद्ध परिषद की बैठक बुलाई, तो जाट राजा को अपनी उग्र भावनाएँ अभिव्यक्त करने का अच्छा अवसर मिला। सूरजमलने कटु शब्दों में भाऊ से कहा, "आपने मेरी इच्छा के विरुद्ध चाँदी की छत को तुड़वा दिया, उसे उसके पुराने स्थान पर लगवा दीजिए..................गाज़ीउद्दीन को वज़ारत वापस कर दी जाय, जिस पर कि उसका अधिकार है। सिन्धिया, होल्कर और मैं इस बात पर बहुत दुःखी हैं और इससे हमारे मान और नाम पर असर पड़ा है। इस समय से अगर आप हमारी छोटी छोटी प्रार्थनाओं पर अधिक ध्यान देने की कृपा करें, तो मैं और मेरे सारे साधन आपके आदेश पर हैं। आपको दिल्ली नहीं छोड़नी चाहिए और यहीं से अपनी योजनाओं को क्रियान्वित कीजिए। मेरी सलाह है कि इस समय आप कुंजपुरा के मामले में न उलझें।"[2]

परामर्श के इन हितकारी किन्तु अप्रिय शब्दों ने धधकती अग्नि में घी का काम किया। 'क्या!' अभिमान एवं तिरस्कार के स्वर में भाऊ ने जवाब दिया, 'क्या दक्षिण से मैं तुम्हारी शक्ति पर विश्वास करके आया हूँ। मैं जो चाहूँगा, करूंगा। तुम यहाँ ठहरो अथवा अपने स्थान को लौट जाओ। अब्दाली को परास्त करके मैं तुम्हें भी देख लूँगा।"[3] इन कठोर शब्दों को सुनकर सिन्धिया व होल्कर घबराहट में शांत व चुप बैठे रहे। अपमानित सूरजमल मराठा डेरे में आने की स्वयं की मूर्खता को कोसते हुए सभा भवन से उठकर चला गया। इसके बाद मराठा डेरे में सूरजमल की स्थिति बहुत संकटप्रद हो गई थी। अप्रत्यक्ष रूप से वह बन्दी हो चुका था और उसकी सुरक्षा सिन्धिया व होल्कर की निष्ठा पर निर्भर थी।[4]

---

१. सियार, III, पृ० ३८५; अली मुहम्मद खान लिखता है कि दीवाने आम की छत से प्राप्त चाँदी खर्च कर देने के बाद मराठे भूखे काफिरों की तरह, शहर को खाली मकान की तरह पाकर, अमीरों व प्रतिष्ठित लोगों के घरों में घुस पड़े, और जो मिला वह ले गए। छिपे हुए धन के सन्देह में उन्होंने अनेक मकानों को खोद डाला, मीरीत ए अहमदी; पृ० ९०८

२. भाऊ बखर, पृ० ११७

३. वही,

४. कानूनगो, जाट, पृ० १३३-१३४

भाऊबखरके इस वृतान्त की पुष्टि मीरात ए अहमदी से होती है, जो लिखता है, "वज़ीर व सूरजमल भाऊ के व्यवहार से छटपटाने लगे, जिनकी कमान में १०-१२ हज़ार घुड़सवार थे। शाही सेना केवल वज़ीर की थी और उसकी स्वयं की शक्ति सूरजमल के कारण थीं। भाऊ ने उनसे छुटकारा पाने की योजना बनाई और दिशा बदल दी। उसने पन्द्रह हज़ार मराठा घुड़सवार उसके (सूरजमल के) डेरे के चारों ओर घेरे की तरह नियुक्त कर दिए।"[१]

इसी समय सूरजमल ने अब्दाली के डेरे में अपने परम्परागत मित्र शुजाउद्दौला से भी सलाह मांगी कि उसे क्या करना चाहिए।[२] दूसरी ओर सिन्धिया व होल्कर ने, जिन्होंने जाट राजा की सुरक्षा की पवित्र शपथ ली थीं, चिन्तातुर होकर आपस में विचार-विमर्श किया, "हम अपना वचन देकर उसे यहाँ लाए हैं और अब भाऊ के उसके प्रति बहुत बुरे विचार हैं। बलवन्तराव तथा भाऊ ने सूरजमल को गिरफ्तार कर बन्दी बनाने और उसके डेरे को लूट लेने की गुप्त योजना बना ली है। इसलिए सूरजमल को किसी तरह से यहाँ से सुरक्षित भेज दिया जाय, ताकि विश्वासघात का दोष हम पर न लगे, भले ही स्वामी हमारे साथ कुछ भी करें।" इसके बाद उन्होंने जाट वकील रूपराम कटारी को बुलाकर उसे सारी स्थिति समझाकर सूरजमल को उसी रात्रि चुपचाप मराठा डेरे से निकल जाने की सलाह दी।[3]

काशीराज के अनुसार लगभग इसी समय शुजाउद्दौला ने सूरजमल को मराठा शिविर छोड़ देने और अपने प्रदेश को लौट जाने की सलाह लिखी, जो उसकी स्वयं की सलाह से मेल खा गई।[४] मीरात ए अहमदी का लेखक इसका समर्थन करते हुए दोनों के बीच निश्चित एक योजना का विवरण देता है, जिसके अनुसार एक निश्चित समय पर शुजाउद्दौला नदी के दूसरे किनारे से गोलाबारी शुरू करके एवं शोरगुल पैदा करके सूरजमल के मराठा शिविर मे निकल जाने का अवसर उत्पन्न कर देगा।[५]

उधर रूपराम कटारी ने अपने डेरे में लौटकर मराठा सरदारों की सलाह से

---

१. मीरात ए अहमदी, पृ० ६०८

२. काशीराज, पृ० १४; मीरात ए अहमदी से इसका समर्थन होता है (पृ० ६०८)।

३. भाऊ बखर, पृ० ११८; इमाद (पृ० १८१) से भाऊ की इस योजना का समर्थन होता है, जो लिखता है कि उसने, "सूरजमल पर निगरानी के लिए सतर्कता दल की नियुक्ति कर दी थी और उससे मुक्ति के लिए वह होल्कर का ऋणी हुआ था।" कानूनगो, जाट, पृ० १३६ पा० टि०

४. काशीराज, पृ० १५

५. मीरात ए अहमदी, पृ० ६०८; परन्तु काशीराज इस सम्बन्ध में मौन है, इस कारण इस पर विश्वास करना कठिन है।

अपने स्वामी को अवगत कराया। जाट राजा ने इस समय अपने को दुर्रानी व भाऊ दो पाटों के बीच फंसा पाया। उसने रूपराम से कहा, "भाग्य से आज रात्रि को हम बच निकलने में सफल होते हैं तो हम भाऊ की शत्रुता में पड़ेंगे। संयोग से वह दुर्रानी को पराजित कर देता है, तो मेरा विनाश सुनिश्चित है। अगर वह अपनी योजना में गम्भीर है, तो मुझे कहीं शरण नहीं मिलेगी और न कोई मुझे बचाने की क्षमता दिखाएगा। भावी खतरे के भय से यदि मैं यहाँ रुकता हूँ, तो मैं बन्दी बन जाऊंगा। दोनों रास्ते कठिनाइयों से भरे हुए हैं, अब क्या करना चाहिए?" रूपराम ने इस पर कहा, "आप यह उक्ति जानते होगे कि किसी व्यक्ति की कुण्डली में से एक बुरे ग्रह योग को हटाने का अर्थ १२ वर्षों का नया जीवनदान माना जाता है। भाऊ और दुर्रानी दोनों समान रूप से शक्तिशाली और कठोर शत्रु हैं। कौन जानता है कि दोनो में से कौन सफल होगा? तब तक हम अपने स्वयं के स्थान में शान्त बैठकर अपने प्राणों की रक्षा कर सकते हैं। आगे हमारे भाग्य में क्या लिखा है, यह तो ज्ञात नहीं है, परन्तु ईश्वर की कृपा से अच्छा ही होगा। आप अभी से ही भविष्य का विचार करके, जो कि अनिश्चित है, क्यों परेशान होते हो? आगे क्या होने वाला है, इसे छोड़ो, किन्तु आज रात्रि को हमें अवश्य भागना है।"[1] इस प्रकार रूपराम के स्पष्ट दृष्टिकोण ने सूरजमल का सही मार्ग दर्शन किया।

भाऊ बखर के अनुसार रात्रि के तीन पहर बीत जाने पर जाटों ने चुपचाप अपने तम्बुओं को उखाड़ा, सामान बांधा, और सिन्धिया व होल्कर की सहायता से सूरजमल अपनी जाट सेना के साथ बदरपुर स्थित अपने डेरे से रवाना होकर शीघ्रता से कूच करते हुए प्रातः काल होते-होते सुरक्षित बल्लभगढ़ के अपने शक्तिशाली दुर्ग में पहुँच गया।[2] मीरात ए अहमदी का लेखक इस सम्बन्ध में कुछ भिन्न विवरण, जो कि अविश्वसनीय प्रतीत होता है, देते हुए लिखता है कि पूर्व निश्चित योजना के अनुसार, "शुजाउद्दौला ने नदी (जमुना) के दूसरे किनारे से गोलाबारी शुरू करके मराठों को रक्षात्मक युद्ध में व्यस्त कर दिया। दोनों ओर से भयंकर गोलाबारी से नदी के ऊपर बादल की तरह बारूद का धुँआ फैल गया। इस अवसर का लाभ उठाकर सूरजमल वज़ीर के साथ इस मौत की घाटी से निकलकर बल्लभगढ़ के अपने सुदृढ़ दुर्ग में चला गया।"[3]

किन्तु काशीराज जो कि शुजाउद्दौला के शिविर में उपस्थित था, और इस विषय में अधिक प्रमाणिक है, भाऊ बखर के वृतान्त की पुष्टि करते हुए लिखता है, "सूरजमल ने, जो दिल्ली से छः कोस दूर बदरपुर में डेरा डाले हुए था, मल्हारराव

---

१. भाऊ बख़र, पृ० ११८-११९
२. भाऊ बखर, पृ० ११९
३. मीरात ए अहमदी, पृ० ९०८

और अन्य सरदारों की सलाह पर, अपने शिविर के स्थान परिवर्तन के बहाने, अपना सारा सामान और डेरे के अनुयायियों को अपने प्रदेश की ओर रवाना कर दिया, और जब उसे उनके दस कोस का रास्ता पार किए जाने की सूचना मिली; तो सूरजमल ने भी अपने सैन्य दलों के साथ उनका अनुसरण किया और भाऊ को उसके निकल जाने की सूचना मिलने के पूर्व वह काफ़ी दूर जा चुका था।"[१]

भाऊ बखर के अनुसार जाट के ८ मील दूर निकल जाने पर होल्कर ने अपने दीवान गंगाधर तात्या को भाऊ के पास भेजकर सूचित किया कि सूरजमल किसी को कुछ कहे बिना चला गया है और उसने अपने सैनिक पीछा करने के लिए भेजे हैं, इसलिए भाऊ को भी अपनी सेना उनके साथ पीछा करने के लिए भेजनी चाहिए। जब पीछा करने वाले मराठा सैन्य दल कुछ बाज़ारों की लूटपाट करके वापस लौट आए, तब भाऊ ने क्रोध में अपने होंठ चबाते हुए कहा, "ईश्वर की इच्छा से अगर दुर्रानी हार गया तो, जाट की शक्ति कितनी है?"[२] काशीराज लिखता है कि भाऊ ने सिर्फ़ यह कहते हुए कि, "ऐसे मामूली जमींदारों से ऐसे ही आचरण की अपेक्षा थी" सूरजमल के पृथक होने के कारण पर कोई टिप्पणी नहीं की। इसके विपरीत भाऊ ने इस घटना को महत्वहीन मानते हुए इस बात पर प्रसन्नता प्रकट की कि जाट ने उसे उस स्थिति में नहीं छोड़ा, जबकि वह उस पर किसी महत्वपूर्ण सेवा के लिए विश्वास करता।[3]

---

१. काशीराज, पृ० १६

२. भाऊ बखर, पृ० ११६; कानूनगो, जाट, पृ० १३६

३. काशीराज, पृ० १६; सूरजमल द्वारा मराठा शिविर से निकल जाने के विषय में अन्य विवरण के लिए देखें, तारीख़े मुज़फ्फ़री (पृ० १८४) और तारीखे इब्राहीम खान, (इलियट, VIII, पृ० २०६) एक सा विवरण देते हुए लिखते हैं कि सूरजमल यह देखकर कि मराठों का अन्त अच्छा नहीं होने वाला है, एक रात्रि को भाऊ को सूचित किए बिना इमाद और अपनी सेना के साथ बदरपुर से बल्लभगढ़ के अपने दुर्ग में भाग गया। गुलाम हुसैन लिखता है कि सूरजमल को उनकी (मराठों) निर्लज्ज सामर्थ्य और क्रूर दृष्टता देखकर आघात पहुँचा था, अतः बिना छुट्टी लिए उसने उनके शिविर को छोड़ दिया और बल्लभगढ़ के अपने दुर्ग में पहुँच गया, सियार, III, पृ० ३८५; एक महत्वपूर्ण मराठा पत्र में जो भाऊ के डेरे से लिखा गया और जिसमें मराठा सेना की संकटप्रद स्थिति का लम्बा-चौड़ा वर्णन किया गया है, इस विषय में केवल इतना ही लिखा है कि, "जाट व गाज़ुदीखान हमारी तरफ़ थे, वे नाराज़ होकर चले गए।" पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र, २५८ (सम्भवतः सितम्बर १७६० ई० के अन्त में लिखा गया)

सूरजमल ने मराठा शिविर कब छोड़ा, इस सम्बन्ध में किसी समकालीन स्रोत से निश्चित जानकारी नहीं मिलती है। काशीराज के वृतान्त से जो कि समकालीन घटनाओं का प्रत्यक्षदर्शी गवाह था, ज्ञात होता है कि भाऊ द्वारा कुंजपुरा पर आक्रमण के पूर्व ही सूरजमल भाऊ के पक्ष को छोड़कर जा चुका था।[१] १० अक्तूबर को भाऊ ने शाह आलम द्वितीय को सम्राट, उसके ज्येष्ठ पुत्र जवानबख्त को राजप्रतिनिधि तथा शुजाउद्दौला को उसकी अनुपस्थिति में वजीर घोषित कर दिया था। इसके बाद वह शीघ्रता से कूच करता हुआ १६ तारीख को कुंजपुरा के सामने पहुँच गया और अगले दिन वहाँ पर उसका अधिकार हो गया।[२] १८ सितम्बर को भाऊ द्वारा गोविन्द बल्लाल को लिखे गए एक पत्र से स्पष्ट है कि उस दिन तक जाट भाऊ के साथ थे,[3] जबकि दिल्ली क्रानिकल्स से पता चलता है कि २४ सितम्बर को सूरजमल वल्लभगढ़ के दुर्ग में था। अतः सूरजमल द्वारा भाऊ के मराठा शिविर को त्याग देने की संभावित तिथि १८ व २४ सितम्बर १७६० ई० के बीच है।

मराठा इतिहासकार सरदेसाई ने सूरजमल द्वारा मराठा पक्ष त्यागने के अन्य सभी कारणों को कल्पित मानते हुए प्रमुख कारण यह माना है कि दिल्ली पर अधिकार होते ही सूरजमल ने यह मांग प्रस्तुत की कि उसे दिल्ली का शासक नियुक्त किया जाय, जिसे भाऊ ने ठुकरा दिया था।[५] शेजवल्कर भी इस मत का समर्थन करते हैं।[६] इन दोनों के इस मत का आधार भाऊ कैफियत जान पड़ता है। भाऊ कैफियत के इस विवरण की विश्वसनीयता सन्दिग्ध है कि सूरजमल ने भाऊ से यह मांग की कि, "दिल्ली शहर का नियन्त्रण मुझे सौंप दें।"[७] भाऊ कैफियत के इस कथन की पुष्टि किसी भी अन्य समकालीन स्रोत से नहीं होती। दिल्ली दुर्ग पर अधिकार सम्बन्धी मीरात ए अहमदी के विवरण[८] के सन्दर्भ में यदि

---

१. काशीराज, पृ १६
२. नूरुद्दीन, पृ० ३३ ब—३५ ब; तारीखे इब्राहीम खान, इलियट, VIII, पृ० २०६; तारीखे मुजफ्फ़री, पृ० १८५; सरकार, पतन, II, पृ० १६६-६७
३. राजवाड़े I, पत्र, २४४; सेलेक्ट कमेटी प्रोसिडिंग्स, ११ सितम्बर १७६० ई० (पृ० ६६) से पता चलता है कि १० सितम्बर तक जाट राजा मराठा सेना में था।
४. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० १२०
५. म०न०इ०, II, पृ० ४३८
६. शेजवल्कर, पृ० ८२ व ६२
७. भाऊ कैफियत, पृ० ८ व १०
८. मीरात ए अहमदी, पृ० ६०७

हम इस कथन की जाँच करें, तो हम यह पाते हैं कि जाट राजा ने इमाद की वज़ारत को पुर्नस्थापित करने के उद्देश्य से क़िले में वज़ीर के साथ-साथ अपने आदमी भी नियुक्त कर दिए थे, जिसे भाऊ ने पसन्द नहीं किया था। तब उन्होंने भाऊ को साफ़-साफ़ बता दिया था कि वजीर होने के नाते क़िले की व्यवस्था करना इमाद का अधिकार है। इस व्यवस्था को स्थापित करने में जाट राजा इसलिए अग्रणी था कि इस समय वह इमाद का संरक्षक बना हुआ था और उसका समर्थन उसने मराठों के लिए इसी शर्त पर प्राप्त किया था कि मराठे उसकी वज़ारत का समर्थन करेंगे। यह संभव है कि इस घटना से भाऊ ने सूरजमल के अन्दर राजधानी पर अपना नियन्त्रण करने की गन्ध पाई हो, जिसके कारण वह न केवल जाट राजा का विरोधी हो गया, बल्कि इमाद को वज़ारत दिए जाने सम्बन्धी अपने आश्वासन से हटता हुआ भी दिखाई दिया, जैसा कि बाद की घटनाओं से स्पष्ट है।

यह संभव है कि सूरजमल जिस तरह से इमाद का बोझ ढो रहा था, उसके पीछे उसकी इस तरह की कोई आकांक्षा रही हो, किन्तु बिना उचित समय के अदूरदर्शितापूर्ण ढंग से वह इस प्रकार की खुली मांग रखने वाला व्यक्ति नहीं था, जैसा कि भाऊ कैफियत का लेखक हमें बतलाता है। यदि ऐसा होता तो निश्चय ही किसी न किसी फ़ारसी या भाऊ बखर जैसे मराठी स्रोतों में, जिन्होंने अन्य कारणों के विस्तृत वृतान्त दिए हैं, इसका थोड़ा सा संकेत अवश्य मिलता। और क्योंकि दिल्ली के क़िले पर अधिकार सम्बन्धी मीरात-ए-अहमदी भाऊ कैफियत की तुलना में अधिक प्रामाणिक है और अन्य फ़ारसी स्रोतों की तुलना में भी वह इस घटना की विस्तृत जानकारी देता है, अतः उसके विवरण के आधार पर यह माना जा सकता है कि क़िले की व्यवस्था के प्रश्न को भाऊ कैफियत के लेखक ने राजधानी पर 'नियन्त्रण की मांग के रूप में बदल दिया हो। सरदेसाई व शेजवल्कर दोनों ही भाऊ व सूरजमल के बीच मतभेदों सम्बन्धी भाऊ बखर के वृतान्त को काल्पनिक और बाद की सूझ-बूझ बतलाते हैं[1], किन्तु दूसरी ओर वे ही अन्य घटनाओं के सन्दर्भ में उसे काफ़ी सही एवं प्रामाणिक मानते हैं।[2] वास्तविकता यह है कि इस विषय से सम्बन्धित भाऊ बखर के अनेक विवरणों की पुष्टि अन्य समकालीन फ़ारसी स्रोतों से होती है।

इमाद का लेखक सूरजमल द्वारा मराठा पक्ष के त्याग का कारण भाऊ द्वारा उससे दो करोड़ रुपये की मांग और उस पर निगरानी दल की नियुक्ति बतलाता है।[3] प्रथम कारण की पुष्टि किसी अन्य स्रोत से नहीं होती है, इसके विपरीत

---

१. म०न०इ०, II पृ० ४३८; शेजवल्कर, पृ० ९२
२. म०न०इ०, II, पृ० ४४७ व ४७३
३. इमाद, पृ० १८१; कानूनगो, जाट, पृ० १३६ पा०टि०

दक्षिण से रवाना होते समय पेशवा ने भाऊ को यह सलाह दी थी कि १७५४ ई० की खण्डनी की बकाया राशि के लिए वह सूरजमल से अधिक कहासुनी न करें।[1] गुलाम हुसैन के अनुसार सूरजमल के मराठा शिविर छोड़ने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण दीवाने आम की चांदी की छत व अन्य चांदी के बर्तनों को गलाकर शाही प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाना था।[2]

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि सूरजमल द्वारा मराठा पक्ष छोड़ने का कारण नीतिगत अथवा राजनैतिक न होकर भाऊ का उसके प्रति दुराग्रह तथा अपमानजनक व्यवहार था। इस सम्बन्ध में कीने की यह टिप्पणी काफ़ी युक्तिसंगत है कि, "सूरजमल ने १७६० ई० में विशाल मुस्लिम गठबन्धन का प्रतिरोध करने के लिए मराठों का साथ दिया था। अगर उसकी विवेकसंगत सलाह का अनुसरण किया जाता, तो यह प्रतिरोध अधिक सफल होता और हिन्दुस्तान का पूरा इतिहास ही दूसरा होता। किन्तु हिन्दुओं का दम्भी नेता भाऊ सूरजमल को एक तुच्छ जमींदार समझता था, जो बड़े पैमाने के मामलों का अभ्यस्त नहीं था और इसलिए वह अपने दुर्भाग्य की ओर प्रशस्त हुआ।"[3] वस्तुतः होल्कर एवं सिन्धिया ही जाट शक्ति के समर्थन का महत्व जानते थे, जिन्होंने अब्दाली से मार खाने के बाद न केवल जाट प्रदेश में शरण ली थीं, बल्कि जाट राजा को मराठा पक्ष में शामिल करने के लिए अथक प्रयास भी किया था। यही कारण था कि भाऊ ने अब्दाली के विरुद्ध युद्ध में होल्कर व सिन्धिया के माध्यम से प्राप्त जाट समर्थन को उचित महत्व न देकर सूरजमल के सम्मान व सलाह की उपेक्षा की। जब भाऊ इमाद की वज़ारत की उपेक्षा करके गुप्त रूप से शुजा को वज़ीर बनाने की योजना पर चलता दिखाई दिया, तो सूरजमल का उसके इरादों के प्रति शंकित होना स्वाभाविक था।[4] आखिर इमाद व सूरजमल किसलिए उसके साथ थे ?

१, पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र, २२५; स्वयं भाऊ २६ जून १७६० ई० को पेशवा को लिखता है कि जाटों के पास खण्डनी का पैसा है, किन्तु वह उससे मांग नहीं सकता, पेशवा दफ्तर, XXVII, पृ० २५५; परन्तु शेजवलकर ऐसी संभावना पर (आर्थिक मांग की) विश्वास करते हुए उसे सूरजमल द्वारा मराठा पक्ष त्यागने का एक कारण बतलाते हैं, पानीपत, पृ० ६२

२. सियार, III, पृ० ३८५

३. एच०जी०कीने, फॉल आफ दि मुग़ल एम्पायर, पृ० ८३

४. काशीराज के इस विवरण से इस तथ्य की पुष्टि होती है जो लिखता है कि दीवाने आम की चांदी की छत को उखाड़ देने जैसे और भी अनेक कार्य भाऊ ने किए और सामान्यतया यह माना गया कि, "भाऊ की योजना अपने रास्ते में बाधक बनने वाले प्रमुख हिन्दुस्तानी सरदारों से छुटकारा पाने की थी और

यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि मराठा पक्ष छोड़ने के बावजूद सूरजमल मराठों से सहानुभूति रखता था। उसने मराठा हितों के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया, उलटे पानीपत के मैदान में जब मराठा सेना वेतन के लिए उपद्रव मचाने लगी, तब सूरजमल ने एक बड़ी धनराशि गोविन्द पन्त के हाथ वहां भेजी थी।[1] इसी प्रकार यह एक सर्वविदित तथ्य है कि पानीपत के सर्वनाश से भागे हुए मराठों को जाटों ने शरण देकर एवं हर संभव सहायता प्रदान करके उन्हें मौत के मुँह से बचाया था। अत: स्पष्ट है कि पानीपत के तीसरे युद्ध के ठीक पूर्व सूरजमल के प्रति भाऊ के दुराग्रह एवं अपमानजनक व्यवहार के कारण सभी विषयों पर उनके मतभेद बढ़ते गए और जब भाऊ ने निगरानी दल की नियुक्ति करके अप्रत्यक्ष रूप से सूरजमल को बन्दी बना लिया, तो उसके सामने मराठा पक्ष त्यागने के अलावा कोई विकल्प नहीं था।

पानीपत के तीसरे युद्ध के प्रति सूरजमल का दृष्टिकोण

सूरजमल के मराठा पक्ष छोड़ने का समाचार विद्युत गति से अफगान शिविर में पहुँचा और अब्दाली के कहने पर शुजाउद्दौला ने राजा देवीदत्त, अली बेग तथा अन्य दूतों को सूरजमल के साथ समझौता वार्ता के लिए २४ सितम्बर को बल्लभगढ़ भेज दिया। उन्होंने जाट राजा को अब्दाली व शुजाउद्दौला द्वारा भेजी गई खिलअत भेंट करके, अनेक प्रकार की प्रतिज्ञा एवं आश्वासन के द्वारा, उस पर अब्दाली के पक्ष में शामिल होने के लिए दबाव डाला।[2] परन्तु सूरजमल इस समय भाऊ के व्यवहार से इतना दुःखी था कि उसने भावी युद्ध से पृथक रहना ही हितकारी समझा। तत्कालीन परिस्थितियों में जाटों की तटस्थता भी दोनों पक्षों के लिए महत्वपूर्ण थी। यही कारण था कि जब भाऊ के पास बल्लभगढ़ में जाट राजा के साथ शाह व शुजा के दूतों की वार्ता का समाचार पहुँचा, तो उसे गम्भीर चिन्ता हुई और उसने भी तत्काल एक हाथी और खिलअत सूरजमल के पास बल्लभढ़ भेजी और उसे लिखा कि, "उसके लिए यह उचित नहीं कि वह उनका साथ छोड़कर शाह का पक्ष ग्रहण करे जो कि उनका शत्रु है।" भाऊ ने जाट राजा को यह सलाह भी दी कि जो घटित हो गया, उसे छोड़कर अब उसे शत्रु सेना में अनाज न पहुँचने देने हेतु शाही

दुर्रानी के लौट जाने के बाद विश्वासराव को दिल्ली के सिंहासन पर बिठाने की थी।" यह गुप्त सूचना नवाब शुजाउद्दौला को मिल गई थी और उसी प्रमाण पर काशीराज ने उपर्युक्त तथ्य लिपिबद्ध किया, देखें काशीराज, पृ० ९

१. ग्रान्ट डफ, II, पृ० १४६

२. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० ११९-१२०

मराठा सिपाही को पांच रुपये नक़द, एक धोती, एक रजाई और आठ दिन का अन्न साथ में प्रदान किया। इस प्रकार उसने दस लाख रुपये उन पर खर्च किए।[1]

विजेता अब्दाली का जाटों के विरुद्ध अभियान

२९ जनवरी १७६१ ई० को विजेता अहमद शाह ने राजधानी में प्रवेश किया। उसने शाह आलम को सम्राट घोषित करके उसके पुत्र जवान बख़्त को, जो दिल्ली में मौजूद था, उसका उत्तराधिकारी नियुक्त किया। नजीब ख़ान को मीरबख़्शी नियुक्त करके उसे राजधानी के शासन कार्यों का संचालक बना दिया गया। इस समय शाह ने अपने सैनिकों का वेतन चुकाने के लिए नजीब से धन का प्रबन्ध करने के लिए कहा। नजीब ने इस पर विवशता प्रकट करते हुए मराठों को पूरी तरह से निष्कासित करके नर्मदा तक साम्राज्य को शुद्ध करने के लिए आगरा पर विजय-पताका फहराने की सलाह दी और कहा, "सूरजमल जाट और अन्य जमींदारों से अच्छी पेशकश की राशि वसूल की जा सकती है।" इस पर शाह ने उत्तर दिया, "मुझे अपने देश से आए हुए एक साल से ऊपर हो गया है। मैंने उस ओर लौटने का निश्चय कर लिया है।" किन्तु एक लम्बे विचार-विमर्श के बाद नजीब की प्रार्थना मान ली गई।[2] इसी समय नजीब ने राजा नागरमल को, जो

---

१. भाऊ बखर, पृ० १६१-६२; काशीराज, पृ० ५०,

मुन्नालाल कृत तारीख़े शाह आलम के आधार पर फ्रैंकलिन सूरजमल पर यह दोषारोपण करता है कि पानीपत की दुर्घटना का समाचार सुनकर दिल्ली का मराठा सूबेदार नारोशंकर आगरा की ओर भागा, किन्तु सूरजमल जाट के आदेश से वह रास्ते में रोक लिया गया और बुरे साधनों से प्राप्त उसकी सारी सम्पत्ति छीन ली गई तथा आतंक व कष्ट में शेष यात्रा पूरी करने के लिए उसे छोड़ दिया गया, शाह आलम, पृ० २५; परन्तु एक मराठा पत्र इसका खण्डन करते हुए लिखता है, "नारोशंकर ७-८ लाख रुपये का कोष दिल्ली में ही छोड़कर भाग गया और वह भी बदमाश व्यक्तियों ने दिल्ली में ही लूट लिया।" पुरन्दरे दफ्तर, ।, पत्र, ४१७; इसी प्रकार एक मराठा शरणार्थी जो नारोशंकर के साथ ही था लिखता है, "नारोशंकर और बालाजी पलान्दे दो से चार हज़ार सैनिकों के साथ दिल्ली से भागे और अब ग्वालियर में होल्कर के साथ रुके हुए हैं। रास्ते में भरतपुर में सूरजमल ने हमारी सुरक्षा व आराम का बहुत अधिक ध्यान रखा। हम वहां पर १५-२० दिन रुके। उसने हमारा अत्यधिक सम्मान करते हुए दोनों हाथ जोड़कर कहा, "मैं तुम्हारे परिवार का ही एक पुराना सेवक हूं, यह राज्य तुम्हारा ही है......आदि।" ऐसे व्यक्ति विरले ही होते हैं। उसने अपने सरदारों को हमारी सुरक्षार्थ ग्वालियर तक साथ भेजा। देखें, कानूनगो, जाट, पृ० १४२-४३

२. मीरात ए अहमदी, पृ० ९१९, नूरुद्दीन से इसकी पुष्टि होती है, पृ० ५२ व

जाट राजा के पास शरण लिए हुए था, बुलाकर शाह की स्वीकृति से उसे पुनः सेवा में ले लिया। शाह ने नजीब व शुजा के वकीलों के साथ एक पत्र भेजकर सूरजमल को, जिसने हाल ही में मराठों को शरण देकर अब्दाली के शत्रु के प्रति सहानुभूति प्रकट की थी, उपस्थित होकर पेशकश देने के लिए लिखा।[1]

दूसरी ओर सूरजमल ने राजा नागरमल के साथ अपने वकील मजलिस राय को अब्दाली के पास इस निर्देश के साथ भेजा कि वे सन्धिवार्ता और टालमटोल की नीति द्वारा कुछ समय निकाले, तब तक ग्रीष्म ऋतु आ जायगी। २१ फरवरी १७६१ ई० को नजीब ने राजा नागरमल और मजलिस राय को इस निर्देश के साथ शाह के समक्ष प्रस्तुत किया कि वे अब्दाली द्वारा जाट राजा को क्षमा प्रदान करने के बदले ख़िराज देना स्वीकार कर लें।[2] परन्तु सम्राट की माता जीनत महल सूरजमल से इसलिए घृणा करती थी क्योंकि वह उसके पति के हत्यारे इमाद का मित्र एवं रक्षक था और पिछले अनुभव के आधार पर वह यह भी जानती थी कि सूरजमल टालमटोल करके समय निकालने का प्रयत्न कर रहा है और जब तक उसे बलपूर्वक विवश नहीं किया जाता, वह एक कौड़ी देने वाला नहीं है। इसलिए उसने दुर्रानी वज़ीर को इस बात पर राजी कर लिया कि जाट दूत को लौटा दिया जाय।[3]

अब्दाली की सेनाएँ पुरानी दिल्ली के निकट अपने डेरों से कूच करने की तैयारियाँ करने लगी। नजीब ने, जो स्वयं सूरजमल की युक्तियों से परिचित था, उसे भुलावे में रखने और आकस्मिक आक्रमण करने के उद्देश्य से यह अफवाह फैलाई कि शाह दक्षिण की ओर कूच कर रहा है। उसने अपने वकील के द्वारा सूरजमल से आग्रह किया कि वह शाह को पेशकश प्रदान करें और मराठों को पूर्णतया नष्ट करने के दक्षिण अभियान में अपनी सेना के साथ सम्मिलित होवें। परन्तु वास्तविकता यह थी कि शाह ने जाटों के विरुद्ध अभियान का निश्चय कर लिया था और यह संभव है कि अपने सैनिकों में असन्तोष (जाटों के विरुद्ध प्रयाण के मनोवैज्ञानिक प्रभाव से उत्पन्न) को ध्यान में रखते हुए जाट अभियान को दक्षिण अभियान के रूप में प्रचारित किया हो, जैसा कि नूरुद्दीन हमें बतलाता है।[4] सूरजमल ने सम्भावित खतरे को ध्यान में रखते हुए बुद्धिमतापूर्ण ढंग से शाह को पेशकश देना और सेना भेजना स्वीकार तो कर लिया,[5] किन्तु व्यवहारिक दृष्टि से इस दिशा में कोई ठोस क़दम नहीं उठाया।

---

१. पुरन्दरे दफ्तर, I, पत्र, ४१७
२. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० १२२; नुरुद्दीन, पृ० ५२ ब
३. दुर्रानी पृ० २६३; सरकार, पतन, II, पृ० २३५
४. नूरुद्दीन, पृ० ५२ ब
५. नूरुद्दीन, पृ० ५२ ब; १२ मार्च १७६१ ई० को ग्वालियर से लिखे नाना फडनवीस के पत्र से इस समझौते की पुष्टि होती है। यह मूल पत्र अप्राप्य है और एठले ने मैकडानेल्ड कृत नाना फडनवीस के जीवन चरित्र से इसका मराठी अनुवाद किया है, देखें, एठले दफ्तर, I, पत्र, ३७

सैनिक विद्रोह और शाह की वापसी

शाह और नजीब सूरजमल की युक्तियों से परिचित थे, अतः समझौते पर उसकी स्वीकृति का विश्वास न करते हुए उन्होंने अपनी सेना को कूच के आदेश जारी कर दिए। स्वयं दुर्रानी शाह ने राजधानी में रुकने का निश्चय किया और ७ मार्च को उसका वजीर शाह वली खान, शाहजादा जवान बख्त, जीनत महल तथा मिर्जा बाबर को साथ लेकर नजीब एवं शुजाउद्दौला की सेना के साथ सूरजमल पर दबाव डालने के लिए आगरा की ओर रवाना हुआ। किन्तु जैसे ही यह सेना जाट प्रदेश की सीमा पर मथुरा के निकट पहुँची, तो अफगान सैनिकों ने सिकन्दर के यूनानी सैनिकों की तरह अपने स्वामी के आदेश के विरुद्ध जाट प्रदेश में आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। निरन्तर विजयी अफगान सेना के इस अप्रत्याशित विद्रोह के निम्नलिखित कारण थे: चार वर्ष पूर्व इसी मार्च महीने में अफगान सैनिकों ने इसी क्षेत्र में महामारी से प्रतिदिन अपने सैकड़ों साथियों को मौत के मुँह में जाते देखा था। शुजाउद्दौला के शिया अनुयायियों और शाह के सुन्नी सैनिकों में दिल्ली से बाहर निकलते ही बलवा हो गया था और असंतुष्ट होकर शुजाउद्दौला अपनी सेना के साथ ७ मार्च को ही अपने प्रदेश की ओर लौट गया था।[1] अफगान सैनिकों की लूट की आशा मिथ्या सिद्ध हुई थीं। पानीपत में उनके हाथ कुछ नही लगा था और दिल्ली में भी इस बार विशेष प्राप्ति नहीं हुई। इसके अलावा जब से वे भारत में पहुँचे, उनका वेतन बकाया था। अपने देश को छोड़े उन्हें १६ महीने हो गए थे और सैनिकों को अपने परिवार तथा घर लौटने की चिन्ता सता रही थीं। इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण यह था कि जाटों के शक्तिशाली दुर्गों के बारे में अफगान सैनिकों ने यह ख्याति सुन रखी थीं कि वर्षों तक उनमें रसद भण्डार एवं शत्रु के विरुद्ध सैन्य प्रतिरोध की क्षमता थी, अतः एक लम्बे एवं थकाने वाले संघर्ष की आशंका ने उनके दिलों को तोड़ दिया था।

जब इस प्रकार अफगान सैनिकों में अशान्ति बढ़ने लगी, तब अहमदशाह को विवश होकर अफगानिस्तान लौटने का तत्काल निश्चय करना पड़ा और उसने अपने वजीर को वापस बुला लिया। १३ मार्च को अफगान सेना की वापसी शुरू हो गई और २० मार्च को शाह अपनी सेना के साथ दिल्ली से बाहर निकल पड़ा।[2]

१. शुजाउद्दौला, I, पृ० १००-१०१
२. गण्डासिंह, दुर्रानी, पृ० २६३-६४; सरकार, पतन, II, पृ० २३४-३५

अध्याय–८

शासन के अन्तिम तीन वर्ष (१७६१–१७६३ ई०)

शासन के अन्तिम तीन वर्ष
(१७६१–१७६३ ई०)

पानीपत के विनाशकारी एवं निर्णायक युद्ध के बाद मार्च १७६१ ई० में जब अहमदशाह दुर्रानी अपने देश को लौटा, उस समय भरतपुर का जाट राजा हिन्दुस्तान के सर्वाधिक शक्तिशाली शासकों में गिना जाता था। सूरजमल की जाट सेना ज्यों की त्यों बनी हुई थी और उसका कोष भरा हुआ था। अपनी बुद्धि एवं राजनैतिक चातुर्य के बल पर उसने, पिछले दो वर्ष से चल रहे मराठा-अफ़गान संघर्ष में सक्रिय भाग न लेकर अपनी सेना व कोष में कोई कमी नहीं आने दी थी। इसी कारण अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए अब उसके सामने मैदान साफ़ था। वह अपने राज्य एवं शक्ति का अधिकतम विस्तार करना चाहता था, जिसके लिए यह आवश्यक था कि दिल्ली का शासन तंत्र उसके अनुकूल हो, जिससे कि उसके कार्यों को वैधता प्राप्त हो सके। अपने इस उद्देश्य में नजीब उसे अपना राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वी दिखाई दिया, अतः उसकी दृष्टि नजीब पर टिकी। परन्तु सूरजमल शक्तिशाली होते हुए भी एक धैर्यवान् कूटनीतिज्ञ था। इसलिए शाही राजधानी में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप के स्थान पर उसने अपने राजनैतिक हथियार इमाद के माध्यम से अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने का निश्चय किया।

हिन्दुस्तान से लौटते समय अब्दाली ने जो व्यवस्था की उसके अनुसार शाह आलम द्वितीय को सम्राट माना गया, इमाद को पुनः वजीर और नजीब को मीर बख्शी नियुक्त किया गया। शाह ने दिल्ली में अपने प्रतिनिधि याक़ूब अली ख़ान को इस सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश देते हुए कहा कि वह यह देखें कि इमाद व नजीब आपसी शत्रुता भुलाकर अपने स्वामी की सेवा करें, और बिना सेना भेजे उसे प्रति वर्ष हिन्दुस्तान से खिराज मिलता रहे।[1] उसने याक़ूब को यह भी कहा कि वह पेशवा के पास जाकर पानीपत में उसके पुत्र एवं भतीजे की मृत्यु के लिए अफ़गान

---

१. अब्दाली ने सूरजमल जाट पर ७० लाख, नजीब पर ४० लाख और शुजा उद्दौला पर ६० लाख, कुल दो करोड़ रुपया ख़िराज उसे दिया जाना तय किया था, सिलेक्ट कमेटी प्रोसीडिंग्स, १७६१ ई०, जि० VIII, पृ० ११७ व १२७

नरेश को क्षमा कर दिए जाने की प्रार्थना करें और साम्राज्य में नए शासन की स्थापना के सम्बन्ध में उसकी (दुर्रानी) ओर से मराठों तथा शाह आलम के साथ सन्धि कर लें, ताकि दिल्ली के शासन में कोई गड़बड़ न करें। वह चाहता था कि जाट राजा सूरजमल के साथ भी इस प्रकार का समझौता हो जाय, जिससे हिंदुस्तान में यथापूर्व स्थिति बनाए रखने में मदद मिले।

२० मार्च १७६१ ई० को अब्दाली ने अपने देश के लिए प्रयाण किया और वह राजधानी से बाहर निकलकर शालीमार बाग में आकर रुका। २२ मार्च को यहाँ से कूच करके शाह पानीपत से छः मील दूर एक स्थान पर पहुँचा। यहाँ पर उसने मिर्ज़ा जवान बख्त को भेंट प्रदान की और इमाद के वकील राजा दिलेरसिंह की उस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया, जिसमें उसने अपने स्वामी को वज़ारत दिए जाने के एवज में १८ लाख रुपये पेशकश देने का वादा किया था। शाह ने वजीर की खिलअत, उससे सम्बन्धित शाही फ़रमान व कलमदान याकूब को सौंपते हुए यह निर्देश दिया कि वह व्यक्तिगत रूप से जाकर इमाद को ये प्रदान करें। इसके बाद याकूब अली और राजा दिलेरसिंह शाहजादा जवान बख्त के साथ राजधानी लौट आए।[1]

दिल्ली पर नजीब का अधिकार

इस समय शाही राजधानी में नवनियुक्त सम्राट, वज़ीर एवं मीरबख्शी में से कोई भी नहीं था। नजीब सोनीपत में, शाह आलम वाराणसी में और इमाद मथुरा मे था। इन तीनों में आपसी सहयोग द्वारा स्थायी शांति की अब्दाली की कल्पना साकार नहीं हो सकती थी, क्योंकि इमाद और शाह आलम के बीच रक्त की नदी थी और नजीब पर किसी का विश्वास नहीं था। जैसे ही याकूब अली और दिलेरसिंह अब्दाली से विदा लेकर राजधानी लौटे तो सम्राट की माता जीनत महल ने उनसे कहा, "इमाद को वज़ारत मुझे स्वीकार्य नहीं है, जिसने अनेक अनुचित कार्य किए हैं। अगर धन ही इसका कारण है तो पेशकश की राशि हम भेज देंगे।" उसने राजधानी के महलों से उन लोगों को भी हटा दिया, जिन्हें दिलेरसिंह ने इमाद को वज़ारत मिलने पर नियुक्त कर दिया था।[2]

शाह की रवानगी और अपनी वज़ीर के पद पर नियुक्त की सूचना मिलते ही इमाद सूरजमल के साथ भरतपुर से मथुरा आ गया और अपने समर्थकों को जुटाने लगा। जब इमाद मथुरा में सूरजमल की सहायता से राजधानी पर अधिकार की योजना बना रहा था, तभी नजीब ने सम्राट की माता को पत्र लिखा कि यदि इमाद ने दिल्ली आकर शासन सूत्र अपने हाथ में ले लिया, तो वह जाट राजा के साथ मिलकर शाह आलम और शाही परिवार को हटाकर शाहजहाँ द्वितीय की

---

१. मीरात ए अहमदी, पृ० ९२०

२. वही

तरह किसी दूसरे राजकुमार को गद्दी पर बिठा देगा। इस पर जीनत महल ने राजधानी में सुरक्षा प्रबन्ध कड़े करके नजीब को बुलावा भेजा।[1] जब इसकी जानकारी सूरजमल और इमाद को मिली, तो उन्होंने नया सम्राट बनाए जाने सम्बन्धी अफ़वाह का खण्डन करने के लिए अप्रैल के प्रथम सप्ताह में नजीब के वकील मेघराज को बुलाया और यह विश्वास दिलाया कि वज़ीर सब प्रकार से बादशाह की सेवा करेगा तथा नजीब के साथ समझौते के सम्बन्ध में दोनों पक्षों ने राजा नागरमल की मध्यस्थता को स्वीकार किया।[2]

अब इमाद ने, जिसे १० अप्रैल को याकूब अली खान ने मथुरा पहुँचकर यह कहते हुए वज़ीर की ख़िलअत प्रदान कर दी थी[3] कि अब वह स्वयं अपने बल पर दिल्ली में इस पद की शक्ति प्राप्त करे, राजधानी की ओर प्रयाण करने की तैयारी में सूरजमल की जाट सेना के अलावा हाफ़िज़ रहमत, डूंडी ख़ान, सादुल्ला खान सहित अन्य रुहेला सरदारों को आमन्त्रित किया। ये सरदार गंगा तट पर पहुँचने के बाद अपनी माँगों के बारे में पत्राचार करने लगे।[4]

दूसरी ओर नजीब के साथियों ने उसे सलाह दी कि, "शक्तिशाली राजा सूरजमल इमाद उल मुल्क का मित्र है। अफगान सरदार उसके निकट पहुँच गए हैं। आपको सावधानीपूर्वक विचार करके अपने क़दम आगे बढ़ाने चाहिए।" इस पर नजीब ने जवाब दिया, "मैं रुहेला सरदारों के साहस को अच्छी तरह जानता हूँ। वे मेरे भाई हैं और वे मुझे मार डालने के लिए कमर नहीं कसेंगे। मुझे अब सूरजमल की ओर मुड़ना है। यद्यपि वह एक शक्तिशाली व्यक्ति है, किन्तु वह दूरदर्शी और स्वभाव से धैर्यवान् है। जब मैं दिल्ली में प्रवेश करता हूँ तो वह अनावश्यक रूप से मुझे बाहर निकालने का कार्य नहीं करेगा। अब जबकि शहर ख़ाली है, वहाँ मुझे रोकने वाला कोई नहीं है। परन्तु इमाद उल मुल्क के हाथों में भी सनद है, याकूब अली खान जैसा सामन्त उसे लेने गया है और वह अभी तक रवाना नहीं हुआ है यह सीधा-सादा अशुभ भाग्य है।"[5] इसके तत्काल बाद, संभवतः अप्रैल के मध्य में किसी समय, नजीब ने शाही राजधानी पर अधिकार करने के लिए कूच कर दिया और जब वह लूनी पहुँचा तो वली अहद (जवान बख्त) स्वयं अपने हाथी पर बिठाकर उसे दिल्ली ले आया। इस प्रकार नजीब साम्राज्य का मीरबख्शी, दिल्ली का फ़ौजदार और शाही शासन का संरक्षक (रीजेन्ट) बन गया।

---

१. नूरुद्दीन, पृ० ५४ ब; हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, २०६ से इसकी पुष्टि होती है।
२. हिंगणे दफ्तर, I, २०६, ६ अप्रैल १७६१ ई०
३. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० १२३
४. नूरुद्दीन, पृ० ५४ ब
५. नूरुद्दीन, पृ० ५४ ब—५५ अ

उसने अपने एक विश्वासपात्र शेख कासिम को दिल्ली दुर्ग का क़िलेदार नियुक्त कर दिया और अन्य स्थानों पर अपने व्यक्तियों को तैनात करके राजधानी पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर लिया।[1]

मथुरा सम्मेलन की विफलता

६ अप्रैल १७६१ ई० को याकूब अली खान अब्दाली के आदेशानुसार पेशवा के साथ समझौते में मध्यस्थता के लिए सूरजमल से वार्ता करने हेतु दिल्ली से कुम्हेर के लिए रवाना हुआ।[2] वह अपने साथ इमाद के लिए, जो मथुरा में था, शाही वज़ीर की खिलअत भी लेकर चला था, उधर पेशवा के आदेश पर होल्कर ने अपने दीवान गंगाधर पन्त को सूरजमल के पास इस निर्देश के साथ भेजा कि वह पूर्व की भाँति यमुना पार दोआब में मराठा प्रभाव की पुर्नस्थापना में उनकी मदद करे।[3] लगभग इसी समय इमाद ने जाट राजा को अपनी सेना के साथ तुरन्त मथुरा पहुँचने के लिए लिखा। इस प्रकार अब्दाली, मराठे व इमाद सभी हिन्दुस्तान की पुर्नव्यवस्था में जाट राजा की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते थे। परिणामस्वरूप सूरजमल ने इन मामलों पर विचार-विमर्श के लिए सभी पक्षों को मथुरा में आमन्त्रित किया। अप्रैल के द्वितीय सप्ताह में मथुरा में विभिन्न राजनैतिक शक्तियों के प्रतिनिधियों एक सम्मेलन हुआ, जिसमें सूमजमल के अलावा वजीर इमाद उल मुल्क, अब्दाली का प्रतिनिधि याकूब अली खान, मराठों के प्रतिनिधि गंगाधर पन्त व बापू महादेव हिंगणे और नवाब शुजाउद्दौला का प्रतिनिधि भी शामिल हुए। रुहेले व बंगश सरदारों हाफ़िज रहमत, डूंडी खान और सादुल्ला ख़ान ने भी इस सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि भेजे और स्वयं गंगा किनारे पहुँचकर इस वार्ता के सम्बन्ध में पत्राचार करने लगे।

मथुरा पहुँचकर याकूब अली ने इमाद को शाही रस्म के अनुसार वज़ारत की खिलअत, फ़रमान और कलमदान भेंट किया। इमाद ने इस पर भारी उत्साह एवं हर्ष प्रकट किया।[4] परन्तु राजधानी पर नजीब का अधिकार हो जाने का समाचार जब यहाँ पहुँचा, तो इमाद व सूरजमल को बहुत निराशा हुई। इसके बावजूद मथुरा में राजनैतिक गतिविधियाँ जारी रही। १९ अप्रैल को याकूब अली खान की सूरजमल

---

१. नूरुद्दीन, पृ० ५५
२. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० १२३
३. पेशवा दफ्तर, XXVII, पत्र, २६८; एठले दफ्तर, I, पत्र, ४०, पेशवा द्वारा पुरुषोत्तम महादेव हिंगणे को लिखे ६ अप्रैल १७६१ ई० के पत्र से यह भी पता चलता है कि इस विषय में पेशवा ने सीधे सूरजमल को भी पत्र लिखा था, देखें, हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, २०५
४. मीरात ए अहमदी, पृ० ९२१

से भेंट हुई।[1] जब याकूब ने पेशवा के पास पूना जाने की पेशकश की, तो मराठा वकील, इमाद और सूरजमल ने उससे कहा कि सन्धि की शर्तें तो यहीं पर निश्चित हो जायेंगी, इस कार्य के लिए आपको श्रीमंत स्वामी के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार याकूब को मथुरा में रोक लिया गया।[2] वार्ता में सहमति की आशा तभी क्षीण हो गई, जब शुजाउद्दौला के वकील ने क्रुद्ध होकर मराठा दूत गंगाधर तांत्या से कहा, "हम अपना कोई प्रदेश जाटों के हवाले नहीं करेंगे, हमारा मुल्क हमारे पास रहेगा और तुमने हमारे जिस प्रदेश पर अधिकार कर रखा है, उसे छोड़ दिया जाय।"[3] दूसरी ओर गंगापार रुहेले यद्यपि नजीब से डरते थे और उसके प्रति द्वेष रखते थे, परन्तु नजीब ने इस समय उन्हें अपने पक्ष में बनाए रखने की पूरी कोशिश की, इस कारण उन्होंने भी अनिश्चय का रुख अपना रखा था। किन्तु याकूब के समझौता प्रयास में प्रमुख बाधा यह थी कि इमाद व सूरजमल नए सम्राट को स्थापित करना चाहते थे, जबकि याकूब और नजीब शाह आलम को बनाए रखने के पक्षधर थे।[4] मराठों ने भी याकूब के समझौता प्रस्ताव के प्रति उचित रवैया नहीं अपनाया, क्योंकि उनका प्रतिनिधि गंगाधर इस सम्मेलन में सूरजमल की सलाह पर चल रहा था। इन परिस्थितियों में लगभग २० दिन तक वार्ता चलते रहने के बाद १-२ मई के आस-पास मथुरा का शान्ति सम्मेलन बिना किसी परिणाम के समाप्त हो गया।[5]

इस प्रकार नामधारी वजीर की नजीब को दिल्ली से तत्काल निकाल भगाने की और अपनी शक्ति स्थापित करने की आशा क्षीण हो गई। लगभग एक महीना रुकने के बाद निराश याकूब अली राजधानी लौट गया। परन्तु सूरजमल, इमाद गंगाधर अगले एक महीने तक और रुके रहे तथा भावी नीति पर विचार करते

---

१. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० १२४
२. पेशवा दफ्तर, ॥, पत्र, १४६, हिंगणे दफ्तर, ।, पत्र, २१३
३. हिंगणे दफ्तर, ।, पत्र, २०७
४. हिंगणे दफ्तर, ।, पत्र, २१३; मीरात ए अहमदी से इसका समर्थन होता है (पृ० ६२१)।
५. पेशवा दफ़्तर के अनुसार यह वार्ता २० दिन चलने के बाद विफल हो गई, जि० ॥, पत्र, १४६; हिंगणे दफ्तर के अनुसार समझौता न होने के कारण लगभग एक महीना रुकने के बाद याकूब दिल्ली लौट गया, जि० ।, पत्र, २१३, १६ मई १७६१ ई०; ४ मई को हिंगणे जाट सेना के आगरा क़िले की ओर प्रयाण करने व घेर लिए जाने का समाचार देता है, जिससे पता चलता है कि १-२ मई को शान्ति वार्ता भंग होने के बाद ही जाट सेना मथुरा से रवाना हुई होगी, देखें, हिंगणे, दफ्तर ।, २०८

रहे । उधर नजीब, जवानबख्त, जीनत महल आदि ने मिलकर इमाद को वज़ारत से अलग कर दिया । जाट राजा ने इमाद को सलाह दी कि वर्तमान परिस्थितियों में उनका अकेले दिल्ली पर आक्रमण करना अव्यवहारिक और हानिकारक होगा, क्योंकि इससे सभी विरोधियों को एकजुट होने का अवसर मिलेगा । सूरजमल और इमाद ने यह योजना बनाई कि वर्तमान में आगरा क़िले पर अधिकार करके किसी शाहज़ादे को सम्राट घोषित कर देना चाहिए । उसके बाद नजीब पर दबाव डालने के उद्देश्य से राजधानी पर प्रयाण करना चाहिए ।[1] इमाद ने इस योजना में भावी आशा की किरण देखकर उस पर बहुत बल दिया । इस समय सूरजमल ने अपनी भावी योजनाओं को सफल बनाने के उद्देश्य से रुहेला व बंगश सरदारों को भी अपने साथ मिलाए रखने का पूरा प्रयास किया ।[2]

आगरा दुर्ग पर सूरजमल का अधिकार (१२ जून १७६१ ई०)

मथुरा सम्मेलन की विफलता के फलस्वरूप जैसे ही हिन्दुस्तान की राजधानी पर नियन्त्रण की सम्भावना क्षीण होती दिखाई दी, वैसे ही सूरजमल ने आगरा के शाही क़िले पर अपनी दृष्टि डाली, जो साम्राज्य का सर्वाधिक सम्पन्न नगर था । दिल्ली जहाँ विदेशी आक्रमण एवं लूटमार से नष्ट हो चुकी थी, वहीं आगरा दुर्ग के द्वार अब तक किसी दुर्रानी प्रतिनिधि के सामने नहीं खुले थे और न ही यह मराठा आकांक्षा का शिकार हुआ था । आगरा न केवल व्यापार का सर्वोत्तम केन्द्र था, बल्कि राजधानी के सम्पन्न लोगों का शरण-स्थल भी था । आगरा का दुर्ग एक क़िलेदार के

---

१. मीरात ए अहमदी, पृ० ६२१

२. मई (१७६१ ई०) महीने में मथुरा से सूरजमल हाफ़िज रहमत, डून्डी खान, अहमद खान, सादुल्ला खान आदि अफगान सरदारों से निरन्तर सम्पर्क रखते हुए नजीब के विरुद्ध समर्थन प्राप्त करने में सफल रहा । इस अवधि में लिखे गए हिंगणे बन्धुओं के पत्रों से पता चलता है कि इन अफगान सरदारों ने जाट राजा को यह आश्वासन दिया कि उसकी इच्छानुसार यदि नजीब तैयार हो जाता है, तब तो उसके साथ समझौता कर दिया जायगा, अन्यथा वे सब मिलकर नजीब को हटाने और राजधानी में वज़ीर व सूरजमल का बन्दोबस्त करने में सहायता करेंगे । बाद में उन्होंने सूरजमल के इस विचार को स्वीकार कर लिया कि नजीब से युद्ध किया जाय अथवा समझौता, इस प्रश्न पर वार्ता के लिए वे सभी मई के अन्तिम सप्ताह में जाट राजा से भेंट करने हेतु अलीगढ़ पहुँचे । स्वयं सूरजमल इस उद्देश्य से इमाद व गंगाधर के साथ २४ मई को मथुरा से रवाना होकर २६ मई को अलीगढ़ पहुँच गया, देखें, हिंगणे रफ्तर, I, पत्र, २१४, २१५ व २१८ (क्रमश: २१ मई, २३ मई व ४ जून १७६१ ई०) ।

सुपुर्द था, जो सीधे सम्राट के प्रति उत्तरदायी था। उसे और उसके सैनिकों को गत दो वर्षों से वेतन नहीं मिला था और वे शाही भण्डार से मूल्यवान् वस्तुएँ बेच-बेचकर अपना गुज़ारा कर रहे थे।

३ मई १७६१ ई० के लगभग सूरजमल ने मथुरा से बलराम के नेतृत्व में ४००० जाट सेना को इस निर्देश के साथ आगरा की ओर रवाना कर दिया[1] कि वह साम, दाम, दण्ड, भेद किसी भी तरह से आगरा के क़िले पर अधिकार कर ले। दोआब में अपने प्रभाव की पुर्नस्थापना और विस्तार के लिए वह यह आवश्यक समझता था कि आगरा व अलीगढ के दुर्गों पर मज़बूती के साथ उसका अधिकार रहे। स्वयं जाट राजा मथुरा में रुका रहा, ताकि राजधानी पर नियन्त्रण एवं इमाद को वज़ीर पद पर स्थापित करने के सम्बन्ध में ठोस कार्यवाही की दिशा में पुनर्विचार किया जा सके। सूरजमल यहाँ बैठकर, आगरा पर उसका अधिकार हो जाने की राजधानी में क्या प्रतिक्रिया होती है, उसका भी सतर्कतापूर्ण अवलोकन करना चाहता था। वह अपने उद्देश्य में अफगान सरदारों का समर्थन जुटाने और नए सम्राट की घोषणा करके नजीव व उसके समर्थकों पर दवाव डालने की अपनी योजना के प्रति भी ध्येयरत था।

३ मई को जाट सेना ने शीघ्र ही आगरा पहुँचकर वहाँ के क़िलेदार को सूरजमल का यह संदेश दिया कि उसकी सेना दोआब में जा रही है, इस कारण उसे जमुना पार करने के लिए स्थान दिया जाय। क़िलेदार ने इसकी स्वीकृति दे दी। क्योंकि यह मार्ग क़िले के पास से होकर निकलता था, अतः दुर्ग द्वार के निकट पहुँचने पर जाट सेना दुर्ग के अन्दर घुसने लग गई। उन्हें रोकने के लिए दुर्ग रक्षकों ने कार्यवाही की, जिसके परिणामस्वरूप हुए संघर्ष में २०० व्यक्ति मारे गए। क़िलेदार ने तुरन्त दुर्गद्वार वन्द कर दिए और युद्ध प्रारम्भ हो गया। जाटों ने जामा मजिस्द पर अपने मोर्चे क़ायम करके गोलाबारी शुरू कर दी। क़िलेदार ने स्पष्ट वता दिया कि वह वादशाह के अलावा किसी को क़िला नहीं सौंपेगा। खाद्यान्न एवं रसद सामग्री का पूरा प्रवन्ध किए विना क़िलेदार ने अपने मात्र ४०० सिपाहियों के साथ प्रवल प्रतिरोध शुरू कर दिया।[2]

जव नजीव को आगरा पर जाट सेना के आक्रमण का समाचार मिला, तो ६ मई को सोनीपत से दिल्ली लौटते ही उसने ५-७ हजार सेना एकत्र कर, जवान वख्त को लेकर आगरा की ओर कूच करने की तैयारियाँ की। फ़र्रुखनगर से मुसावी

---

१. हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, २०८, ४ मई १७६१ ई०; मीरात ए अहमदी, पृ० ६२१
२. हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, २०८, ४ मई १७६१ ई०, इस पत्र से हिंगणे यह सूचना भी देता है कि आगरा में अली गोहर के नाम का खुतवा पढ़ा गया। इससे पता चलता है कि जाट व इमाद सम्राट बदलने की अपनी योजना को सफल बनाने के लिए वर्तमान सम्राट के नाम का राजनैतिक लाभ भी उठाना चाहते थे।

ख़ान वलूच और वहादुरगढ़ से वहादुरखान वलूच भी अपनी दो-दो हजार सैनिक टुकड़ियों के साथ दिल्ली पहुँचकर नजीव की सेना में शामिल हो गए।[1] परन्तु भाग्य ने नजीव का साथ दिया और उसने राजधानी को छोड़कर शक्तिशाली जाट सेना से उसके प्रदेश में युद्ध करने के खतरनाक एवं मूर्खतापूर्ण विचार को शीघ्र त्याग दिया।

२४ मई को सूरजमल इमाद और गंगाधर तांत्या के साथ मथुरा से रवाना हो गया और जमुना पार करके २६ मई को वे अलीगढ़ पहुँच गए। पूर्व निश्चित योजना के अनुसार यहाँ पर इनकी हाफ़िज़ रहमत, डून्डी खान, अहमद खान इत्यादि अफगान सरदारों के साथ इस विषय पर वार्ता हुई कि नजीव के साथ युद्ध किया जाय अथवा समझौता।[2] परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ पहुँचने के पूर्व ही नजीव किसी तरह रुहेले व वंगश सरदारों को अपने पक्ष में करने में सफल हो गया था, इस कारण उपर्युक्त भेंट वार्ता का सूरजमल की इच्छानुसार परिणाम नहीं निकला।[3] इस असफलता के वाद इमाद को वज़ीर पद पर स्थापित करने और राजधानी पर नियंत्रण करने के लिए नजीव को हटाने की सूरजमल की योजना लगभग समाप्त हो गई और उसने अपना ध्यान अपने राज्य विस्तार एवं आगरा दुर्ग पर अधिकार की ओर केन्द्रित किया।

अलीगढ़ से रवाना होकर जाट राजा कोईल व जालेसर के आस-पास के क्षेत्रों पर अपने अधिकार की पुर्नस्थापना करते हुए[4] जून के प्रथम सप्ताह में अपनी सेना की सहायतार्थ आगरा क़िले के सामने जा पहुँचा। क़िले के शीघ्र पतन की आशा न देखकर सूरजमल ने आगरा शहर में रह रहे दुर्ग रक्षकों के परिवार के लोगों को बन्दी बनाकर उन पर दबाव डाला। अन्त में एक लाख रुपये की घूस और पाँच गाँव दिए जानें के वचन पर क़िलेदार ने दुर्ग के दरवाज़े खोल दिए।[5] इस

---

१. जयपुर से रामचन्द्र का रघुनाथराव को २६ मई १७६१ ई० को लिखा गया पत्र, पेशवा दफ्तर, II, पत्र, १४४

२. पेशवा को लिखा गया पुरुषोत्तम महादेव हिंगणे का पत्र, ४ जून १७६१ ई०, हिंगणे दफ़्तर I, पत्र, २१८

३. पेशवा को लिखे वालाजी गोविन्द के २५ जून १७६१ ई० के पत्र से पता चलता है कि नजीव और गंगापार के रुहले इस समय एक हो गए थे, पेशवा दफ्तर, XXIX, पत्र, ५

४. पेशवा दफ्तर, II, पत्र, १४४ से पता चलता है कि सूरजमल ने जमुना पार दोआव में अपने बन्दोबस्त के लिए एक फ़ौज पहले ही भेज दी थी।

५. दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० १२४; घूस दिए जाने की पुष्टि सियार (III, पृ० ४०२) से भी होती है।

प्रकार लगभग एक महीने के घेरे के बाद १२ जून १७६१ ई० को आगरा के क़िले पर जाट सेना का अधिकार हो गया।[1] जाटों को यहाँ लूट में विशाल सामग्री मिली। ऐसा अनुमान है कि सूरमल को यहाँ से ५० लाख रुपये की सम्पत्ति मिली और भारी संख्या में गोला बारूद, शस्त्र व तोपें मिली, जो डीग व भरतपुर के दुर्गों में पहुँचा दी गई।[2] क़िले में स्थायी जाट रक्षक सेना तैनात कर दी गई। इस प्रकार आगरा, जिसे द्वितीय शाही राजधानी का गौरव प्राप्त था, पर जाट राजा का अधिकार स्थापित हो गया।[3] इस अवसर पर सूरजमल ने आगरा के शाही क़िले में अपना भव्य दरबार आयोजित किया और उसे अपने निजी दुर्ग की तरह सजाया। आगरा क़िले और शहर का भलीभाँति बन्दोबस्त करने के बाद सूरजमल अपने पुत्र जवाहर का विवाह रचाने मथुरा लौट आया।[4]

सूरजमल शक्ति के चरमोत्कर्ष पर

पानीपत के युद्ध के तीन माह बाद ही सूरजमल ने अब्दाली व मराठा ख़तरे से मुक्त होकर अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए तेजी से क़दम बढ़ाए। भावी राजनीति के स्वरूप निर्धारण के लिए इस समय हिन्दुस्तान की सभी शक्तियों की दृष्टि शक्तिशाली जाट राजा की गतिविधियों पर टिकी हुई थी। परन्तु मथुरा सम्मेलन में सूरजमल ने ग़लत घोड़े पर दांव लगाया था। जब सभी पक्षों ने इमाद को त्याग दिया था, तब वह अपनी शक्ति उसकी वज़ारत के समर्थन पर व्यय कर रहा था। यद्यपि सूरजमल इमाद के माध्यम से राजधानी पर अपना नियन्त्रण करने की छिपी महत्वाकांक्षा को पूरा करना चाहता था, किन्तु उसका उम्मीदवार इस समय

---

१. तिथि दिल्ली क्रानिकल्स, (पृ० १२४) में दी हुई है।

२. हरचरनदास लिखता है कि क़िलेदार फाजिल खान तो ईमानदार बना रहा, किन्तु द्वार रक्षक मूसा बेग ने तीन लाख रुपये लेकर जाटों के लिए दरवाजे खोल दिए। इस गद्दारी का जाटों ने उसे यह पुरस्कार दिया कि उसे क़ैद में डाल दिया (चहार गुलज़ार, पृ० ४५४ ब), सरकार इस विवरण को भ्रान्ति पूर्ण मानते हैं, जो सही प्रतीत होता है। जाट राजा द्वारा क़िलेदार को दिए गए वचन का पालन न किए जाने का कारण वैण्डल यह बतलाता है कि सूरजमल ने क़िलेदार से उस विपुल सम्पत्ति का हिसाब मांगा, जो अब तक उसके सुपुर्द थी और उस पर यह आरोप लगाया कि उसने ग़लत हिसाब लगाया है, देखें, सरकार, पतन, II, पृ० २७५-७६

३. सियार, III, पृ० ४०२

४. दिल्ली से हिंगणे बन्धु लिखते हैं कि सूरजमल ने आगरा क़िले के अन्दर से सभी मुस्लिम चिन्ह हटाकर उसे यज्ञ हवन आदि से पवित्र किया और उस स्थान पर बैठा, जहाँ बादशाह के अलावा कोई नहीं बैठता था, हिंगणे दफ्तर, II, पत्र ४६; रेने मैडक के अनुसार सूरजमल ने क़िले पर अधिकार के बाद उसका पुनर्निर्माण किया, बंगाल पास्ट एण्ड प्रेज़ेण्ट, जि० ५३ (१९३७ ई०), पृ० ६९

शुजाउद्दौला के मुक़ाबले वहुत निर्वल था। वज़ीर पद की वैध ख़िलअत के अतिरिक्त स्वयं इमाद की अपनी कोई शक्ति या आधार नहीं था, जवकि साधनों एवं समर्थन की दृष्टि से शुजाउद्दौला इस समय अधिक प्रभावशाली उम्मीदवार था। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण वात यह थी कि शाह आलम द्वितीय, जिसे हिन्दुस्तान की प्रायः सभी शक्तियों ने सम्राट के रूप में स्वीकार कर लिया था और इमाद के वीच मेल नहीं हो सकता था, क्योंकि दोनों के वीच रक्त की नदी थी। इसी कारण जीनत महल ने नजीव के समर्थन से इमाद को वज़ारत से वंचित रखने के प्रयास किए, तो दूसरी ओर मथुरा में वज़ीर की ख़िलअत धारण करने के वाद इमाद ने जाट राजा के समर्थन से सम्राट को वदलने का निश्चय किया। यही कारण था जिसके फलस्वरूप याकूव का समझौता प्रयास विफल और मथुरा सम्मेलन भंग हो गया।

वज़ीर और जाट के अलावा मथुरा में एकत्र कोई भी शक्ति शाह आलम को हटाने के पक्ष में नहीं थी। सूरजमल ने इस तथ्य को भाँपकर इमाद को शाह आलम के साथ मैत्री कर लेने की सलाह भी दी[1] किन्तु इमाद ने उसे स्वीकार नहीं किया। मथुरा सम्मेलन की विफलता के वाद भी सूरजमल ने इमाद की इच्छानुसार नया सम्राट घोषित करने की योजना भी वनाई, किन्तु अलीगढ़ में (मई १७६१ ई० के अन्तिम सप्ताह में) जव रुहेले व वंगश सरदारों ने जो जाट राजा का समर्थन कर रहे थे, इस प्रश्न पर अपनी असहमति प्रकट की तो, सूरजमल ने उस योजना को यद्यपि वहुत देर से, किन्तु दूरदर्शितापूर्ण ढंग से छोड़ दिया। इस प्रकार एक अव्यवहारिक राजनीतिक उद्देश्य के लिए होने वाले अपनी शक्ति के दुरुपयोग को रोक लिया। जहाँ तक शाह आलम के साथ सूरजमल के सम्वन्ध का प्रश्न था, केवल इमाद का समर्थन करने के कारण ही जाट राजा उसका विरोधी था, अन्यथा दोनों के वीच मेल होने में कोई कठिनाई नहीं थी। इसलिए अव सूरजमल ने इमाद के निरर्थक वोझ को अपने कन्धों से उतारने का निश्चय किया, ताकि वह अपनी शक्ति का उपयोग अपने राज्य के विस्तार और उसे सुदृढ़ वनाने में कर सके।

अव सूरजमल की जाट सेनाओं ने शीघ्र ही दोआव में कोईल, जलेसर, वुलन्दशहर के कई परगनों पर, जहाँ मार्च १७६० ई० में अब्दाली ने अधिकार कर

---

१. पेशवा को लिखे गए एक पत्र में, जिसमें मथुरा में याकूव के समझौता प्रयासों की विफलता की सूचना दी गई है, हिंगणे सूचित करता है कि वर्तमान में जाट इमाद के साथ शाह आलम से मेल करने की वात भी सोच रहा है (पेशवा दफ्तर, ।।, पत्र, १४६) किन्तु सम्भवतः इमाद के विरोध के कारण सूरजमल को इसमें सफलता नहीं मिली और वज़ीर की इच्छानुसार उसे नया सम्राट वनाने की योजना पर चलना पड़ा, जैसा कि मीरात ए. अहमदी का लेखक हमें वतलाता है (मीरात ए अहमदी, पृ० ६२१)।

लिया था, अपना अधिकार पुनः स्थापित कर लिया। सूरजमल ने मुडसान के स्वतंत्र जाट जमींदार पुहुपसिंह को भी नहीं छोड़ा, जो अब तक उसका समर्थक रहा था, और उसे यहाँ से निकाल बाहर किया।[1] दोआब विजय में उसने शाही व मराठा जागीरों में कोई भेद नहीं किया। सूरजमल के इस आक्रामक रुख को देखकर मराठा क्षेत्रों में भारी चिन्ता हुई,[2] जो इस समय दोआब में अपने खोए हुए प्रदेशों की पुनर्प्राप्ति में उससे सहयोग की अपेक्षा कर रहे थे। १२ जून १७६१ ई० को आगरा दुर्ग पर अधिकार के पश्चात इस सूबे के अधिकांश भाग पर भी बिना किसी प्रतिरोध के जाट राजा का अधिकार क़ायम हो गया। सम्पूर्ण मेवात पर अपना सुदृढ़ अधिकार स्थापित करते हुए उसकी सेनाएँ वर्तमान हरियाणा प्रदेश में प्रवेश कर गई थीं और रेवाड़ी तथा झज्झर को जीतते हुए जाट सेनाएँ दिल्ली से २० मील दूर सराय बरान्त तक पहुँच गईं।[3]

सूरजमल के साथ नजीब के सन्धि प्रयास

वर्षाकाल व्यतीत होते-होते विजयी जाट सेनाओं का खतरा राजधानी के निकट मंडराने लगा और हिन्दुस्तान की राजनीति नजीब और सूरजमल के व्यवहार पर केन्द्रित हो गई। इस समय दोनों के बीच व्यक्तित्व एवं महत्वाकांक्षा के टकराव पर उपयुक्त टिप्पणी करते हुए सियार का लेखक लिखता है, "सूरजमल महत्वाकांक्षी एवं व्यग्र था और उसकी जमींदारी तथा प्रदेश शाहजहाँनाबाद के बहुत निकट था, अतः वह अपने पड़ोसियों को हटाकर उनकी भूमि पर अधिकार कर रहा था। इस आचरण ने नजीब के साथ उसके विवाद को स्थायी रूप से भड़काया और वे दोनों एक दूसरे को ऐसी कुदृष्टि से देखने लगे जैसे दो व्यक्ति प्रथम अवसर पर निकट आने पर फुँफकार मारते हो। यह कहा जा सकता है कि नजीबुद्दौला अपने चरित्र एवं सत्ता में बेचैन था, किन्तु उसने उस पर अपनी आकुलता को छिपाया।"[4] नजीब जो सूरजमल की शक्ति एवं बुद्धि का लोहा मानता था, अच्छी तरह से जानता था कि जाटों के विरुद्ध हिन्दुस्तान की कोई भी शक्ति उसका साथ देने को तैयार नहीं होगी, इसलिए वह शाह के आने के पूर्व किसी भी गम्भीर युद्ध का ख़तरा नहीं उठाना चाहता था। परिणामस्वरूप समझौते के लिए नजीब सूरजमल की ओर झुका।

---

१. इम्पी० गज़० यूनाईटेड प्राविन्सेज़ I, पृ० ३६४

२. पेशवा दफ्तर, XXIX, पत्र, २६, २१ जुलाई १७६१ ई० के विट्ठल सदाशिव के पत्र से पता चलता है कि जाट और रुहेला सेना मराठा प्रदेश पर अधिकार करते हुए बुन्देलखंड की ओर बढ़ रही थी, पेशवा दफ्तर, न्यू सिरीज़ I, पत्र, २४६

३. नूरुद्दीन, पृ० ६१ अ

४. सियार, IV, पृ० २८

अप्रैल १७६१ ई० में राजा नागरमल की मध्यस्थता पर हुई सहमति[1] के आधार पर दोनों पक्षों के बीच समझौते के प्रयास प्रारम्भ हो गए। नजीव की ओर से राजा दिलेरसिंह और जाटों की ओरसे रूपराम कटारी तथा मोहनसिह वार्ता की तैयारी के लिए दिल्ली में मिले और ७ अक्तूबर १७६१ ई० को वे सभी सूरजमल के पास दनकौर पहुँचे। पाँच दिन तक समझौता वार्ता चलती रही और यह हुआ कि परगना झज्झर तथा अन्य वे स्थान जो सूरजमल ने हाल ही में जीते है, उसके मान लिए जायेगे। सूरजमल ने वदले में सम्राट को वार्षिक कर देने का आश्वासन दिया, जिसके लिए नागरमल की जमानत स्वीकार की गई।[2] १५ तारीख को ये लोग दिल्ली लौट आए और अगले ही दिन नजीव ने इस समझौते पर अपनी स्वीकृति दे दी। नजीव ने सूरजमल से भेंट करने की इच्छा के साथ, राजा चेतराम तथा दिलेरसिह को, कुरान की उस प्रति के साथ जिसे लेकर उसने इस सम्बन्ध में शपथ खाई थी, सूरजमल के पास भेजा। गोवर्धन में चार दिन तक नजीव के इन दूतों की सूरजमल के साथ वार्ता चलती रही और अन्त में सूरजमल नजीव से भेंट वार्ता के लिए सहमत हुआ।[3]

इसी वीच १९ अक्तूबर को अब्दाली का दूत दिल्ली पहुँचा और उसने अन्य मामलों के साथ जाट राजा से वसूली और अन्य मामलात तय करने के वारे मे वातचीत की। उसने यह भी प्रकट किया कि लाहौर प्रान्त मे सिक्खों के उपद्रवों के कारण अब्दाली वहाँ पहुँचने वाला है और अगर सूरजमल ने पैसा नहीं भेजा तो शीघ्र ही शाह अपनी सेना के साथ हिन्दुस्तान में प्रवेश (जनवरी में) करेगा।[4] राजा नागरमल, याकूव अली खान और अब्दुल अहद खान (अब्दाली का दूत) ने आपस में मिलकर मुख्य रूप से इस विषय पर विचार-विमर्श किया कि अब्दाली की व्यवस्थानुसार शाह आलम को दिल्ली में मुगल सम्राट के रूप में कैसे स्थापित किया जाय? इसके वाद ये तीनो व्यक्ति नजीव के पास पहुँचे और उसके साथ वातचीत के पश्चात् यह तय हुआ कि राजा नागरमल को सूरजमल के पास भेजा जाय, जो निम्नलिखित विषयों पर उससे बात करे:

१. सूरजमल को समझाकर नजीव से भेंट के लिए उसे दिल्ली के निकट लेकर आवे और भेंट के वाद सूरजमल का पुत्र नजीव के साथ वादशाह के पास (उसे लाने के लिए) जाए।

---

१. हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, २०६

२. पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, ९०

३. वही

४. वही, XXIX, पत्र, २३

२. सभी शासक राजे-रजवाड़े वगैरह मिलकर नजीब के साथ बादशाह (शाह आलम) के पास जाए और उसकी मान्यता स्वीकार करने का वचन दें।[1]

२४ अक्तूबर को नागरमल सूरजमल के पास गया परन्तु अगले ही दिन नजीब हिसार में बन्दोवस्त के लिए चला गया, इस कारण भेंटवार्ता में लगभग १५-२० दिन की देर हो गई। नजीव ने नागरमल को सन्देश भी भेजा कि वह सूरजमल को लेकर दिल्ली पहुँचे, तब तक वह भी अपना कार्य पूरा करके राजधानी आ जायगा और जाट राजा से भेंट के वाद ही वह शाह आलम को लेने जायगा।[2] अन्ततोगत्वा संभवत: नवम्वर के अन्त में यह भेंट सम्पन्न हुई।[3] नजीव और सूरजमल अपनी-अपनी सेनाओं के साथ दनकौर घाट[4] के पास जमुना के दोनों तटों पर पहुँच गए। यह निश्चित हुआ कि नजीव अपने थोड़े से साथियों के साथ नाव में बैठकर तट के दूसरी ओर सूरजमल के शिविर में जायगा। नजीव के सलाहकारों ने उसे ऐसा करने से रोका, परन्तु उसने साहस के साथ सूरजमल से उसके शिविर में मिलना तय किया। सूरजमल ने भी उसका पूरा सम्मान करते हुए अपने हृदय की शुद्धता प्रदर्शित की।[5] सूरजमल ने शाह के खतरे को भाँपकर अस्थायी रूप से शान्ति समझौते की आवश्यकता अनुभव की। इस प्रकार नजीव व जाट राजा के बीच मित्रता की सन्धि सम्पन्न हो गई।[6] लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि शाह आलम द्वितीय को सम्राट और शुजाउद्दौला को वजीर के रूप में मान्यता देने के नजीव के प्रस्ताव और अब्दाली को भेजे जाने वाले खिराज में जाटों के हिस्से के सम्वन्ध में सूरजमल ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं किया, इस कारण मैत्री समझौते के अलावा इस भेंटवार्ता में किसी राजनीतिक मामले पर कोई स्थायी निर्णय नहीं हुआ।

वर्ष १७६२ ई० की शान्त राजनीति

१७६२ ई० के पूरे वर्ष के दौरान पंजाव में अब्दाली की उपस्थिति के कारण हिन्दुस्तान के प्राय: सभी शासक शान्त और पर्दे के पीछे की राजनीति में लिप्त रहे।

---

१. २४ अक्तूबर १७६१ ई० को दिल्ली से बापू महादेव हिंगणे द्वारा पेशवा को लिखा गया पत्र, पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, ८६

२. वही

३. १७ नवम्बर १७६१ ई० को बद्रीनाथ केशव पेशवा को लिखता है, "नजीव हिसार गया हुआ है, जाट और उसके बीच सुलह वार्तालाप का कोई इरादा दिखाई नहीं देता......"पेशवा दफ्तर, XXIX, पत्र, २३

४. वल्लभगढ़ के १५ मील पूर्व में

५. नूरुद्दीन, पृ० ५६; सरकार, पतन, III पृ० २७७

६. नूरुद्दीन, पृ० ६२ ब

सूरजमल, जो इस तथ्य से भलीभाँति परिचित था कि इस बार यदि शाह ने आक्रमण किया तो उसके क्रोध का प्रथम शिकार वही होगा, इस वर्ष आवश्यकता से अधिक शान्त रहा। १७६१ ई० के अन्त में जब वह राजधानी को चारों ओर से घेरकर नजीब से झगड़े पर उतारू था, तब एकाएक जाट राजा द्वारा नजीब से मैत्री कर लिए जाने के पीछे प्रमुख कारण शाह का ख़तरा ही था।

इस वर्ष के प्रारम्भ में अब्दाली ने, जो इस समय सरहिन्द व पटियाला में सिक्खों का दमन करने में लगा हुआ था, हिंदुस्तान के मामलात तय करने के सम्बंध में नजीब को अपने पास बुलाया। फरवरी से अप्रैल तक नजीब शाह के पास रहा।[1] इस बातचीत के बाद शाह ने शाह आलम शुजाउद्दौला, सूरजमल और माधोसिंह को पत्र भेजे।[2] यद्यपि इन पत्रों के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती है, किन्तु ऐसा अनुमान है कि अब्दाली ने इन पत्रों में मराठों के विरुद्ध एक रहने, शाह आलम को सम्राट स्वीकार करने तथा उसे (अब्दाली) नियमित ख़िराज भेजे जाने सम्बन्धी कुछ निर्देश भेजे थे। इसी कारण पत्रों की प्राप्ति के साथ ही सम्बन्धित शासकों में पारस्परिक राजनैतिक गतिविधियाँ आरम्भ हो गईं।

१७६२ ई० में प्रधान मराठा सेनाएँ उत्तर भारत में नहीं थीं। नवम्बर १७६१ ई० में मांगरोल में माधोसिंह को पराजित करने[3] के बाद होल्कर भी दक्षिण को लौट गया था। जयपुर के राजा माधोसिंह और गंगापार के रुहेलों ने सूरजमल को उत्तर से मराठा अधिकार को समाप्त करने के लिए उत्साहित किया। इसके अलावा नजीब से सन्धि और अब्दाली के ख़तरे के कारण शाही राजधानी की ओर उसका विस्तार रुक गया था। ऐसी परिस्थितियों में सूरजमल ने इस वर्ष मराठा क्षेत्रों पर शान्तिपूर्वक शनैः शनैः अपने अधिकार की स्थापना का कार्य किया। परिणामस्वरूप वह दोआब से चम्बल तक मराठा अधिकार को समाप्त करने में सफल रहा।[4]

अब्दाली का पत्र आने के बाद माधोसिंह ने एक बार फिर मराठा विरोधी संघ

---

१. नूरुद्दीन, पृ० ५७; गण्डासिंह, दुर्रानी, पृ० २८१

२. हिंगणे दफ्तर, II, पत्र, ४६, ६ अप्रैल १७६२ ई०

३. पेशवा दफ़्तर, न्यू सिरीज, I, पत्र, २५०

४. एक मराठा पत्र में लेखक लिखता है, "राजश्री विट्ठल सदाशिव ग्वालियर से देश चले गए हैं। इधर कोई बड़ी फौज नहीं है। सूना प्रदेश देखकर जाट, अपने पाँव पसारकर, सब समेटकर सवार हो गया है। जयगनर वाले और विजयसिंह को लिखकर भेजा कि दक्षिणी लोगों का सारा मुल्क ले लिया है और सारे थाने उठा लिए है। तुम उज्जैन प्रान्त क़ब्जे में ले लो तब तक मैं इधर से बन्दोबस्त करके आ रहा हूँ। जाट ने इस प्रकार किया है।" पेशवा दफ्तर, XXIX पत्र, २६।

बनाने का विचार किया। उसने विजयसिंह से विचार विमर्श करने के बाद अनेक शासकों से सम्पर्क किया। सूरजमल से भी बातचीत की। दूसरी ओर नवाब शुजाउद्दौला ने, जो इस समय सम्राट शाह आलम का वास्तविक संरक्षक था और अपनी वज़ारत स्वीकार न किए जाने एवं अत्यधिक खिराज माँगे जाने के कारण अब्दाली से असन्तुष्ट था, माधोसिंह को अब्दाली के बुरे इरादों के प्रति सतर्क करके मराठों से एकता की बात लिखी। इस पर माधोसिंह ने एक पत्र के साथ मिर्ज़ा लुतफुल्लाह बेग को शुजाउद्दौला के पास भेजा और अपनी योजना के बारे में उसे विस्तार से अवगत कराया। माधोसिंह ने नवाब को लिखा कि विजयसिंह तो उसके साथ है ही, सूरजमल से भी बात प्रत्यक्ष में कर ली है और अभी मिर्ज़ा लुतफुल्लाह बेग भी करके आ गया है। उसने उनके साथ मिलने का भरोसा दिलाया है किन्तु वह दिल से मराठों से बिगाड़ नहीं चाहता है, फिर भी सब सरदारों के आ जाने पर जाट को दबा कर उससे बात पक्की कर लेंगे। अहमद खान, हाफ़िज़ खान तथा डून्डी खान को भी लिखा है। सबके एक स्थान पर इकट्ठा हो जाने पर शाह की सैन्य सहायता मंगवाकर मालवा की ओर कूच करेंगे और मराठों को नष्ट करके, उनके थाने उठाकर बन्दोबस्त करेंगे।[1] परन्तु माधोसिंह की इस योजना का समुचित

---

१. शुजाउद्दौला के पास मिर्ज़ा लुतफुल्लाह बेग के साथ गया जयपुर का प्रतिनिधि दोनों ओर के समाचारों का विस्तृत विवरण देते हुए लिखता है, "हुक्म आयो अब्दाली की बदनीयति व दक्षिण्यां ने मिलाय ले बाकी बात विचारी तो परि भाई साहब (माधोसिंह) सलाह लिखी तो ई भांति छै। परि महाराज विजयसिंहजी का तो शामिल होवा की बात अमल में आया ही पातवार और (गंगा) पार का सरदार व सूरजमल शामिल हूवा तदि म्हे भी तैयार छां सो म्हे आया तदि विजयसिंहजी भी आसी ही सो ए समाचार नवाब ने पढ़ाया— जो अहमद खां, हाफ़िज़ रहमत, डून्डे खां म्हारि शामिल छै सो कोल वचन व शाह का लिखवा व दक्षिण्यां से उखालपाति पड़ी तो सबब करि जुदा नहीं और सूरजमल के म्हांके बातां रूबरू भी हुई और अब मिर्ज़ा लुतफुल्लाह बेग भी करि आयो सो म्हांकै साथी भाई साहब सो मिलबो कबूल कियो छै परि''''यो दक्षिण्या की बात ने दिल सो बिगाड़नो नचाहे छै''''सो रूबरू सारां के बात पकी हो जाय तदि शाह ने अरज लिखी दक्षिण्यां की लिखा पढ़ी ने''''अहमद खां व रुहेला ने बुलाय सूरजमल ने दबा शाह की ताकीद मंगाय साथि ले आयां ही मालवे चली दक्षिण्यां ने तंबीह करी मालवा में अमला में अमल करावां''''और सूरजमल का दिल्ली की भी गिरां काढ़िवा की छै''''''''''वकील सारां का हाजिर छै त्यां ने ताकीद फरमाय दी छै''''''''''सो मिर्ज़ा लुतफुल्लाह बेग नवाब ने कह्या सो अरज लिख्या छै मिती श्रावण वदी ३ संवत् १८१९ (९ जुलाई १७६२ ई०), आमेर रिकार्ड, वि० संवत् १८१९ का बण्डल, पत्र श्रावण कृष्णा ३ वि० सं० १८१९

स्वागत नहीं हुआ। बाद में (जून १७६२ ई०) किसी समय नारनौल के निकट माधोसिंह और नजीब की भेंट हुई। यहाँ दोनों ने यह अनुभव किया कि सभी लोगों में अभी मतैक्य न होने के कारण वर्षा के बाद समझौता करना अधिक उपयुक्त होगा। वर्तमान में शाह को एक करोड़ रुपया देना तय किया और इस सम्बन्ध में सभी के वकील दिल्ली में मिले और उन्होंने रुपया एकत्र होने के बाद शाह के समक्ष उपस्थित होने का निर्णय लिया। इस उद्देश्य से शुजा के वकील रजा कुली खान, नजीब के वकील मेघराज और याकूब अली के वकील आत्माराम को शाह के समक्ष भेजने का निश्चय किया गया। जाट का वकील भी इस समय दिल्ली में विद्यमान था।[1] इस प्रकार अथक प्रयासों के बावजूद सभी शक्तियों को एक करके शाह आलम के सम्मुख उपस्थित करने और मराठों को मालवा से निकालकर उन्हें पूर्णतया नष्ट करने की योजना सफल नहीं हो सकी। सूरजमल, जो अब्दाली को खिराज दिए जाने से बचना चाहता था, अपना रुख स्पष्ट किए बिना इन गतिविधियों मे भाग लेता रहा। उसने सभी पक्षों से सम्बन्ध रखते हुए उत्तर में मराठा विरोध की नीति जारी रखी, ताकि अब्दाली के क्रोध को उसके प्रति कम किया जा सके। इसी कारण वह इस समय न तो शाह आलम का विरोधी था और न ही इमाद की वज़ारत का समर्थक।

हिन्दुस्तान के सभी शासकों से पूरे राजनैतिक विचार विमर्श के बाद अक्तूबर १७६२ ई० में नजीब पुनः शाह के पास लाहौर गया। यहाँ पर याकूब अली, शाह आलम व शुजाउद्दौला के प्रतिनिधि भी पहुँचे। इस भेंटवार्ता में यह तय हुआ कि शाह आलम को सम्राट एवं शुजाउद्दौला को वज़ीर माना जाय और हिन्दुस्तान की ओर से ४० लाख रुपया प्रतिवर्ष अफगान नरेश को ख़िराज दिया जाय। इस विषय में अब्दाली ने भारत के प्रमुख शासकों को पत्र लिखे और अपने दरबार से रजा कुली खान के साथ सम्राट तथा वज़ीर के लिए खिलअत रवाना की। १२ दिसम्बर १७६२ ई० को शाह अपने देश के लिए रवाना हो गया और १८ जनवरी १७६३ ई० को नजीब भी दिल्ली लौट आया।[2]

---

१. दिल्ली से मराठा राजदूत हिंगणे पेशवा को उपर्युक्त घटनाक्रम की जानकारी देते हुए आगे लिखता है, "इस वक्त सबके एक जगह आने का काम पूरा नहीं हुआ है। इसलिए यह सोचा गया कि सब मिलकर शाह को एक करोड़ रुपया देना मंजूर करें...............................रुपयों की गारन्टी और विश्वास कौन दे, इसलिए सब जाट के पास जा रहे हैं। यह भी उन्हीं में मिला हुआ है। परन्तु हमें यह कहना है कि तुम तो स्वामी का बन्दोबस्त और अब्दाली से दोस्ती करने वाले हो।" हिंगणे दफ्तर, I, पत्र, २१७

२. नूरुद्दीन, पृ० ५७ ब, सरकार, पतन, II, पृ० २४२

सूरजमल द्वारा अहमद ख़ान बंगश को सहायता

पंजाब से अब्दाली के लौटने की ख़बरों के साथ ही १७६३ ई० के प्रारम्भ में सूरजमल की शान्त धमनियों में रक्त संचार स्वाभाविक रूप से पुनः प्रारम्भ हो गया। अपने राज्य की सीमा पर पीछे की ओर से उसे कोई ख़तरा नहीं था। वर्तमान में चम्बल पर मराठों का कोई डर नहीं था जो पानीपत की पराजय से अभी संभल नहीं पाए थे। पड़ोसी जयपुर के शासक माधोसिंह से उनके मैत्री-सम्बन्ध थे। अतः दूर गंगापार अवध और अफ़गानों के झगड़ों में उसने हस्तक्षेप किया।

शाह द्वारा भेजी गई वजीर की खिलअत पहनने के बाद शुजाउद्दौला ने शाह आलम के साथ राजधानी के लिए प्रयाण करने का निश्चय किया और इस कार्य में सहायता लेने के उद्देश्य से सभी हिन्दुस्तानी शासकों को उसने पत्र भेजे। परन्तु सिकन्दरा पहुँचने (फरवरी १७६३ ई०) पर शुजाउद्दौला ने अकस्मात् अपने प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी अहमद ख़ान बंगश से युद्ध करने का निश्चय किया। सिकन्दरा और उसके आस-पास के बंगश के प्रदेशों मे अवध सेना की लूटमार के परिणामस्वरूप अहमद ख़ान ने भी तत्काल एक विशाल सेना तैयार करके शुजाउद्दौला का सामना करने का निश्चय किया। उसने जाट राजा सूरजमल को भी अपनी सहायता के लिए बुलाया।[1]

सूरजमल के रुहेले व बंगश अफ़गानों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। दोआब में इन दोनों का आपसी समझौता भी था और मराठों के विरुद्ध इस क्षेत्र में वे एक दूसरे के सक्रिय सहयोगी थे। इमाद की वज़ारत के प्रश्न पर ये अफगान सूरजमल के समर्थक इसीलिए थे, क्योंकि शुजाउद्दौला के साथ उनकी शत्रुता थी, किन्तु सम्राट (शाह आलम) के प्रश्न पर वे अब्दाली के समर्थक थे। दूसरी ओर सूरजमल की शुजाउद्दौला से विशेष शत्रुता नहीं थी, किन्तु वे किसी मामले पर सक्रिय सहयोगी भी नहीं थे। इसके विपरीत अनेक राजनीतिक मसलों पर दोनों के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न थे। इन परिस्थितियों में सूरजमल अहमद ख़ान की उपेक्षा नहीं कर सकता था, जो मात्र अपने राज्य की रक्षा करना चाहता था, अतः जाट राजा ने कृपाराम पुरोहित के नेतृत्व में २००० घुड़सवार तुरन्त रवाना कर दिए।[2]

अहमद ख़ान बंगश की सहायतार्थ हाफ़िज़ रहमत, डून्डी ख़ान आदि की समर्थक सेनाओं के आ जाने से कुछ ही दिनों में उसकी सैनिक संख्या ४०,००० हो गई। नजीब ने, जो इस बीच शुजाउद्दौला के शिविर में शामिल हो चुका था,

---

१. शुजाउद्दौला, I, पृ० १३५-१३६, नूरुद्दीन, पृ० ५७ ब—५८ अ

२. नूरुद्दीन, पृ० ५८ अ, किन्तु आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव इस जाट सेना की उपस्थिति का उल्लेख नहीं करते हैं, देखें, शुजाउद्दौला, पृ० १३५-१४१

परिस्थिति की गम्भीरता को भाँपते हुए वज़ीर को यह सलाह दी कि वर्तमान परिस्थितियों में उसे अहमद ख़ान वंगश से अपनी शत्रुता त्याग देनी चाहिए, विशेपकर इसलिए क्योंकि सारे अफ़गान इकट्ठे हो गए हैं और जाट सेना भी अफ़गानों की मित्र है। ऐसा लगता है कि सारा हिन्दुस्तान यहाँ एकत्र हो गया है। अन्त में नजीव की मध्यस्थता से यह युद्ध टल गया। नजीव दिल्ली लौट आया और शुजाउद्दौला की शाह आलम के साथ राजधानी की ओर प्रयाण करने की योजना पुन: स्थगित हो गई।[1]

बलूचों से संघर्ष और फ़र्रुखनगर पर अधिकार

१७६३ ई० के वर्ष में जब सूरजमल अपने राज्य के अधिकतम विस्तार के प्रयासों में जुटा हुआ था, तभी उसे अपने मेवात प्रान्त में तीव्र अशान्ति एवं अव्यवस्था का सामना करना पड़ा। जाट राज्य के पड़ोस में मेवाती जाति हमेशा अपने प्रदेश के चारों ओर राजमार्ग पर तथा अपने निकट जाट प्रदेश की सीमाओं पर लूटमार करती रही है। अलवर के शाही दुर्ग को विजय (मार्च १७५६ ई०) करने के समय से ही सूरजमल ने इस भूभाग को स्थायी जाट राज्य का अंग बनाने के सुदृढ़ प्रयास प्रारम्भ कर दिए थे। इसी उद्देश्य से उसने अलवर से २० मील उत्तर की ओर किशनगढ़ में एक और सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण किया।[2] वैण्डल के अनुसार सूरजमल की योजना राजधानी के पश्चिम की ओर मेवात हरियाणा और उससे सटे दोआव के कुछ इलाक़ों को मिलाकर जवाहरसिंह के लिए एक दूसरा जाट राज्य बनाने की थी[3] और मुख्य जाट राज्य वह नाहरसिंह के लिए सुरक्षित रखना चाहता था।

पिछले कई वर्षों से जवाहरसिंह मेवात में लुटेरे डाकुओं के उपद्रवों को शान्त करके प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित करने के कार्य में लगा हुआ था। रेवाड़ी पर अधिकार हो जाने के वाद जाटों के थाने दिल्ली से २० मील दूर सराय बसन्त और सम्भल पर स्थापित हो गए, जिनके गाँव दिल्ली से केवल १२ मील दूर तक फैले हुए थे और उनका प्रशासन अब सीधे जाटों के अधिकार में था। जवाहरसिंह को जब तब मेव लुटेरों द्वारा राजमार्ग पर डकैती की सूचना मिलती तो वह उनके पदचिन्हों को खोजता हुआ उन्हें जा पकड़ता और उन्हें निर्दयतापूर्वक मार डालता अथवा अग्नि में ज़िन्दा फेंक देता था। अनेक मेवाती स्वयं अपने क्षेत्र में भागकर दुर्गम स्थानों में छिप जाया करते थे और अनेकों को स्थानीय बलूच जागीरदारों का संरक्षण प्राप्त था। कठोर दमन और निर्वासन के बावजूद वे इस कार्य को नहीं छोड़ते थे।[4]

---

१. नूरुद्दीन, पृ० ५८ व—५९ अ
२. नूरुद्दीन, पृ० ६० व
३. सरकार, पतन, II, पृ० २७७
४. नूरुद्दीन, पृ० ६१ अ

सानुल्या नामक एक मेव डकैत ने जवाहरसिंह को भारी चुनौती दी। वह मात्र अपने १० घुड़सवार साथियों के साथ राजमार्गों पर डकैती करता था और डीग दुर्ग के निकट तक पहुँचकर काफ़िलों को लूटा करता था। वह होडल तथा बरसाना के बीच एक छोटी पहाड़ी कोकलाशी पर खड़ा होकर उधर से गुज़रने वालों को लूटता था। जाट प्रदेश के निवासी उसके अत्याचारों से दु:खी हो गए थे और जाट सेना उसकी कार्यवाहियों को रोकने अथवा उसे गिरफ्तार करने में असफल रही थी। सानुल्वा ने बलूचों के प्रदेश में, जिनका नेता फ़र्रुखनगर का मुसावी ख़ान था, तोरु दुर्ग[1] में आश्रय पा रखा था। इस संरक्षण के बदले बलूच सरदार को वह लूट के माल में से कुछ हिस्सा दिया करता था।[2]

जवाहरसिंह ने अब अपने शत्रु के संरक्षकों से निपटने का निश्चय किया और अपने पिता से कहा, "बलूच सरदार सानुल्वा को अपने बीच में शरण देते हैं। जब तक मैं उन पर प्रहार नहीं करूँगा वे उसे अपनी सीमा में से निर्वासित नहीं करेंगे।" सूरजमल ने इसकी स्वीकृति दे दी। तब जवाहरसिंह ने पहले बलूचों को यह संदेश भेजा कि वे उसके शत्रु सानुल्वा को बाहर निकाल दें, अन्यथा गंभीर परिणामों के लिए तैयार रहें। कोई सन्तोपजनक प्रत्युत्तर न मिलने पर जवाहरसिंह ने फ़र्रुखनगर[3] पर चढ़ाई कर दी और रास्ते में आने वाले गाँवों को नष्ट करता हुआ तेज़ी से आगे बढ़ा। उधर मुसावी ख़ान के आदेश से अनेक बलोच सरदार ताज मोहम्मद खान के नेतृत्व में जवाहरसिंह का सामना करने पहुँचे। प्रथम मुठभेड़ में बलोच जाटों के प्रहार का सामना नहीं कर पाये और अनेक बलूच नेता भाग खड़े हुए और नजफ कुली खान का एक महत्वपूर्ण हिन्दू साथी राजा जयसिंह राव मारा गया। बलूचों की इस दुर्दशा से क्रुद्ध होकर ताज मोहम्मद ख़ान ने प्रत्याक्रमण के लिए कुरान व इस्लाम के नाम पर अपने सैनिकों में नवीन उत्साह का संचार किया। इसके बाद ही वे जाट सेना को पीछे धकेलने में सफल रहे।[4]

जवाहरसिंह इस पराजय से हताश नहीं हुआ और लौटकर उसने अपने पिता को कहा कि जब तक, मैं बलूचों को काट नहीं दूँगा, मैं आराम नहीं करूँगा। दूसरी ओर नजीब ने जो बलूचों का संरक्षक था, इन घटनाओं पर चिन्ता व्यक्त करते हुए सूरजमल को लिखा, "आपके और मेरे बीच शान्ति व एकता की मैत्री सन्धि है। बलूच भी मेरे आश्रित हैं, जो अधिक शक्तिशाली नहीं हैं। आप अकारण उन्हें निष्कासित कर रहे हैं। यह अपनी मित्रता के विरुद्ध होगा।" सूरजमल ने उसे जवाब भेजा कि,

---

१. रेवाडी के बीस मील पूर्व में

२. नूरुद्दीन, पृ० ६१

३. रेवाडी के २२ मील उत्तर पूर्व में

४. नूरुद्दीन, पृ० ६२ अ

"यह संघर्ष मेरे नियन्त्रण के परे है। मेरा पुत्र इस कार्य के लिए दृढ़ निश्चयी है और बलूच भी दण्ड के योग्य हैं क्योंकि वे राजमार्गीय डकैतों को अपने घरों में शरण दे रहे हैं।"[१]

इस प्रकार जवाहरसिंह ने दूसरी बार बलूचों के विरुद्ध प्रयाण किया और उनके प्रदेशों को लूटते-उजाड़ते हुए विशाल पैमाने पर उनके विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया शान्ति की इच्छा से एक बार फिर नजीब ने सूरजमल से निवेदन किया, "श्रीमान आप अपने समझौते पर दृढ़ रहने वाले बुद्धिमान अनुभवी व्यक्ति हैं। क्या कारण है कि आप मेरे और मेरे अधीन लोगों के प्रदेश के निकट आ गए हैं और आपके सैनिक दल अशान्ति उत्पन्न करते हैं तथा किसानों को कुचलते हैं।" सूरजमल ने उत्तर दिया कि यह जवाहरसिंह की इच्छा है कि वह मुसावी खान बलोच के घर फ़र्रुखनगर में अपनी चौकी स्थापित करना चाहता है। वह उसे (मुसावी खान) कहे कि वह किसी अन्य स्थान पर निवास करे अन्यथा उसका जीवन सम्पत्ति एवं पारिवारिक सम्मान नष्ट कर दिया जायगा। इस चेतावनी के साथ ही सूरजमल ने स्वयं अपने पुत्र की सहायतार्थ जाने का निश्चय किया। उधर भयभीत बलूच सरदारों ने नजीब से प्रार्थना की कि जाट राजा उनके मुकाबले अत्यधिक शक्तिशाली है, अतः उसे उनकी सहायतार्थ शीघ्र आना चाहिए।[२]

जाट राजा ने इस समय निश्चय कर लिया था कि वह फ़र्रुखनगर और बहादुरगढ़ से बलूचों को निकाल बाहर करेगा और वहाँ पर अपना अधिकार क़ायम करेगा।[३] नवम्बर १७६३ ई० में सूरजमल के नेतृत्व में एक शक्तिशाली जाट सेना जिसमें २०,००० घुड़सवार, तोपें और बड़ी संख्या में पैदल सैनिक शामिल थे, ने फ़र्रुखाबाद के निकट पहुँचकर दुर्ग को घेर लिया। क़िले के चारों ओर खाईयाँ खोदकर मोर्चाबन्दी और गोलाबारो शुरू कर दी गई। मुसावी खान के नेतृत्व में ताज मोहम्मद ख़ान के अलावा प्रायः सभी बलूच सरदारों ने क़िले के अन्दर एवं बाहर से जाट सेना का साहसपूर्वक मुक़ाबला किया। नजीब ने, जो इस समय नजीबाबाद में बहुत बीमार था, पहले तो दिलेरसिंह को दोनों पक्षों में समझौते के लिए भेजा और सफलता न मिलने पर बाद में स्वयं युद्ध स्थल के लिए रवाना हुआ। अपनी बीमारी के बावजूद नजीब डेढ़ दिन में लगभग १५० मील की दूरी तय करके नजीबाबाद से दिल्ली पहुँचा (१४ दिसम्बर को फ़र्रुखनगर के पतन के दो दिन बाद)। परन्तु उसके पूर्व ही जाटों की तोपें फ़र्रुखनगर दुर्ग की दीवारें तोड़ने में

---

१. नूरुद्दीन, पृ० ६२ ब

२. नूरुद्दीन, पृ० ६३ सियार का लेखक केवल इतना ही लिखता है कि बलूचों ने नजीब से शीघ्र सहायता न भेजने की कड़ी शिकायत की, सियार, IV, पृ० ३०

३. हिंगणे दफ्तर, II, पत्र, ५३

सफल हो गई। इस गम्भीर स्थिति में जब किसी भी ओर से सहायता की आशा दिखाई न दी तो असहाय मुसावी ख़ान ने सूरजमल को समर्पण का प्रस्ताव किया और जाट राजा द्वारा सुरक्षा के आश्वासन पर वह क़िले से वाहर निकल आया। इस प्रकार एक महीने के घरे के बाद १२ दिसम्बर १७६३ ई० फ़र्रुखनगर के दुर्ग पर जाट सेना का अधिकार हो गया। जवाहरसिंह ने दुर्ग में प्रवेश करके वहाँ की सारी सम्पत्ति, तोपखाना और कोष पर अधिकार कर लिया। अपने आश्वासन के विपरीत सूरजमल ने मुसावी खान को उसके पूरे परिवार सहित बन्दी बनाकर डीग के दुर्ग में भेज दिया।[1]

सूरजमल का नजीब पर आक्रमण करने का निश्चय

फ़र्रुखनगर दुर्ग का पतन और मुसावी खान की गिरफ्तारी नजीव पर सीधा आघात और सूरजमल द्वारा युद्ध की चुनौती थी। किन्तु नजीव बुद्धिमतापूर्वक इस चुनौती से पलायन करना चाहता था, क्योंकि वह जानता था कि सूरजमल का लक्ष्य वह स्वयं है, जो येन-केन प्रकारेण उसे संघर्ष में उलझाकर राजधानी से उसकी सत्ता समाप्त करने पर तुला हुआ था। फ़र्रुखनगर दुर्ग के पतन के दो दिन बाद नजीव दिल्ली पहुँच गया था, किन्तु वह जाट राजा की शक्ति से भयभीत था और जब उसे सूरजमल के बहादुरगढ़[2] पर आक्रमण करने और दिल्ली की ओर बढ़ने का समाचार मिला तो उसे अपनी सत्ता हिलती हुई दिखाई दी। भयभीत नजीव ने शान्ति एवं मित्रता के स्वर में सूरजमल को यह संदेश भेजा, "आप महान् सेनापति है और आप तथा मुझ में पूर्ण मित्रता है। ये बलूच मेरे आश्रित हैं और आपने उनके साथ इतना दमनपूर्वक व्यवहार किया कि इस मामले में मेरी भावनाओं का भी आपने कभी ख्याल नहीं रखा। यह किस प्रकार का शिष्टाचार है ? फिर भी जो हो चुका है, उसे भुला दिया जाना चाहिए। आपने जो क़िला जीता है, उसे आप अपने पास रख

---

१. नूरुद्दीन, पृ० ६३ व-६४ व; तिथि दिल्ली क्रानिकल्स से, पृ० १२८; १२ दिसम्बर १७६३ ई० को हिंगणे द्वारा पेशवा को लिखे गए पत्र में संक्षेप में युद्ध के चलते रहने का ही वर्णन है, हिंगणे दफ्तर, II, पत्र, ५३; मुंशी बिहारीलाल इस युद्ध का उल्लेख नहीं करता है (पृ० ८); वैण्डल, पृ० ८८-८९,

२. दिल्ली से २४ मील दूर बहादुरगढ़ के दुर्ग एवं शहर का निर्माता बहादुर ख़ान बलोच था, जिसने राजधानी में गृह युद्ध के समय सफ़दरजंग के विरुद्ध सम्राट के पक्ष में इमाद के साथ उत्कृष्ट सेवा करके अपने चरित्र को ऊँचा उठाया था और सहारनपुर की फ़ौजदारी प्राप्त की थी। राजधानी के चारों ओर की फ़ौजदारी प्राप्त करने के लिए वह शक्तिशाली हैसियत रखता था। इस समय सूरजमल के आक्रमण के विरुद्ध उसने नजीब से सहायता की याचना की, देखें, सियार, IV, पृ० २९-३०

सकते हैं। किन्तु यह उचित नहीं है कि आप मुसावी ख़ान को उसके परिवार के साथ बन्दी बनाए रखें। आपको उन्हें मेरे प्रति सम्मान की ख़ातिर मुक्त कर देना चाहिए।"[1]

सूरजमल ने, जो इस समय नजीब को राजधानी से निष्कासित करने के लिए[2] युद्ध करने का दृढ़ निश्चय कर चुका था, नजीब के साथ अपने मैत्री समझौते के भंग होने की सूचना देते हुए उसे दो टूक भाषा में उत्तर दिया, "आपके और मेरे बीच समझौता और मैत्री सन्धि है। ये व्यक्ति (बलोच) मेरे पुत्र के शत्रु हैं, इसलिए वास्तव में वे मेरे शत्रु बन गए हैं। आपके लिए यह कहाँ तक उचित है कि आप स्वयं मेरे शत्रुओं की मुक्ति के लिए प्रयास करें और इस मामले में तर्क करें ? आपके लिए यह अनुचित था कि नजीबाबाद से दिल्ली प्रयाण करें। उससे यह स्पष्ट हो गया था कि आपने मेरे विरुद्ध कूच किया था। परन्तु इस बीच ईश्वर की कृपा से इस कार्य में मुझे इच्छित सफलता मिल गई। अगर वह आक्रमण इस समय तक समाप्त नहीं हो गया होता तो आप मुसावी ख़ान के साथ शामिल हो चुके होते, क्योंकि आपने इस प्रकार का विचार कर लिया था। उसी समय आपके और मेरे बीच मैत्री सन्धि टूट चुकी थी। चूँकि आपकी तरफ़ से विश्वासघात हो चुका है, अत: अब मेरे से कोई अच्छी अपेक्षा न करें।"[3]

सूरजमल का अन्तिम युद्ध और अप्रत्याशित मृत्यु

सूरजमल के कठोर रुख़ के बावजूद नजीब ने अन्तिम क्षण तक इस बात का प्रयास किया कि उसके साथ युद्ध न हो। उसने स्वयं इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया कि मुसावी ख़ान के मामले को लेकर अब जाट राजा से सम्बन्ध बिगाड़ना उचित नहीं और न ही यह बुद्धिमत्तापूर्ण होगा कि सूरजमल जैसे शक्तिशाली व्यक्ति को शत्रु बनाया जाय, जिसके पास जन व धन के अपार साधन हैं। अत: नजीब ने एक बार पुन: १९ दिसम्बर १७६३ ई० को याकूब अली ख़ान

---

१. नूरुद्दीन, पृ० ६४ ब

२. गुलाम हुसैन लिखता है कि इस समय सूरजमल ने राजधानी दिल्ली और उसके चारों ओर के प्रदेश की फ़ौजदारी की मांग नजीब के समक्ष प्रस्तुत की थी, सियार, IV, पृ० ३०; बयान ए वाकया (पृ० ३०२) का लेखक कहता है कि मुसावी ख़ान और अन्य सरदारों को डीग में बन्दी बनाने के बाद सूरजमल ने नजीब को सन्देश भेजा कि उसे राजधानी छोड़कर मियाँ दोआब उसे सौंप देना चाहिए। परिस्थितियों के दबाव से नजीब ने सिकन्दरा व अन्य परगने समर्पित करने का प्रस्ताव किया, किन्तु सूरजमल सन्तुष्ट नहीं हुआ, देखें, कानूनगो, जाट पृ० १५०

३. नूरुद्दीन, पृ० ६५ अ

को जाट राजा के पास शान्ति प्रस्तावों के साथ भेजा। उसके साथ दिलेरसिंह और करीमुल्लाह खान को भी भेजा गया।[1]

सूरजमल इस समय अपनी सेना के साथ कूच करता हुआ दिल्ली के १६ मील निकट पहुँच चुका था और कालापहाड़ पर उसने अपना शिविर स्थापित किया।[2] नजीब के दूतों ने मुल्तानी छींट के दो सुन्दर वस्त्रों की भेंट के साथ जाट राजा का सम्मान किया। अपने मनपसंद रंगों पीले व गुलावी में सुन्दर छपाई ने सूरजमल का मन मोह लिया और उसने तुरन्त इन कपड़ों की अपने लिए वेश-भूषा बनाने का आदेश दिया।[3] परन्तु यह मोहकता और दूतों की विनम्र भाषा में नजीव की शान्ति याचना जाट राजा के कठोर दिल को नहीं भेद सकी। उसने अपने रास्ते के कांटे नजीव को उखाड़ फेंकने का पक्का निश्चय कर रखा था। सूरजमल ने दूतों से कहा, "नजीबुद्दौला ने मेरी आशा के विपरीत कार्य किया है। दिल को साफ़ करना अव असम्भव है। वह एकमात्र अपने सहगोत्री सैन्यदल के गर्व में नजीबाबाद से आया है। अतः मेरे लिए यह आवश्यक है कि एक वार मैं उसकी सेना का सामना करूँ।"[4] वार्तालाप का कोई परिणाम न निकलते देख जव याकूव अली ने यह कहते हुए विदा "मांगी, मेरे स्वामी राजा, मैं आशा करता हूँ कि जव मैं कल वापस आऊंगा तो आप किसी वात पर कठोर रुख नहीं अपनाएँगे।" को सूरजमल ने उसी क्षण जवाव दिया, "यदि आप सिर्फ़ शान्त करने के लिए आये हैं, तो अच्छा यह होगा कि अव बिल्कुल ही न आवें।"[5] इस प्रकार शान्ति की समस्त संभावनाएं समाप्त हो गई।

२३ दिसम्बर को करीमुल्लाह ने लौटकर अपने स्वामी को वार्तालाप का निष्कर्ष बतलाते हुए कहा, "यदि आपके हृदय में सम्मान की एक भी वूंद है, तो आपको तुरन्त युद्ध करना चाहिए, इसका कोई दूसरा इलाज नहीं है और न कोई दूसरा पक्ष है।" नजीव ने तव कालचक्र को प्रवल जानकर उसकी ओर मुड़कर कहा, "सही है, और मैं इस मूर्तिपूजक के लिए ऐसा ही करने की आशा करता हूं।"[6] इस प्रकार दोनों पक्षों में युद्ध की तैयारियाँ तेजी से शुरू हो गई।

नजीव को युद्ध की चुनौती भेजने के साथ ही सूरजमल ने अपने डेरों का अधिकांश सामान अपने प्रदेश की ओर भिजवा दिया और मात्र घुड़सवारों की फुर्तीली

---

१. नूरुद्दीन, पृ० ६५ व, सियार, IV, पृ० ३०;
दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० १२८

२. नूरुद्दीन, पृ० ६५ व

३. सियार, IV, पृ० ३०

४. नूरुद्दीन, पृ० ६५व -६६अ

५. सियार, IV, पृ० ३१

६. सियार, IV, पृ० ३१, तिथि दिल्ली क्रानिकल्स से, पृ० १२८

सेना के साथ हिन्डीन नदी पार करके गाजियाबाद नगर के चारों ओर के गाँवों को लूटकर उनमें आग लगा दी और केवल किला सुरक्षित रहा। २४ दिसम्बर को सुबह वह अपनी सेना के साथ कालकापहाड़ी के रास्ते से दिल्ली के निकट ८ मील दूर जमुना किनारे पहुँचकर मोर्चाबन्दी शुरू कर चुका था। यह समाचार सुनकर नजीब अपने सेना के साथ राजधानी से बाहर निकला और खिज्राबाद के बाग के निकट पहुँचा। यहाँ से उसके और जाट सेना के बीच मात्र ४ मील की दूरी थी। सूरजमल ने जब जमुना पार करके नदी के दूसरी ओर डेरा किया, तो नजीब शहर को वापस लौट आया उसने तत्काल सागरमल खत्री को अपने व्यक्तिगत सेवक करीमल्लाह के साथ इस संदेश के साथ सूरजमल के पास भेजा, "आपने जो किया वह अच्छा किया और जो आप कर रहे हैं वह अच्छा कर रहे हैं। भूत भूत ही है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सभी बातों में आप मुझसे श्रेष्ठ हैं। आप अच्छे घुड़सवार और श्रेष्ठ बन्दूकची हैं। शक्तिशाली दुर्ग आपके अधिकार में है। इन दिनों हिन्दुस्तान का कोई अन्य राजा इतना श्रेष्ठ साधन सम्पन्न नहीं है, जितने आप हैं। आपके पास बड़ा भूभाग और कोष भी है। इसलिए बात यह नहीं है कि मैं युद्ध लड़ रहा हूँ, बल्कि आप अकारण हिंसा भड़का रहे हैं। अब रुको और अपने प्रदेश को लौट जाओ। आपने जो पूरा करने का निश्चय किया था वह आप कर चुके हैं और उसके अतिरिक्त आपने मेरे कुछ गाँवों को भी उजाड़ दिया है। यह भी हो चुका, अतः अब आपको लौट जाना चाहिए।"[१]

अर्द्धरात्रि को सागरमल और करीममुल्लाह ने लौटकर अपने स्वामी को सूरजमल का यह संदेश सुनाया, "नवाब से कहना कि सुबह वह मैदान में पहुँचकर एक बार मुझसे संघर्ष करें। मैंने इतनी दूर से आने का कष्ट उठाया है, किन्तु वह पाँच कोस आने का भी कष्ट नहीं उठा रहा है। यदि सुबह नवाब नहीं आते हैं तो मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा और सूर्यास्त की प्रार्थना तक लड़ूँगा। उसके बाद भाग्य में क्या घटित होता है, वह तुम देखोगे।" इस पर नजीब ने अपने सभी पुत्रों अफ़ज़ल ख़ान, सुल्तान ख़ान, जावेता ख़ान तथा सभी सेनापतियों सादत ख़ान, सिद्दीक ख़ान मुहम्मद ख़ान बंगश आदि को तुरन्त बुलाकर "कहा, मैंने अभी-अभी सूरजमल का जवाब सुना और उसके शब्दों से मुझे यह स्पष्ट हो गया कि सूरजमल के पास इस समय कोई अच्छा सलाहकार नहीं है और वह निकृष्ट साथी की तरह बहुत बातें करता है। अब यह व्यक्ति स्वभाव से इतना विचारहीन और धैर्यहीन हो गया है, जिससे पता चलता है कि या तो उसका अथवा मेरा समय आ चुका है। अतः अब युद्ध के अलावा कोई उपाय नहीं है।" सभी सरदारों ने उसकी सलाह से सहमति व्यक्त की।[२]

२५ दिसम्बर को सूर्योदय के तीन घंटे पूर्व नजीब की सेना ने जमुना पार

---

१. नूरुद्दीन, पृ० ६६अ-६७अ
२. नूरुद्दीन, पृ० ६७ सियार में नजीब द्वारा अपने सरदारों को युद्ध की तैयारी के आदेश का मात्र संक्षिप्त वर्णन है, जि० IV, पृ० ३१

की ओर दिल्ली से १० मील दूर हिन्डीन नदी के पश्चिमी तट पर अपने डेरे जमाए और मोर्चे कायम किए।[1] सूरजमल भी अपने पुत्र नाहरसिंह, माचेडी (अलवर) के राव प्रतापसिंह[2] व अनेक प्रमुख सरदारों तथा भारी तोपखाने एवं सारी सेना के साथ सामने आकर डट गया। दोनों पक्षों के बीच शीघ्र युद्ध आरम्भ हो गया जो दिन के तीसरे पहर तक चलता रहा।

युद्ध की भीषणता के बीच सूरजमल ने अपनी मुख्य सेना को रुहेलों के विरुद्ध लड़ते हुए छोड़कर, स्वयं ५००० चुने हुए सैनिकों के साथ नदी के ऊपरी बहाव की ओर चार मील की दूरी पर हिन्डीन को पार करके, नजीब की सेना के पृष्ठभाग में घुसने का प्रयास किया। नजीब की ओर से मुग़लिया दल, सैय्यद मुहम्मद ख़ान बलूच, जेता गूजर का पुत्र, गुलाबसिंह गूजर, अफ़ज़ल ख़ान और उस्मान ख़ान ने भीषण युद्ध किया, जिसमें दोनों पक्षों के लगभग एक हज़ार व्यक्ति मारे गए। उस्मान ख़ान मारा गया, किन्तु सूरजमल का सैन्यदल इस मुठभेड़ के बाद नए आक्रमण के लिए पीछे लौट गया। सूरजमल अपने सैनिकों में साहस दिलाने के उद्देश्य से छलांगें लगाता हुआ युद्ध के मैदान में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच रहा था और जब वह इस तरह युद्ध के मैदान की जाँच करने और आक्रमण के लिए अपनी पसन्द का स्थान निश्चित करने हेतु एक ऊँचे स्थान पर थोड़े से सैनिकों के साथ खड़ा था, तभी उसके एक सेनापति मन्साराम जाट द्वारा खदेड़ा गया अफ़ज़ल ख़ान अपने सैन्य दल के साथ उसके निकट से गुज़रा। इस समय जाट राजा के साथियों ने शत्रु के इतना निकट रहने के औचित्य पर बात की और अपने स्वामी को लौटने की सलाह दी। परन्तु केवल शत्रु की गति देखने के विचार से सूरजमल वहीं खड़ा रहा। तभी सैय्यद मुहम्मद ख़ान बलूच के नेतृत्व में एक सैनिक टुकड़ी उधर से गुज़री। उनमें से एक ने सूरजमल की आकृति को पहचान लिया और सैद्दू (सैय्यद मुहम्मद ख़ान) के पास जाकर चिल्लाया, "मैंने थोड़े से व्यक्तियों के साथ जिस व्यक्ति को देखा वह और कोई नहीं सूरजमल है। मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ, क्या हम ऐसा अवसर खो देंगे।"[4] यह सुनते ही सैद्दू ने वापस मुड़कर अप्रत्याशित रूप से सूरजमल पर हमला बोल दिया। उसके अनुयायियों ने जाट राजा को पृथक करके घायल कर डाला और एक व्यक्ति ने उसकी भुजा काट डाली। अपंग हो जाने पर सूरजमल कठिनाई में पड़ गया और बलूच सिपाहियों ने, जो जाटों द्वारा बहुत प्रताड़ित एवं अपमानित थे, बदले की प्यास बुझाने के लिए, मृत्यु के बाद भी जाट राजा पर निरन्तर वार किए। स्वयं सैद्दू ने घोड़े से उतरकर

---

१. नुरुद्दीन, पृ० ६७ ब-६८ अ; युद्ध क्षेत्र की स्थिति के लिए देखें, सरकार, पतन, II, पृ० २८० पा० टि०
२. जाचीक जीवण कृत प्रताप रासो, पृ० १४-१५
३. नूरुद्दीन, पृ० ६८
४. सियार, VI, पृ० ३१-३२

दो तीन वार सूरजमल के पेट में छुरा घुसेड़ा और कहा कि उसका सिर काट दो। पांच-छः लोगों ने अपनी तलवार से निरन्तर उसके सिर पर वार किए और उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए जिसके फलस्वरूप एक तलवार भी टूट गई।[1] जाट राजा के साथी भी काट डाले गए थे और कुछ वचकर झाड़ियों में छिपते हुए भाग खडे हुए। जाट सेना अपने स्वामी की इस दशा से वेखवर वहुत समय तक प्रचण्ड युद्ध करती रही।

सूरजमल की मृत्यु का सियार से थोड़ा सा भिन्न विवरण देते हुए नूरुद्दीन लिखता है कि निरन्तर घाव के कारण सूरजमल अपने घोड़े पर से गिर पड़ा था और उधर से भागते हुए सैद्दू व उसके अनुयायियों ने उसे देखा तो वे तुरन्त उस पर टूट पड़े और उसका काम तमाम कर डाला।[2]

सैद्दू और उसका एक सिपाही, जो सूरजमल के काटे गए हाथ को भाले की नोंक पर उठाए हुए था, नजीव के पास पहुँचे और जव उन्होंने यह कहा कि उन्होंने सूरजमल को मार डाला है तो किसी ने विश्वास नहीं किया। नजीव ने भी अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार से व्यक्त की, "सूरजमल का कत्ल ऐसी बात नहीं है जो इतनी सरलता से किया जा सके। किन्तु जिस सेना ने मेरे पृष्ठभाग पर हमला किया था उसे पराजित किया जा चुका है और उसका नेता संभवतः मारा गया है। यदि वास्तव में सूरजमल मारा गया है तो यह कैसे संभव है कि हमारे सामने खड़ी यह

---

१. नूरुद्दीन, पृ० ६६ सियार, IV, पृ० ३२, दिल्ली क्रानिकल्स, पृ० १२६

२. नूरुद्दीन, पृ० ६६अ, गुलाम हुसैन मृत्यु की घटना को सर्वथा अप्रत्याशित वतलाते हुए लिखता है कि हमेशा यह देखा गया कि सूरजमल युद्धों में कभी भी अपने को व्यक्तिगत ख़तरे में नहीं डालता था वल्कि प्रमुख स्थान पर अपने को सुरक्षित रखकर आदेश जारी करता था और यह शेखी बघारता था कि युद्ध स्पष्ट एवं साहस की अपेक्षा कला एवं व्यवहार से अधिक जीते जाते हैं। किन्तु इस वार संभवतः दुर्भाग्य के कारण वह ऐसी सर्तकता नहीं वरत सका और आशातीत विजय नजीव के चरणों में आ गिरी, सियार, IV, पृ० ३२-३३; घटना के ५ वर्ष वाद वैण्डल लिखता है, "एक दिन सूरजमल को खवर मिली कि शत्रु की एक विशाल सेना ने नाहरसिंह (उसका पुत्र) जो इस अभियान में शामिल था, पर आक्रमण कर दिया है। वह कुछ हज़ार सवारों के साथ उसे वचाने के लिए शीघ्रता में चल पड़ा। दुर्भाग्य से एक नाले, जो हिन्डौन नदी से कटकर वन गया था, को पार करते समय वह एकाएक दोनों तरफ़ से घात लगाकर वैठी हुई रुहेला सेना से घिर गया। उनकी प्रचण्ड गोलावारी से जाट अव्यवस्थित हो गए, तव उन्होंने सूरजमल को उसके सभी साथियों के साथ जमीन पर मार गिरा दिया।" देखें, कानूनगो, जाट, पृ० १५४ परिशिष्ट

२०,००० सेना जिसमें नेता की सवारी का सामान दिखाई दे रहा है, अभी भी लड़ रही है और दृढ़ता के साथ अपनी स्थिति को बनाए रखी हुई है।"[१]

परन्तु जाट सेना में संदेह समाप्त हो चुका था और रात्रि के एक पहर बाद उन्होंने पीछे हटना शुरू कर दिया था। अगले दिन प्रातः काल गुप्तचर यह समाचार लाए कि ३० मील तक जाट सेना का कोई चिन्ह नहीं है। नजीब ने सूरजमल की कटी हुई भुजा पर विश्वास न करते हुए सागरमल खत्री और करीमुल्लाह को बुलाया जो एक दिन पूर्व ही सूरजमल से मिले थे। उन्होंने भुजा पर चढ़ी हुई पीले रंग की मुल्तानी छींट की आस्तीन के आधार पर उसकी पहचान निश्चित कर दी। इस आधार पर यह पूरी तरह से निश्चित हो गया कि सूरजमल मारा जा चुका है।[२]

इस प्रकार ५६ वर्ष की आयु में २५ दिसम्बर १७६३ ई० को सूरजमल का, जब वह गौरव के सर्वोच्च शिखर पर था, आकस्मिक अन्त हुआ। वह अपने पीछे पांच पत्नियां और पांच पुत्र छोड़ गया। होडल[३] निवासी चौधरी काशीराम की पुत्री किशोरी उर्फ हंसिया[४] उसकी पटरानी थी, जो अपनी कुशाग्र राजनीतिक बुद्धि

---

१. नूरुद्दीन, पृ० ६९ ब—७०अ

२. नूरुद्दीन, पृ० ७०; सियार, IV, पृ० ३२; सूरजमल की मृत्यु सम्बन्धी अन्य वृतान्त के लिए देखें, दिल्ली क्रानिकल्स (संक्षिप्त एवं तिथि), पृ० १२९; बयान ए वाकया, पृ० ३०३; वैण्डल, पृ० ८९–९०; कानूनगो, जाट, पृ० १४९-१५८; मुंशी विहारीलाल (विशेष उपयोगी नहीं), पृ० ८-९; सरकार, पतन, II, पृ० २८०-८१

३. आगरा—दिल्ली राजमार्ग पर मथुरा के ५३ मील उत्तर पश्चिम में।

४. अधिकांश इतिहासकारों ने दोनों को एक बतलाते हुए हंसिया (हंसमुख स्वभाव के कारण) उसका उपनाम बताया है,। मराठी पत्रों में हंसिया नामका ही उल्लेख हुआ है और सर्वप्रथम कुम्हेर के घेरे (१७५४ ई०) के दौरान उसकी प्रतिभा को सार्वजनिक ख्याति मिली (भाऊ बखर, पृ० ५)। एकमात्र फ्रैंज गोटलियब ऐसा लेखक है (जो वैण्डल के बाद का है) जो हंसिया का किशोरी से भिन्न रानी के रूप में उल्लेख करते हुए उसे सलीमपुर गांव के रतीराम चौधरी की पुत्री बतलाता है, पर्शियन हिस्ट्री ऑफ जाट्स, पृ० २२ब)। किन्तु वैण्डल जो अधिक विश्वसनीय है इस भिन्नता का उल्लेख नहीं करता है (कानूनगो, जाट, पृ० १५९-१६०)। भरतपुर दुर्ग के भीतर बना प्रसिद्ध किशोरी महल इसी के नाम पर है और मथुरा में जमुना तट के सामने क्रमशः हंसिया घाट, हंसगंज और हंसिया रानी का बाग उसी के नाम से प्रसिद्ध है (फ्रैंज गोटलियब, पृ० २२ब, ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ५१९)। तारीखे अतरौली (पृ० १६) के आधार पर सिद्दीकी लिखते हैं कि अलीगढ़ के क़िलेदार दुर्जनसिंह की पुत्री हंसकौर का विवाह सूरजमल के साथ हुआ था, देखें, अलीगढ़ डिस्ट्रिक्ट ए हिस्टारिकल सर्वे, पृ ११२

के कारण भरतपुर घराने के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उसने न केवल अपने पति के शासन काल में अपितु बाद के वर्षों में भी जाट राज्य पर आए विभिन्न संकटों के समय अपनी प्रतिभा एवं सक्रिय भूमिका से उसकी रक्षा की। परन्तु वह निस्संतान ही रही और उसने बाद में जवाहरसिंह को गोद ले लिया था। दूसरी पत्नी भरतपुर के गाँव बिचवण्डी की गंगा रानी थी,[1] जो रणजीतसिंह की माता थी। तीसरी झांसी गाँव की कल्याणी रानी, जो नाहरसिंह की माता थी। चौथी राजपूत वंश में उत्पन्न अमाह की गौरी थी, जो जवाहरसिंह व रतनसिंह की माता थी। पांचवीं नवलसिंह की माता जो साधारण घराने से सम्बन्धित थीं।[2] जवाहरसिंह ने गोवर्धन में कुसुम सरोवर के निकट सूरजमल का स्मारक बनवाया, जो उसका प्रिय स्थान रहा था।

सूरजमल की मृत्यु के समय जाट राज्य का विस्तार

सूरजमल अपने पीछे एक विस्तृत राज्य, शक्तिशाली सेना और विशाल कोष छोड़ गया था। सूरजमल की मृत्यु के समय भरतपुर के जाट राज्य के विस्तार की सीमाएँ क्या थी इस विषय में हमें वैण्डल और रेने मैडक से मूल्यवान् जानकारी मिलती हैं। वैण्डल लिखता है कि सूरजमल के राज्य की सीमाएँ पूर्व की ओर रुहेले क्षेत्र को छूती हुई कोईल, जलेसर व एटा जिले को उसके राज्य का अंग बनाए हुए थी। यमुना की ओर दिल्ली के प्रवेश द्वार से लेकर चम्बल तक उसकी सरकार थी और गंगा की ओर भी लगभग यही स्थिति थी। आगरा क़िले पर अधिकार के बाद दक्षिण में अपनी सीमा विस्तार के लिए सूरजमल को और कुछ नहीं करना था। तब उसने दिल्ली के पश्चिम की ओर मुड़ने का निश्चय किया। उसने उस प्रदेश (वर्तमान हरियाणा) को जवाहरसिंह के राज्य में परिवर्तित करने का निश्चय किया था।[3]

रेने मैडक के अनुसार गंगा का दाहिना तट जाट राज्य की पूर्वी सीमा बनाता था और दक्षिण में चम्बल। इसके पश्चिम में आगरा का सूबा जिसमें जयपुर का कुछ प्रदेश भी शामिल था तथा उत्तर में दिल्ली का सूबा थे। पूर्व से पश्चिम तक जाट राज्य २०० मील लम्बा और उत्तर से दक्षिण में १४० मील तक फैला

---

१. भरतपुर का प्रसिद्ध गंगा मन्दिर इसके नाम पर बना हुआ है।

२. वैण्डल भूल से रणजीतसिंह का उल्लेख न करके केवल चार पुत्रों का ही उल्लेख करता है। टॉड जवाहरसिंह एवं रतनसिंह की माता को कूर्मी वंश की बतलाता है (एन्टिक्विटीज, III पृ० १३५६) जबकि वैण्डल तथा फ्रैंज गोटलियब उसे गरुआ राजपूत बतलाते हैं, जो मथुरा ज़िले में काफ़ी संख्या में रहते हैं। इमाद भी उसे राजपूतनी बतलाता है (पृ० ५६); रेने मैडक के विवरण से पता चलता है कि नवलसिंह की माता रणजीतसिंह की माता के मुक़ाबले में कम प्रसिद्ध एवं साधारण घराने की थी, बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजेण्ट, जि० ५३, पृ० ७४

३. कानूनगो, पृ० १४६ पा० टि०

हुआ था।[1] नूरुद्दीन के अनुसार सम्पूर्ण मेवात पर सूरजमल का अधिकार था और अलवर एवं किशनगढ़ के सुदृढ़ दुर्ग उसके क़ब्जे में थे। उसने रेवाडी पर अधिकार करते हुए दिल्ली से २० मील की दूरी पर सराय बसन्त पर अपनी चौकी स्थापित कर ली थी।[2] इस प्रकार सूरजमल की मृत्यु के समय भरतपुर के मूल जाट राज्य के अलावा उसका विस्तार आगरा व मथुरा जिला, एटा, मैनपुरी, मेरठ, अलीगढ़, सम्पूर्ण मेवात (वर्तमान अलवर), रेवाडी, गुडगांव, रोहतक, झज्झर, बहादुरगढ़, फ़र्रुखनगर, वल्लभगढ़ (वर्तमान हरियाणा का अधिकांश प्रदेश), हाथरस, मुडसान, जलेसर और दिल्ली के निकटवर्ती इलाक़े तक हो चुका था।

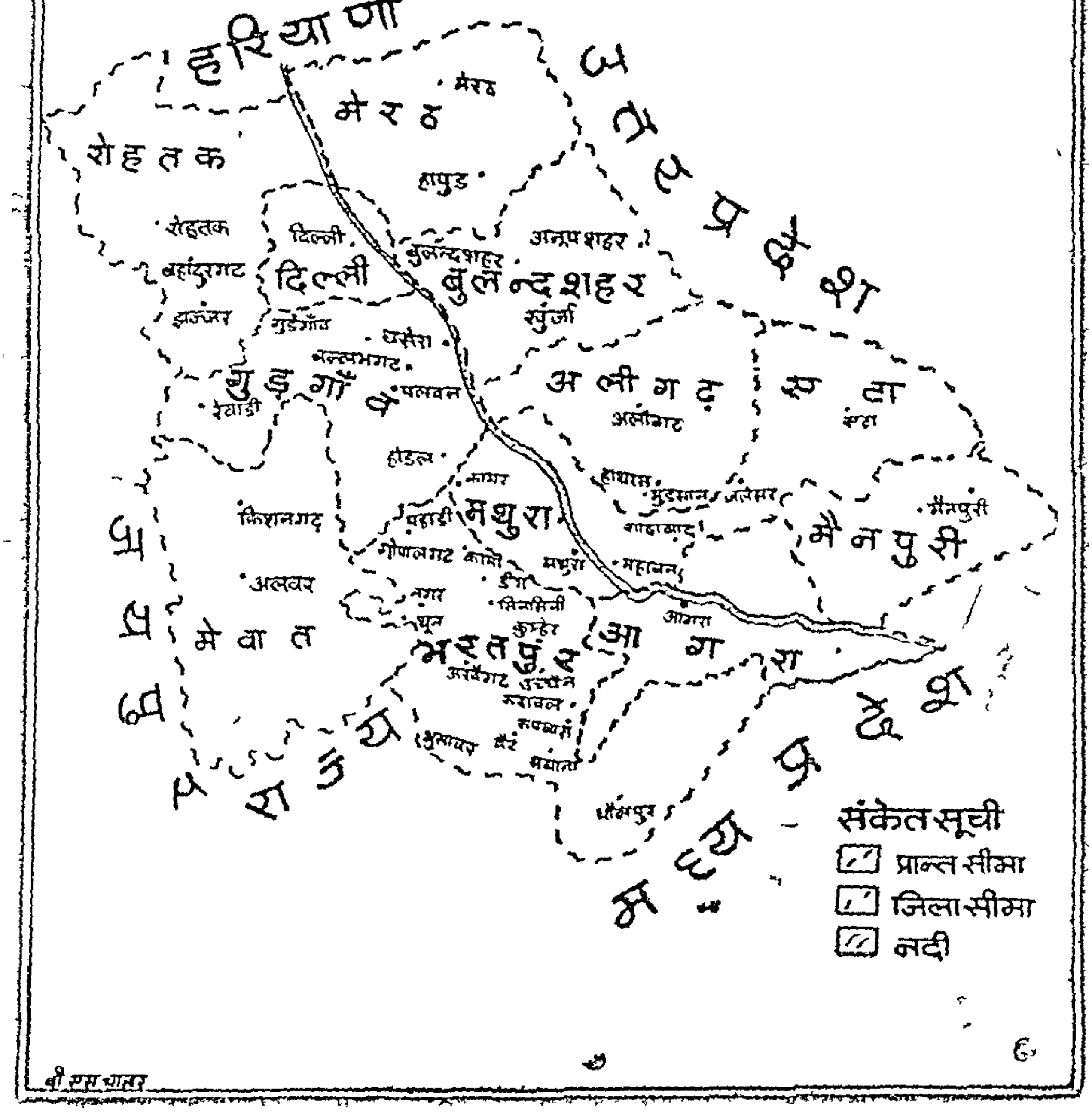
निष्कर्ष

अपनी मृत्यु के समय सूरजमल दिल्ली पर जाट अधिकार की उच्च महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर एवं सैनिक शक्ति के गर्व में बहुत शीघ्रता से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेना चाहता था। नजीब की विनम्र एवं निरन्तर प्रार्थनाओं को ठुकराए जाने से स्पष्ट है कि जाट राजा इस समय अपने उद्देश्य की प्राप्ति में अधीर हो रहा था। कारण स्पष्ट है कि पानीपत के युद्ध के बाद ही जब वह अपने देशी शत्रु मराठे एवं विदेशी शत्रु अब्दाली के ख़तरे से मुक्त हो चुका था, तभी उसने अपने उपर्युक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए क़दम उठा लिए थे, परन्तु एक बार फिर अब्दाली के भय से १७६२ ई० के पूरे वर्ष उसे अपनी इस महत्वाकांक्षा पर पर्दा डाल कर चुप बैठना पड़ा। नजीब की तुलना में उसे अपनी सैनिक श्रेष्ठता पर पूर्ण भरोसा था, इसलिए जब उसने दिल्ली में उसे घेर लिया तो वह उसे शान्ति याचना के बहाने बाद में अपना राजनैतिक समर्थन जुटाकर अपने विरुद्ध प्रतिशोध लिए जाने का कोई मौक़ा नहीं देना चाहता था, जैसा कि पूर्व में मराठों के विरुद्ध नजीब अब्दाली को आमन्त्रित करके करता रहा था। किन्तु भाग्य ने सूरजमल का साथ नहीं दिया। सियार का लेखक लिखता है, "भारत में कोई राजकुमार या सेनापति ऐसा नहीं था, जो उसके (सूरजमल) विरुद्ध युद्ध का ख़तरा उठाना पसन्द करता। यह तथ्य निस्संदेह तब प्रमाणित हो गया था जब मुहम्मद ख़ान बंगश तथा अफ़गानों के विरुद्ध युद्धों में उसने अब्दुल मंसूर ख़ान (सफ़दरजंग) को फलदायक सहायता प्रदान की थी और बाद में जिस श्रेष्ठता के साथ वह हमेशा मराठों से लड़ा। उसने अपने आपको सारे समय में सम्मानजनक बना दिया, न केवल वजीर इमाद उल मुल्क एवं जुल्फ़ीकारजंग के प्रति बल्कि स्वयं अब्दाली के प्रति भी। यह बहुत हद तक सही है कि अफ़गानों के विरुद्ध अब्दुल मंसूर ख़ान की सफलताएँ जाट राजा की सहायता का ही बहुत बड़ा परिणाम थी। किन्तु जब उसका अन्तिम क्षण आया तब उसके सभी दुर्ग, श्रेष्ठ सेना और उसका यह अजेय चरित्र कुछ भी प्राप्त नहीं कर सके और वह एक अप्रत्याशित झड़प में मारा गया।"[3] ●

---

१. वही, पृ० १६७
२. नूरुद्दीन, पृ० ६०ब—६१अ
३. सियार, IV, पृ० २८-२९

महाराजा सूरजमल के भरतपुर राज्य का विस्तार



अध्याय–६

शासन व्यवस्था, कला एवं साहित्य

शासन व्यवस्था, कला एवं साहित्य

भरतपुर राज्य की स्थापना का श्री गणेश १७२२ ई० में डीग में हुआ, जब आगरा के शाही सूबेदार सवाई राजा जयसिंह ने भरतपुर के शासकीय परिवार के संस्थापक बदनसिंह को सिनसिनी, थून और डीग के चारों ओर के प्रदेश की जमींदारी प्रदान कर उसे वहाँ पर जाट राजा के रूप में स्थापित किया। जाट राज्य का प्रारम्भ मुग़ल सम्राट के अधीनस्थ जागीर के रूप में नाम मात्र को ही हुआ था, वस्तुत इसका उदय विद्रोही जागीर के रूप में हुआ था। बदनसिंह ने न केवल मुग़ल सम्राट की सम्प्रभुता स्वीकार की, बल्कि सूवा आगरा में प्राप्त ५० लाख रुपये की जागीर के एवज में शाही सूबेदार जयसिंह को प्रतिवर्ष ८३,००० रुपया वार्षिक पेशकश देना स्वीकार किया। जयसिंह ने बदनसिंह को राजा की उपाधि के साथ राज्य के सभी निशान एवं पंचरंगी झण्डे के प्रयोग की अनुमति प्रदान की।[1] बदनसिंह अपने को जयपुर राज्य के निष्ठावान सामन्त की तरह ठाकुर ही कहता रहा और जयपुर शासक भी उसे अपने अधीनस्थ की दृष्टि से देखते थे।

राजा की स्थिति

सूरजमल के सत्ता ग्रहण करने पर जाटों का दुहरा स्वामीत्व समाप्त हो गया और उसने सीधे मुग़ल सम्राट से अपने सम्बन्ध स्थापित कर लिए। अब जयपुर के शासक क्रमशः शक्तिशाली जाटों के राजनैतिक समर्थन एवं मित्रता के आकांक्षी बन गए। शाही सेवा के बदले २० अक्तूबर १७५२ ई० को सूरजमल ने मुग़ल सम्राट से मथुरा की फ़ौजदारी और जाट राज्य के प्रधान के लिए विधिवत् राजा की उपाधि प्राप्त की।[2] यह प्रथम अवसर था जब जाट राजा ने मुग़ल दरबार में सामन्त का दर्जा प्राप्त किया। सेना एवं प्रशासन की सारी शक्तियाँ राजा में निहित थी। परन्तु प्रधानतया सैनिक राज्य होने के कारण प्रशासनिक ढांचे

१. कपटद्वारा दस्तावेज़, संख्या १४०६; दस्तूर, कौमवार, VII, पृ० ४३६; फ़ॅज गोटलियच, पृ० १८ ब

२. तारीख़े अहमदशाही, पृ० ४३ ब, ४५ अ

को व्यवस्थित करने की दिशा में विशेष प्रयास नहीं किया गया। सूरजमल के शासन की चिन्ता का प्रमुख विषय युद्ध एवं राजनीति ही था, इस कारण हमें उसके प्रशासनिक कार्यों की बहुत कम जानकारी मिलती है।

केन्द्रीय सरकार

प्रशासन के शिखर पर राजा होता था जो परम्परागत नियम के अनुसार पिता का ज्येष्ठ पुत्र होता था। जाट राज्य का प्रथम राज्याभिषेक समारोह २३ नवम्बर १७२२ ई० सम्भवतः डीग में हुआ था, जब सवाई जयसिंह ने स्वयं अपने हाथों से बदनसिंह का टीका किया था।[1] ऐसे ही एक अन्य समारोह में ७ जून १७५६ ई० को डीग में बदनसिंह की मृत्यु पर सूरजमल विधिवत् जाट राजा घोषित हुआ था। इस समय से जाट राज्य की राजधानी डीग से हटकर भरतपुर बन गई। सामान्यतया मृत्यु के तुरन्त बाद ही नए राजा का राज्याभिषेक हो जाता था।[2] परन्तु सूरजमल की मृत्यु के समय जवाहरसिंह के फ़र्रुखाबाद में होने तथा नाहरसिंह सहित जाट सेना के दिल्ली के निकट होने से ऐसा तत्काल सम्भव नहीं हो पाया था।

प्रशासन का सारा कार्य राजा के नाम से सम्पन्न होता था जो राज्य व सरकार दोनों का प्रधान होता था। इस दृष्टि से शासकों को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे।[3] मुग़ल सम्राट का नाममात्र का सामन्त होने के कारण सूरजमल सच्चे अर्थों में जाट राज्य का सम्प्रभु था। राज्य के आन्तरिक एवं बाह्य मामलों में सूरजमल की सत्ता ही सर्वोपरि थी। राज्य की विधायी, कार्यकारी, सैनिक, वित्तीय एवं न्यायिक शक्तियाँ राजा में ही निहित थीं। राज्य के अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति व बर्ख़ास्तगी वह स्वयं ही करता था। राजा के नीचे प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी दीवान होता था। सूरजमल के समय कोई नियमित मन्त्री परिषद् नहीं थी और दीवान के द्वारा ही सारे प्रमुख कार्य सम्पन्न होते थे। पहले किरपाराम गूजर और बाद में जीवाराम सूरजमल के दीवान रहे। बरसाना निवासी ब्राह्मण रूपराम कटारी सूरजमल का प्रमुख राजनैतिक सलाहकार था। गम्भीर संकट के समय वह अपने स्वामी का विश्वसनीय साथी था और जाट राज्य की विदेश नीति का निर्माता था। मुग़ल, मराठा, जयपुर एवं अन्य शासकों के साथ जाटों के राजनैतिक व्यवहार, वार्तालाप एवं सन्धियों के सम्पादन में उसकी भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण थी। उसका पूरा परिवार जाट राज्य की सेवा में था। उसके पुत्र मन्शाराम व सूरतिराम, भाई हेमराज और उसका पुत्र हरसुख भी राजनीतिक दूत के अलावा

---

१. दस्तूर कौमवार, VII, पृ० ४३६

२. बंगाल पास्ट एण्ड प्रेज़ेण्ट, १९५६ ई०, जि० ७५, पृ० ७३

३. के० बी० एल० गुप्ता, दि इवोल्यूशन ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि फ़ॉर्मर भरतपुर स्टेट, पृ० ३७

युद्ध कार्य में भी भाग लेते थे।[1] जयपुर दरबार से राजनैतिक सम्पर्क के अधिकतर कार्य उसके अन्य वकील बहादुरसिंह एवं सीहमल के द्वारा किए जाते थे।[2]

दीवान राजा एवं राज्य के अन्य कर्मचारियों के बीच मध्यस्थ होता था और राजा के नाम से सारे राजकीय आदेश जारी करता था। राजस्व के मामले भी मुख्यतया उसके नियंत्रण में ही रखते थे। सूरजमल द्वारा नव विजित क्षेत्रों के एकीकरण तथा उनके प्रशासन का कार्य भी पूर्णतया दीवान पर निर्भर था।[3] इस समय दीवन स्वयं सैनिक गुणों से सम्पन्न व्यक्ति होता था। सूरजमल ने अपने दीवान जीवाराम को उसकी सैनिक सेवाओं के बदले जागीर प्रदान की थी।[4] राजकीय कार्यों को निपटाने के लिए दीवान का अपना पृथक कार्यालय होता था। सूरजमल के समय दीवान एक सर्वोच्च महत्वपूर्ण व्यक्ति अवश्य था, किन्तु वह अत्यधिक शक्ति सम्पन्न नहीं था, क्योंकि डीग व भरतपुर के दुर्गों के पृथक दीवान थे, जिन पर सम्बन्धित दुर्ग की व्यवस्था का भार था और जो किलेदार के साथ मिलकर सुरक्षा एवं प्रशासन का समुचित प्रबन्ध करते थे।[5]

राजधानी के मामलों की देख-रेख के लिए एक पृथक मंत्री होता था। १७५४ ई० में गर्जसिह डीग के दरबार में इस कार्य के लिए नियुक्त था।[6] इसी प्रकार सूरजमल के शासन के अन्तिम वर्षों में भरतपुर दुर्ग का सर्वोच्च अधिकारी बलराम (सूरजमल का साला था) था, जो स्थानीय मामलों में बहुत शक्तिशाली था। वैर दुर्ग, जो बहादुर सिंह के अधिकार में था, का किलेदार चमूपाल था। यद्यपि सूरजमल के शासन काल में मंत्री परिषद् का कोई प्रमाणिक उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु उसकी सलाहकार परिषद् में दीवान जीवाराम, राजपुरोहित रूपराम कटारी, बख्शी द्विज मोहनराम और बलराम जाट (भरतपुर दुर्ग का अधिकारी) समान रूप से प्रभावशाली व्यक्ति थे। अनौपचारिक रूप से जाटों की चारों डूंगों के प्रमुख व्यक्तियों का भी दरबार में तथा राजनैतिक मंत्रणा में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था जैसा कि १७५४ ई० में डीग की सभा में उन्हें आमन्त्रित[7] किए जाने से स्पष्ट है।

सेना

सूरजमल के समय जाट सेना संख्या की दृष्टि से बहुत बड़ी नहीं थी, परन्तु

---

१. दस्तूर कौमवार, VII, पृ० ३६४, ४६० व ५६८; इतिहास संग्रह, II, पृ० २
२. दस्तूर कौमवार, VII, पृ० ३४८ व ५६८
३. गुप्ता, पृ० ४२
४. फ़ॉरिन पोलिटिकल प्रोसीडिंग्स, २५ अक्तूबर, १८११ ई०
५. सुजान चरित्र, पृ० २४२ व २४६
६. वही, पृ० २४१-४२
७. वही, पृ० २३६

अपने युद्ध कौशल, क्षमता एवं संगठन के कारण वह हिन्दुस्तान की एक श्रेष्ठ सेना बन गई थी। अपने गुणात्मक बल के आधार पर ही जाट सेना ने अपने समकालीन लगभग सभी हिन्दुस्तानी शासकों की सेनाओं पर अपनी श्रेष्ठता की छाप छोड़ी थी। यहाँ तक कि दुर्जेय अब्दाली ने भी जाट शक्ति का लोहा माना था।[1] सूरजमल की सैनिक शक्ति के बारे में वैण्डल, जो कि उसके पुत्र जवाहरसिंह की सेवा में था, का कथन सर्वाधिक प्रामाणिक है, जो लिखता है, "सूरजमल अपने उत्तराधिकारी के लिए दुर्ग सेना के अतिरिक्त १५००० सवार, २५००० पैदल, ५००० घोड़े, ६० हाथी, ३०० तोपें तथा उसी अनुपात में युद्ध सामग्री छोड़ गया था।"[2] उसकी सैन्य कुशलता के बारे में गुलाम हुसैन लिखता है, "सूरजमल के अस्तबल में १२००० घोड़े रहते थे, जिन पर चुने हुए एवं विशेष रूप से प्रशिक्षित सैनिक सवारी करते थे। इनको घोड़े पर पीछे से निशान पर गोली चलाने तथा घूमकर पुनः सुरक्षित ढंग से कारतूस भरने का अभ्यास कराया गया था। नियमित अभ्यास से ये ख़तरनाक निशानेबाज़ एवं अपनी गति में इतने दक्ष हो गए थे कि भारत में ऐसा कोई सैन्य दल नहीं था, जो मैदान में उनका सामना कर सकें।"[3] सूरजमल की सैनिक प्रतिष्ठा मुख्यतया इसी घुड़सवार सेना पर निर्भर थी।

सूरजमल की सैन्य शक्ति के अलावा उसके सुदृढ़ दुर्गों की भी समकालीन लेखकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। डीग, भरतपुर, कुम्हेर और वैर के प्रसिद्ध एवं सुदृढ़ दुर्गों (जो मूलतः जाट क्षेत्र में स्थित हैं) के अलावा अलीगढ़ बल्लभगढ़, सिकन्दराबाद, अलवर एवं किशनगढ़ सहित अनेक छोटे-छोटे दुर्गों को सूरजमल ने जाट सीमाओं की रक्षार्थ आत्म निर्भर एवं रक्षात्मक दृष्टि से मज़बूत बनाया था।[4] १७६१ ई० में शाही दुर्ग आगरा पर अधिकार के बाद उसे भी इसी तरह सुदृढ़ किया था।[5] प्रत्येक दुर्ग में दुर्ग रक्षक सेनायें होती थीं, जो किलेदार के नियंत्रण में रहती थीं। मैदानी युद्धों की दृष्टि से सूरजमल का तोपखाना विशेष प्रभावशाली नहीं था और उसका महत्व दुर्गों की रक्षा में उपयोग तक ही सीमित था। प्रथम चार दुर्गों की भण्डार क्षमता के बारे में विभिन्न विवरण मिलते हैं। १७५४ ई० में मराठा आक्रमण के समय इनमें दो वर्ष के लिए युद्ध सामग्री और खाद्यान्न इकट्ठा किया गया था।[6]

---

१. तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० ११४ ब

२. सरकार, पतन, II, पृ० २८३, जाटों की बढ़ी-चढ़ी सैनिक शक्ति के बारे में अफवाहें बहुत फैली हुई थीं। इसी आधार पर हरसुखराय ने लिखा है कि सूरजमल की सेना में एक लाख सवार व पैदल हो गये थे, मजमाउल अख़बार, इलियट, VIII, पृ० २७२

३. सियार, IV, पृ० २८

४. फ्रैंज गोटलियब, पृ० २१ ब, नूरुद्दीन, पृ० ६६ब-६७अ

५. रेने मैडक, बंगाल पास्ट एण्ड प्रेज़ेण्ट, जि० ५३, पृ० ६९

६. सुजान चरित्र, पृ० २४१-४२

तरीखे आलमगीर सानी और सियार का लेखक लिखता है कि सूरजमल ने इन चार क़िलों का निर्माण इस तरीक़े से किया कि कोई भी शक्ति उन्हें घेरा डालकर छीन नही सकती थी। उसने इनको इतनी भारी मात्रा में खाद्यान्न एवं युद्ध सामग्री से संग्रहित किया था कि दुर्भाग्य से अगर कोई इनका घेरा डालने का विचार कर भी ले, तो कई वर्ष घेरे में गुज़ारने के बाद भी उन्हें लेना आसान नहीं था।[1]

युद्धों मे जाट राजा सूरजमल स्वयं अपनी सेना का नेतृत्व करता था और सेना का एक भाग स्थाई रूप से अपने साहसी पुत्र जवाहरसिंह को स्वतन्त्र आक्रमण के लिए सौंप रखा था। मोहनराम जाट सेना का बख्शी था और बलराम तोपखाने का अधिकारी। सूरतिराम गौड़, भरथसिंह, दौलतराम और गूजरराज ये चार सेनापति जवाहरसिंह के साथ रहते थे। और शेष सेना में सूरजमल के साथ रहने वाले सेनापतियों में गोकुलराम गौड़, हरिनागर विप्र, रामचन्द्र तोमर, मीर मुहम्मद पनाह, शिवसिंह, सुखराम (सूरजमल का मामा) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। सूरजमल के विभिन्न भाइयों की भी सेना में महत्वपूर्ण स्थिति थी। बल्लभगढ़ के स्वामी बालू जाट को उसकी सेना में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था और वह जाट राजा का दाहिना हाथ माना जाता था।[2] अन्तिम वर्षों में माचेडी का राव प्रतापसिह सैनिक युद्धो में सूरजमल का महत्वपूर्ण सहयोगी था।[3]

सूरजमल की सेना में जाट, राजपूत, गोसाई, ब्राह्मण, गूजर, अहीर, मेव (मुसलमान), मीना, चमार, महाजन सभी जातियों के लोग थे, यद्यपि जाटों का अनुपात सर्वाधिक था। राज्य के प्रमुख एवं प्रतिष्ठित सरदारों के नेतृत्व में पैदल सैनिकों के पृथक-पृथक डिवीजन बने हुए थे। इनमें दो तरह के सैनिक होते थे—नियमित एवं अनियमित। नियमित सैनिक वे होते थे, जिन्हें राज्य की ओर से मासिक वेतन, हथियार एवं वर्दी प्राप्त होती थी। अनियमित सैनिक सामान्यतया कृषक जाट होते थे जो संकटकाल में अपने नेता के बुलावे पर राज्य की सुरक्षा एवं जाट जाति की प्रतिष्ठता बनाए रखने हेतु सेना में सम्मलित हो जाते थे। इस प्रकार के सैनिक इनामी जागीर के जागीरदारों द्वारा भेजे जाते थे, जिन्हें राज्य द्वारा इस सेवा के एवज़ में भूमि प्राप्त होती थी। युद्ध के बाद ये सैनिक पुनः कृषि एवं पशु पालन के अपने व्यवसाय में लौट जाते थे।[4] घुड़सवार सेना के भी दो वर्ग थे :

---

१. तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० ११४ अ, सियार, IV, पृ० २७-२८; जीन ला के संस्मरणों से पता चलता है कि सूरजमल ने अपनी सेना को यूरोपीय ढंग से प्रशिक्षित करने का भी विचार किया था, देखें, कानूनगो, जाट, पृ० १६९-७०

२. सुजान चरित्र, पृ० ११२

३. प्रताप रासो, पृ० १५

४. गुप्ता, पृ० ७५

(१) वह सेना, जिसे घोड़े व अन्य सामान राज्य से मिलता था और जिनका वेतन कम होता था।

(२) वे घुड़सवार जो स्वयं के घोड़े लाते थे और जिनका वेतन अधिक होता था।

घुड़सवार सेना विभिन्न रिसालों में बंटी हुई थी।[1] सूरजमल के पास ६० हाथियों का फीलखाना भी था। शस्त्रों में तलवार, भाले व बन्दूक प्रमुख थीं। घुड़सवारों के लिए सुरक्षा कवच भी होते थे। सेना का सामान लादने के लिए कुली, ऊंट व बैल गाड़ियाँ होती थीं।

जागीर प्रथा

मूलतः भरतपुर एक जागीर राज्य था, जिसमें जाट जागीरदारों और इनामी जागीरदारों ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थीं। इनाम व चौथ जागीरों की उत्पत्ति के बारे में ओडायर लिखता है कि इनाम प्रारम्भिक सम्राटों द्वारा दिया गया भूमि का जागीर अनुदान था। ओडायर के अनुसार दिल्ली सम्राट द्वारा राजाराम को ५७५ गांवों सहित मथुरा का तथाकथित अनुदान सम्भवतया एक कल्पना है, जो पिछली सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप अथवा भावी सैनिक सेवाओं के लिए सुरक्षार्थ दिए गए उसके भाइयों के अनुदान को अधिक वैधता प्रदान करने हेतु गढ़ी गई थी। ये सैनिक सेवाएँ प्रत्येक मामले में बन्दूक व बन्दूकचियों की संख्या पर निश्चित की जाती थी और एक बन्दूक पर निर्धारित भूभाग २५ से लेकर १५० बीघा तक भिन्न-भिन्न प्रकार का था। राज्य विस्तार के साथ ही युद्ध के लिए अधिक व्यक्तियों की माँग के अनुसार ऐसे अनुदान किए गए। इस तथ्य के कारण कि जागीर के हिस्सों का मापदण्ड बन्दूकों की संख्या होती थी, जिसे इनाम या चौथ जागीर के अधिकर्ता को पूर्ति करनी होती थी, मूल जागीर प्राप्तकर्ता अपना समय आने पर अपने रिश्तेदारों में जागीर बाँट देता था।[2] आवश्यकता के समय सेवा से अनुपस्थित रहने पर उसे प्रति माह प्रति बन्दूक पाँच रुपये का जुर्माना देना होता था, जो उस समय एक सिपाही का सामान्य वेतन था, जिससे कि उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति को भरती किया जा सके।[3]

चौथ के गांव जो अब तक एक चौथाई लगान भुगतान करते थे, मूलतः इनामी या कर मुक्त थे। इनकी उत्पत्ति का इतिहास इस प्रकार है। १७७४ ई० में जब नजफ़ खान ने डीग व कुम्हेर पर अधिकार कर लिया तब उन इनामियों, जो मुग़लों की अपेक्षा भरतपुर महाराजा रणजीतसिंह के झण्डे के नीचे एकत्र हो गए थे, के ११ परगनों के साथ उनके प्राचीन विशेषाधिकारों की पुनर्स्थापना कर दी गई थीं।

---

१. वही, पृ० ७६

२. ओडायर, भरतपुर स्टेट असेसमेन्ट रिपोर्ट, I, पृ० २८

३. ओडायर, I, पृ० २६

दूसरी ओर मुग़ल सर्वोच्चता स्वीकार करने वाले इनामियों पर नजफ़ ख़ान ने उनकी जागीर इस शर्त पर बनाए रखी कि वे सैनिक सेवा के साथ-साथ एक चौथाई लगान देंगे। २६ चौथ के गांवों की मूल ज़िम्मेवारी ३३१ बन्दूकों की थीं, जिसमें से मृत्यु, अनुपस्थित या छोड़ देने के कारण ३७ ११/१६ पुनः प्रारम्भ कर दी गई और शेष २९३ ५/१६ अब भी बनी हुई हैं।[1] ओडायर के इस विवरण से ऐसा प्रतीत है कि चौथ व इनामी जागीरों की यह स्थिति सूरजमल के समय भी लगभग ऐसी ही रही होगी।

वित्त एवं राजस्व

सूरजमल के शासन काल में जाट राज्य की वित्तीय आय का प्रमुख स्रोत कृषि सम्बन्धी आय था। विजित प्रदेश से लूट की राशि एवं इनामी राशि आय का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत था। परन्तु तेज़ी से बढ़ते हुए जागीर क्षेत्र के अनुपात में भू-राजस्व तथा कृषि सम्बन्धी व्यवस्था एवं सुधारों की ओर ध्यान नहीं दिया गया। ग़ैर कृषि आय जैसे चुंगी, खनिज, उद्योग, व्यवसाय आदि के बारे में कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता है। राज्य के विस्तार के साथ-साथ राज्य की कृषि आय भी निरन्तर बढ़ती गई। सूरजमल के राजकीय कोष एव सम्पत्ति के बारे में वैण्डल लिखता है, 'मैंने उसके वार्षिक राजस्व एवं ख़र्च के बारे में पूछताछ उस व्यक्ति से की है, जो इसका प्रबन्ध करता था। उसके द्वारा मुझे जो कुछ मालूम पड़ा वह यह है कि अपने शासन के पिछले पाँच-छः वर्षों से सूरजमल की वार्षिक आमदनी १७५००००० रुपये और खर्च ६०-६५ लाख के बीच था। उसने अपने पूर्वजों के कोष में ५-६ करोड़ रुपये जोड़े और आज (जवाहरसिंह के राज्यारोहण के समय) जाट ख़ज़ाने में दस करोड़ रुपये हैं। इसके अलावा बहुत बड़ी सम्पत्ति ज़मीन के अन्दर छुपाई हुई है, जिसका पता नहीं है। सूरजमल ने ऐसे ही खज़ाने की प्राप्ति की आशा में डीग में (बदनसिंह के कोष) एक बड़े भूभाग में निरर्थक खुदाई करवाई थी)। जाटों के गुप्त कोष के बारे में अनेक मत प्रचलित हैं, लेकिन मेरा हमेशा यह विश्वास रहा है कि उनके पास अधिक धन नहीं है।"[2] जदुनाथ सरकार के अनुसार उस समय सारे आगरा सूबे की

---

१. ओडायर, I, पृ० २८

२. वैण्डल, पृ० ५०-५१; इमाद का लेखक गुलाम अली इस बारे में एक महत्वपूर्ण सूचना देता है (पृ० ७२)। सूरजमल का एक विश्वसनीय साथी राव राधा किशन (जिसने गुलाम अली को यह सूचना दी थी) कहता है कि सूरजमल ने उसे पानीपत के तीसरे युद्ध के बारे में भविष्यवाणी कर दी थी और वार्ता के दौरान कहा, "मैंने, जिसके पास डेढ़ करोड़ की जागीर है और कोष में ५-६ करोड़ रुपये है, व्यर्थ में ही भाऊ का साथ दिया।" देखें, कानूनगो, जाट, पृ ५५ पा० टि०। आने वाले वर्षों में यह लोक विश्वास अधिक बल पकड़ता गया कि जाटों द्वारा दिल्ली व आगरा से लूटी गई विशाल सम्पत्ति अभी भी गुप्त खज़ानों में बन्द है।

मालगुजारी दो करोड़ से कुछ कम थी और इस प्रदेश का तीन चौथाई भाग सूरजमल के अधिकार में था।[1] हरसुखराय लिखता है कि सूरजमल की वार्षिक आय दो करोड़ रुपया थी।[2]

सूरजमल ने अपने राज्य में दो टकसालें बनाई थीं, एक डीग में तथा दूसरी भरतपुर में। अन्य राज्यों की तरह भरतपुर राज्य की स्वयं अपनी कोई स्वतन्त्र मुद्रा नहीं थी। १७६३ ई० में सूरजमल ने शाह आलम के नाम से चांदी के सिक्कों को जारी किया। इस मुद्रा के एक ओर "सिक्क मुबारक बादशाह गाजी शाह आलम" तथा दूसरी ओर "जर्ब बुर्जी अनवरपुर सन् जुलूस" लिखा गया और फूल व कटार का चित्रण किया गया। इसका तोल १७१.८६ ग्रेन था। उसी वर्ष तांबे का सिक्का भी जारी किया गया, जिसका वजन २७५ से २८० ग्रेन के बीच था।[3]

राजस्व प्रशासन की दृष्टि से मुग़ल काल में गांव सबसे छोटी इकाई थी और परगने का मुख्य राजस्व अधिकारी आमिल था। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जागीरदारी प्रथा के संकट और जमा, हासिल एवं वास्तविक आय के बीच बढ़ते हुए अन्तर से नए जमींदारों तथा इजारेदारों का आगमन अधिक आसान हो गया। बहादुरशाह की मृत्यु के बाद इजारे की प्रथा जागीर और खालसा दोनों प्रकार की भूमि में फैल गई।[4] भू-राजस्व की मांग जो अब सामान्य जमा से अधिक होने लगी थी, के लिए वचनबद्ध होने की दृष्टि से उत्पन्न प्रतिस्पर्धा में आगरा सूबे में जाट जमींदारों की शक्ति का विस्तार हुआ। जाट राजा बदनसिंह के समय जाटों का विस्तार मुख्यतया इजारेदारी प्रथा द्वारा ही हुआ था। आमेर के शासक सवाई जयसिंह की कृपा से उसने अपने रिश्तेदारों एव जातीय लोगों के लिए अधिक से अधिक गाँव इजारे में प्राप्त किए, जिसके वार्षिक भुगतान का निर्धारण पट्टे व अनुबन्ध में कर दिया जाता था। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है—

चीठींक[5] मीती चैत सुदी १५ संवत् १७८४ अपरंचि जामीनी वा कबुलायती की ता १० बावती बदनसिंह वगैरह जाटा का वा० आगरा थे (से) गुलाबचन्द भेज्यां छै संवत १७८३ का सा यो माफीक रुपया ने हसील करवाई जमा कीज्यौ ६६६०६।

---

१. सरकार, पतन, II, पृ० २८३
२. मजमाउल अख़बार, इलियट, VIII, पृ० २७२
३. विलियम वेब, दि करेन्सीज़ आफ दि हिन्दू स्टेट्स आफ राजपूताना, पृ० १२६-२६
४. नोमान अहमद सिद्दीकी, मुग़ल कालीन भूराजस्व प्रशासन, पृ० १७४-७८
५. सनदनवीस, परगना सवाई जयपुर, संवत् १७८३, चिट्ठीयात रावजी श्री जगराम को।

(मु) कुचलका वदनसिंह
जाट वा० सीरमथुरा रुपया ८९०)
कवुलायती ली० अरजनसिंह
गुमास्ता वदनसिंह गांव कीठ
रु० ३००१)
क० ली० हरनाथ गुमास्ता
खेमकरण जाट गांव अरदाट
व सीकरोदा व दीठवार २८०३)
क० ली० अरजनसिंह प्र री
छौहावास सनदी रुपया ३१५४५१)
जा० वो स्याम साहि
विरादरी वदनसिंह जाट
मोनारलो रु० २७०१)

कवुलायती ली० अरजनसिंह गुमास्ता
वदनसिंह का दाम प्रवोले
इजारा रु० २८००१)
कवुलायती ली० जैकीसन वासंयती
गुमास्ता तुलाराम रु० ११४२१)
कवुलायती ली० अरजनसिंह गांव
इवराहमावाद की रु० १३०३)
कवुलायती ली० रणजीत जाट
गांव ६ धनौली वगैरह रु० ४२३०=)
कवुलायती ली० साभाराम
गुमास्ता रणजीत प्र रु० ७००१)

इस प्रकार इजारा एक प्रकार का ठेका होता था जिसका स्वाभाविक आशय भू-राजस्व संग्रह करने के अधिकार से था और भूमि पर उनका स्वामित्व नहीं होता था। इकरारनामे (पट्टा) में अनुवन्धित शर्तों के अनुसार इजारेदार जागीरदार या तालुकेदार को उसका भुगतान करता था। यद्यपि इसका निर्धारण सालाना होता था, किन्तु भुगतान रवी व खरीफ की फसलों पर किया जाता था। यह भी आवश्यक नही था कि इजारा या ठेका पूरे परगने के लिए किया जाता हो, प्रारम्भ में जाटो ने अधिकांश इजारे गांव इकाई के आधार पर ही प्राप्त किए थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि इजारे में गांव प्राप्त करते समय इजारेदार उस गांव की जुताई की ज़मीन को ध्यान में रखते हुए कुल वीघा ज़मीन तय करता था। यदि सम्वन्धित गांव में जोत लायक जमीन निश्चित वीघे के अनुसार नहीं निकलती थी, तो उसे वकाया भूमि के एवज में दूसरा गांव प्रदान कर दिया जाता था। इस प्रकार की रद्दवदल का हमें एक उदाहरण मिलता है, जव परगना सहार के गांव सूनरख के वदले वदनसिंह को परगना पहाड़ी का गांव नींवका सम्वन्धित तालुकेदार द्वारा प्रदान किया गया।[1] इसी प्रकार परगना भुसावर, जो साद मुहम्मद की शाही जागीर थी, के तालुकेदार हठीसिंह कल्याणवत ने अपनी जमींदारी के तालुके के सरकार में इजारे के रुपयों के भुगतान के लिए वदनसिंह जाट से ७४००) रुपया सालाना जामिनी पर पट्टा कवुलीयत की थी।[2] वदनसिंह अपने इजारे की राशि का भुगतान

---

१. सनदनवीस, परगना जयपुर, चिट्ठी श्रावण कृष्णा ८ संवत् १७८४ आमिल परगना पहाड़ी को।

२. सनदनवीस, परगना जयपुर, चिट्ठी चैत्र कृष्णा ३ संवत् १७८३ नन्दलाल को, सनदनवीस परगना जयपुर, चिट्ठी करार आश्विन शुक्ला ३ संवत् १७८३ चौधरी नानूरामजी भया गुनावराय जी।

रवी व खरीफ की फसलों पर नियमित रूप से करके वर्ष की समाप्ति पर आसानी से अपने इजारों का नवीनीकरण करवा लेता था।[१] तालुकेदारों तथा आमिलों के साथ अपने हिसाब का यह कार्य वदनसिंह अपने वकीलों मुख्यतया वहादुरसिंह व हेमराज कटारिया के द्वारा करता था।

सूरजमल के शासन काल में जाट इजारेदारों ने स्थायी जमींदारियाँ प्राप्त करली और वंशानुगत जमींदारों को वेदखल करके अपनी भूमि का विस्तार किया। किसी विशेष गांव के प्रति अपने दावे की उपेक्षा होने पर जाट राजा शक्ति व आतंक का प्रदर्शन करने में नहीं चूकता था।[२] क्योंकि भूमि की प्राप्ति के लिए अब वह जयपुर राजा की कृपा पर निर्भर नहीं था, वल्कि अपनी शक्ति के वल पर खालसा के जागीर महालों पर अपना कब्जा कर रहा था। १७५२ ई० में अफगान युद्ध में सहायता के वदले सूरजमल को, वज़ीर सफ़दरजंग ने खालसा भूमि में (जिस पर जाटों ने वलपूर्वक कब्जा कर लिया था) १८ लाख रुपये की शाही जागीर स्वीकृति की थी। १७५५ ई० में वजीर इमाद ने उसे पुनः स्वीकृत करके ८ लाख रुपये की जागीर (सूरजमल द्वारा जीते गए प्रदेशों में) अतिरिक्त स्वीकार की थी।[3] इस प्रकार अब जाटों की नीति सैनिक वल पर अधिक से अधिक मूल्य की जागीरों पर अधिकार करके उनके लिए शाही वैधता प्राप्त करने की थी।

धार्मिक दृष्टि से दिए गए भूमि के अनुदान को अधिकांशतः भूराजस्व तथा अन्य करों से छूट प्राप्त होती थी।[४] इसी उद्देश्य से सूरजमल के पुरोहित रूपराम कटारी ने पुण्यार्थ परगना कामां के तीन गावों की सनद उदक (माफी) करवाने हेतु जयपुर के राजा माधोसिंह से प्रार्थना की थी।[५] जाट राजा ने हरम के खर्चे के लिए भी कुछ निश्चिय आय के लिए कुछ गांव ड्योढ़ी विभाग के नियन्त्रण में दे रखे थे।[६]

---

१. सनदनवीस, परगना जयपुर, चिट्ठी मार्गशीर्ष शुक्ला १ संवत् १७८३ चौधरी नानुराम जी भया गुलावरायजी; चिट्ठी करार माघ शुक्ला १३ संवत् १७८३, चौधरी नानुराम साह मौजीराम द्वारा दीवान नारायणदास कीरपाराम को।

२. ड्राफ्ट ख़रीता संवत् १८११ (वण्डल संख्या ५) गांव सीकरी परगना खोहरी की शिकायत दीवान राजा हरगोविन्द से।

३. तारीख़े आलमगीर सानी, पृ० ५८ व

४. मुग़ल सरकार में ऐसे अनुदान को "मदद-माश" कहते थे, सिद्दीकी, पृ० १५३-५४

५ ख़रीता, इन्दौर—जयपुर राज्य, कार्तिक कृष्णा ७ संवत् १८१४ मल्हार राव होल्कर द्वारा सवाई राजा माधोसिंह को

६. गुप्ता, पृ० ५७-५८

सूरजमल के शासन काल का ऐसा कोई प्रामाणिक उल्लेख नहीं मिलता है, जिससे भूराजस्व की मांग की निर्धारित मात्रा का पता चलता हो। परन्तु राजस्व वसूली के लिए, विशेषकर बड़ी-बड़ी जागीरें व जमींदारियाँ प्राप्त करने के बाद, जाटों को अपने अनेक सैनिक दस्तों का निर्माण करना पड़ा, जो नियमित सेना से भिन्न होते थे।

नागरिक एवं न्यायिक प्रशासन की दृष्टि से जाट राज्य दो भागों में बंटा हुआ था—डीग व भरतपुर। इन दोनों स्थानों का न्यायिक अधिकारी अदालती कहलाता था। मूलतः भरतपुर राज्य में १३ परगने थे : भरतपुर, रूपवास, बयाना, उच्चैन–रूदावल, वैर, भुसावर, अखैगढ़ और कुम्हेर ये आठ परगने भरतपुर संभाग में तथा डीग, गोपालगढ़, कांमा, पहाड़ी, नगर ये पाँच परगने डीग संभाग के अन्तर्गत थे। परन्तु सूरजमल की विजयों एवं राज्य विस्तार के परिणामस्वरूप बाद में आगरा सूबा और दोआब के अनेक परगने जाट राज्य में सम्मिलित हो गए थे। सामान्य प्रशासन के अन्य विभागों शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन आदि के बारे में कोई विशिष्ट जानकारी नहीं मिलती है। इन क्षेत्रों के बारे में बाद में विकसित प्रशासनिक संस्थाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि इनमें से अधिकांश का प्रारम्भ सूरजमल के शासन काल में हुआ था। पानीपत से भागे हुए हज़ारों मराठा शरणार्थियों के लिए चिकित्सा एवं अन्य सुविधाओं का जुटाया जाना इस बात का प्रमाण है कि उस समय चिकित्सा एवं जनकल्याणकारी संस्थाओं का उदय हो चुका था।

सूरजमल का धार्मिक दृष्टिकोण

प्रारम्भिक जाट नेताओं ने ब्रज के लोगों को संगठित करने में धार्मिक उत्पीड़न को भी अपना आधार बनाया था, परन्तु सूरजमल इस मामले में अधिक उदार एवं विवेकशील था। व्यक्तिगत रूप से सूरजमल हिन्दू धर्म के वैष्णव सम्प्रदाय का अनुयायी था, किन्तु राज्य की नीति एवं सार्वजनिक मामलों में उसने उदार सामंजस्य की नीति का पालन किया। उसके व्यक्तिगत सेवकों में करीमुल्लाह खान[1] और मीर पतासा[2] प्रमुख थे। उसने अपनी सेना में भी मुसलमानों को भरती कर रखा था जिसमें बहुत बड़ी संख्या में मेव थे। मीर मुहम्मद पनाह उसकी सेना में एक महत्वपूर्ण पद पर था, जिसने घसेरा के दुर्ग पर सर्वप्रथम विजयी झण्डा फहराते हुए अपने प्राणों की आहुति दी थी।[3] सेना एवं प्रशासन में बिना किसी भेदभाव के जाट एवं मुसलमानों के अलावा ब्राह्मण, राजपूत, गूजर सहित सभी वर्गों के लोग थे।

---

१. दस्तूर कौमवार, vii, पृ० ४५७
२. वही, पृ० ६०८
३. सुजान चरित्र, पृ० १३९-४०

श्री हरिदेव जी सूरजमल के इष्ट देवता थे,[1] १७५६ ई० में उनके मन्दिर की स्थापना उसने अपने नवनिर्मित दुर्ग के अन्दर की थी।[2] श्री रामचन्द्र के छोटे भाई लक्ष्मणजी जाट राजाओं के कुल देवता थे। सूरजमल अपने इष्ट देवता की पूजा के लिए प्रायः गोवर्धन जाया करता था और अनेक अवसरों पर सैन्य शिविर एवं राजनैतिक कार्यों का सम्पादन वहीं पर किया करता था। अक्तूबर १७६१ ई० में जब नजीब के दूत राजा चेतराम व दिलेरसिंह जाट राजा से वार्ता करने आए, उस समय वह गोवर्धन के मेले में भाग लेने जा रहा था, इस कारण वह इन दूतो को अपने साथ गोवर्धन ले गया और वहीं पर चार दिन तक वार्ता की।[3] गृह युद्ध के दौरान दिल्ली की लूट के बाद सूरजमल ने गोवर्धन आकर दिवाली के अवसर पर अपने उपास्य देव हरिदेव जी का पूजन और मानसी गंगा पर वृहद् दीपदान किया था।[4] १७५६ ई० में वृन्दावन में आयोजित वैष्णव धर्म के महोत्सव को सफल बनाने के लिए सूरजमल ने गलता (जयपुर) के महन्त को वहाँ भेजने के लिए जयपुर राजा को व्यक्तिगत पत्र लिखा था।[5]

सूरजमल के शासन काल में धर्म के नाम पर भेदभाव या उत्पीड़न का कोई उदाहरण नही मिलता है। इसके विपरीत अब्दाली की मुस्लिम सेनाओं के धर्म के नाम पर जब उसके राज्य में मथुरा, वृन्दावन एवं गोकुल में अत्याचार एवं विनाश का नग्न प्रदर्शन किया, तब भी जाट राजा ने अपना धैर्य नही खोया। धार्मिक मामलों में वह राजनैतिक औचित्य के अनुसार निर्णय लेता था। उसके राज्य में मुस्लिम मस्जिदों की पवित्रता यथावत् बनी हुई थी। १७६१ ई० में जब आगरा दुर्ग पर उसका निश्चित एवं स्थायी अधिकार हो गया तब सूरजमल ने अवश्य ही अपने निजी दुर्गों की भाँति वहाँ से इस्लाम के चिन्हो को हटा दिया था।

साहित्य

सूरजमल को स्वयं को बाल्य काल में विशेष शिक्षा नही मिली, परन्तु शिक्षा के प्रति उसकी रुचि असाधारण थी। यह तथ्य इस बात से प्रमाणित होता है कि इस जाट राजा के शासन काल मे अनेक महत्वपूर्ण विद्वानों को भरतपुर मे राज्याश्रय प्राप्त हुआ और उसने स्वयं समय-समय पर अनेक विशिष्ट ग्रन्थो की रचना की प्रेरणा दी। डीग राज्य की प्राप्ति के बाद जब बदनसिह कवि सोमनाथ को मथुरा से डीग अपने दरबार मे लाया तब कुछ वर्षों तक वह सूरजमल का शिक्षक रहा था।[6]

---

१. 'इक प्रीति श्री हरदेव को कै पिता के पदमाहि', सुजानचरित्र, पृ० ५
२. वृजेन्द्र वंश भास्कर, पृ० ४३
३. पेशवा दफ्तर, XXI, पत्र, ९०
४. ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० १०५ व १०७
५. खरीता भरतपुर, मार्गशीर्ष, कृष्णा ३ संवत् १८१३
६. गंगासिह, यदुवश, पृ० १०८

सूरजमल का आश्रय पाने वाले कवियों में सूदन, सोमनाथ, अखैराम, शिवराम, कलानिधि, वृन्दावनदास, सुधाकर, हरिवंश आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मथुरा निवासी माथुर कवि सूदन सूरजमल का अत्यधिक कृपा पात्र एवं प्रमुख दरबारी कवि था। सूरजमल ने उसके लिए जागीर एवं उसके वंशजों के लिए स्थायी आजीविका का प्रबन्ध किया था।[1] सूरजमल के ऐतिहासिक चरित्र को सूदन ने अपने प्रसिद्ध पद्य काव्य 'सुजान चरित्र' में लिपिबद्ध किया। उसके दृश्यगत विवरणों से पता चलता है कि प्रत्येक महत्वपूर्ण युद्ध में यह कवि सूरजमल के साथ रहता था और अपने स्वामी की राजनैतिक गतिविधियों की उसे पूरी जानकारी रहती थी। शशिनाथ उपनाम सोमनाथ मथुरा के निकट ५ मील पर गाँव छिरौरा निवासी माथुर था। सोमनाथ ने क्रमशः बदनसिंह प्रतापसिंह और सूरजमल का आश्रय प्राप्त किया था। सोमनाथ द्वारा लिखे गए प्राप्त ग्रन्थ इस प्रकार हैं—नवावोंविलास, संग्रामदर्पण, रस पीयूष निधि, शृंगार विलास, रामचरित्र रत्नाकर, राम कलाधर, कृष्ण लीलावती, सुजान विलास, माधव विनोद, ध्रुव विनोद, शशिनाथ विनोद, व्रजेन्द्र विनोद तथा प्रेम पच्चीसी। सूरजमल के कहने पर ही कवि ने सिंहासन बत्तीसी का अनुवाद सुजान विलास के रूप में किया और उसके बाद के सभी ग्रन्थों की रचना सूरजमल के लिए ही की गई थी। सूरजमल ने इसे जागीर प्रदान की और अपने राज्य के दानाध्यक्ष पद पर बनाए रखा।[2]

कवि शिवराम सूरजमल के युवराज काल से ही कुम्हेर में रहे और इनकी काव्य रचना 'नवधा भक्ति रागरस सार' पर सूरजमल ने इनको ३६००० रुपये का पुरस्कार प्रदान किया था।[3] संभवत १७३५ ई० में इस ग्रन्थ की रचना हुई,[4] जब सूरजमल कुम्हेर में निवास कर रहे थे। कवि सोमनाथ और कलानिधि इस समय वैर चले गए थे, जहाँ सूरजमल के छोटे भाई प्रतापसिंह निवास कर रहे थे। सोमनाथ तो प्रतापसिंह

---

१. भरतपुर स्टेट से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र 'भारत वीर' भाग १, संख्या १९, २९ मार्च १९२७ ई०; सुजान चरित्र, पृ० ३

२. विष्णु चन्द्र पाठक, सोमनाथ आचार्य और कवि (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)

३. नगर कुम्हेर जानि मथुरा ढिग, सूरजमल महाराजा।
नवधा भक्ति राग रस बरन्यौ, सुनो तुम्हारे काजा॥
जबहि ग्रन्थ पूरन भयौ, तबहि करी बकसीस।
परैं रुपैया मौन सौं, दए सहस छहतीस॥

मत्स्य की देन, पृ० ४४-४५

४. तिथि के सम्बन्ध में अस्पष्ट वर्णन मिलता है। एक स्थान पर कवि ने संवत् १७३५ का उल्लेख किया है जबकि दूसरे स्थान पर वर्णित 'दंपति रस मुनि ससिहि' का अर्थ डा० मोतीलाल गुप्ता ने संवत् १७६२ ई० लगाया है। मेरे विचार से यह १७९२ होना चाहिए, देखें, मत्स्य की देन, पृ० ४४-४५

की मृत्यु के बाद सूरजमल के पास पुनः डीग चले आए थे, परन्तु कलानिधि वैर में ही रहे। इन दोनों ने मिलकर वैर में सम्पूर्ण रामायण का हिन्दी अनुवाद किया था। कलानिधि ने वाल्मीकि रामायण के तीन काण्डों (बाल, युद्ध व उत्तर काण्ड) के हिन्दी पद्यानुवाद के अलावा उपनिषद् सार, दुर्गा माहात्म्य (अनुवाद), रामगीतम्, शृंगार-माधुरी तथा अलंकार कलानिधि नामक ग्रन्थों की रचना भी की।[1]

कवि अखैराम ने सूरजमल के लिए तीन ग्रन्थों की रचना की—सिंहासन बत्तीसी, विक्रम विलास और सुजान विलास। प्रथम पुस्तक की रचना १७५५ ई० में हुई थी और अन्तिम काव्य का जो प्राप्य नहीं है, मात्र उल्लेख ही मिलता है। कवि ने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा, उसके वंश तथा राजधानी डीग का भव्य वर्णन किया है।[2] कवि उदयराम के दो ग्रन्थ मिलते हैं: गिरिवर विलास और सुजान संवत्।[3] यद्यपि कवि के सूरजमल के समकालीन होने के ठोस प्रमाण नहीं मिलते हैं, किन्तु गिरिवर विलास में मानसी गंगा पर सूरजमल द्वारा किए गए प्रथम दीपदान महोत्सव के उद्‌घाटन अवसर के विस्तृत एवं दृश्यगत विवरण से प्रकट होता है कि कवि स्वयं वहाँ पर उपस्थित था। सुजान संवत् सुजान चरित्र की तरह सूरजमल के इतिहास विषयक सूचनाओं (विशेष रूप से सूदन द्वारा कुम्हेर घेरे के बाद का वृतान्त न देने की) की पूर्ति करता है।

कवि दत्त की रचना 'महाराजा सूरजमल की कृपाण' वीर साहित्य का अनुपम रत्न है। कहा जाता है कि महाकवि देव भी आश्रय की तलाश में भरतपुर राज्य में पहुँचे थे और सूरजमल ने उनका सम्मान किया था। डीग दुर्ग के निर्माण के समय वे सूरजमल के पास ही रहते थे और यह संभव है कि 'सुजान विनोद' नामक ग्रन्थ की रचना उन्होंने सूरजमल के लिए ही की हो।[4] ब्रज के एक अन्य भक्त कवि वृन्दावनदास ने भी सूरजमल का आश्रय प्राप्त किया था। १७५६ ई० में वृन्दावन अब्दाली के आक्रमण के समय वृन्दावनदास वहाँ विद्यमान थे। उस भीषण संहार से किसी तरह बचकर वे भरतपुर के दुर्ग में पहुँच गए। यहीं पर उन्होंने हरि कला वेलि काव्य की रचना की, जिसके प्रारम्भ में लिखा है—

"अठारह सौ तेरह बरस, हरि ऐसी करी।
जमन बिगोयौ देस, विपत्ति गाढ़ी परी।"

इस ग्रन्थ के दूसरे भाग में इस विपत्ति का और वर्णन किया गया है।[5]

कला

कला के क्षेत्र में सूरजमल की अभिरुचि दुर्ग, महल एवं मन्दिर निर्माण के

---

१. मत्स्य की देन, पृ० ५७-६५
२. वही, पृ० १९८-२०१
३. वही, पृ० १५४ व २११
४. भारत वीर, २६ मार्च १९२७ ई०
५. ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ५१४

रूप में विशेष रूप से प्रकट होती है। यद्यपि उसके शासन काल में सभी जाट क़िलों की मरम्मत एवं पुनर्निर्माण का कार्य जारी रहा, परन्तु स्वयं उसका योगदान विशेष रूप से भरतपुर के नवीन दुर्ग और डीग के आधुनिकतम महलों के निर्माण में रहा है।

डीग में अपने पिता के समय बने महलों, जो पुराने महलों के नाम से जाने जाते हैं, से पृथक सूरजमल ने सुन्दर जलाशय एवं फव्वारों के साथ आधुनिक सुविधा से युक्त महलों का निर्माण करवाया, जो आज भी भव्य एवं दर्शनीय हैं। सोमनाथ ने सुजान विलास और अखैराम ने सिंहासन बत्तीसी में राजधानी डीग के इन सुन्दर महलों, वाटिका, जलाशय आदि का श्रेष्ठ एव विस्तृत वर्णन किया है। थार्टन के अनुसार डीग के महल जाट राज्य के रूपवास परगने में बांसी पहाड़पुर की खदान के सुन्दर एवं कठोर बलुआ पत्थर से बनाए गए हैं जो शैली की रमणीयता और शिल्प की पूर्णता की दृष्टि से इतने श्रेष्ठ हैं कि उनसे बढ़कर केवल आगरा का ताजमहल है। चतुष्कोण बनाते हुए इन महलों के बीच ४७५-३५० फीट का एक बगीचा है जिसमें फव्वारे लगे हुए हैं। पूर्व व पश्चिम में विशाल जलाशय है तथा उत्तर की ओर नन्द भवन है, पश्चिमी में मुख्य इमारत गोपाल भवन है, जो सभी महलों में सर्वाधिक विशाल है। यह तीन ओर से दुमंज़िला है और बीच में विशाल सभा भवन है। गोपाल भवन से थोड़ी सी दूरी पर दो छोटी इमारतें हैं जो 'सावन भादों' भवन के नाम से जानी जाती है। ये तीनों भवन यद्यपि सामने के धरातल पर केवल एक मंज़िल में हैं, परन्तु इनके पीछे की ओर सतह के नीचे बनी हुई दो अतिरिक्त मंज़िलें हैं, इसमें से एक अंशतः अथवा पूर्णतः पूरे वर्ष पानी के नीचे रहती है। सरोवर के पानी के स्तर की ऊँचाई के अनुसार इनमें परिवर्तन होता रहता है। चतुष्कोण के दक्षिण की ओर उत्तर की तरफ़ मुख किए दो महल हैं . (१) पश्चिम में मकराना खदान के संगमरमर से बना सूरज भवन और (२) पूर्व में भूरे बलुआ पत्थर से बना किशन भवन। इन दोनों महलों के बीच इस मजबूत इमारत की छत पर एक टंकी है जो इन सभी महलों व बगीचों में जल प्रवाह करती है। ग्रोकमेन के अनुसार भण्डार की विशाल क्षमता को आवश्यक मज़बूती प्रदान करने में यह टंकी हिन्दुस्तान में बेजोड़ है।[1]

१७३३ ई० में भरतपुर पर अधिकार करने के बाद से ही सूरजमल ने योजनाबद्ध ढंग से इस स्थान का विकास नई राजधानी और अभेद्य दुर्ग के निर्माण की दृष्टि से प्रारम्भ कर दिया था। उसकी व्यक्तिगत रुचि के कारण ही इस स्थान का तेजी से विकास सम्भव हो सका और अगले २५ वर्षों में यह हिन्दुस्तान का प्रसिद्ध नगर बन गया था। १७४५ ई० में शासन सूत्र अपने हाथ में आने के बाद सूरजमल ने समकालीन जाट दुर्गों से भी अधिक सुदृढ़, अभेद्य और विशाल क्षमता वाले भरतपुर के दुर्ग का निर्माण तेजी से किया और अगले आठ वर्षों में सम्भवतः

१. ग्रोकमेन, पृ० ११-१३; देवनीश, पृ० १२-२१

वह इस कार्य को पूरा कर चुका था। डेढ़ मील के घेरे में बने भरतपुर दुर्ग के परकोटे के भीतर अनेक राजकीय महलों का भी निर्माण कराया गया। परकोटे में आठ बुर्ज स्थापित किए गए और उसके चारों ओर ३० फीट गहरी और २०० फीट चौड़ी खाई बनाकर, उसमें जल के प्रवेश एवं निकासी का उत्तम प्रबन्ध किया गया। यह खाई या नहर सुजान गंगा के नाम से प्रसिद्ध है।

भरतपुर के क़िले में प्रवेश के लिए उत्तर व दक्षिण में दो प्रवेश द्वार बनाए गए और खाई को पार करके उन तक पहुँचने के लिए पुल भी बनाए गए। मुख्य दक्षिणी द्वार के सम्मुख एक छोटी सी चौबुर्जा गढ़ी बनाई गई थी। नगर की सुरक्षा के लिए चारों ओर १८ से २५ फीट चौड़े और ६० फीट ऊँचे मिट्टी के परकोटे का निर्माण करवाया गया, ताकि शत्रु के तोपगोले मिट्टी में धंस जाए और मुख्य क़िला उनकी पहुँच से दूर रहे। मिट्टी के धुस्स की इस दीवार के चारों ओर २०० से २५० फीट चौड़ी तथा १० से १५ फीट गहरी कच्ची खाई बनाई गई थी। नगर में प्रवेश के लिए आठ दरवाज़ों का निर्माण किया गया और परकोटे की सुरक्षा के लिए १५ नाल बुर्ज, व १७ पक्की बुर्ज भी बनाई गई। इस दुहरी सुरक्षा व्यवस्था (पत्थर का परकोटा और मिट्टी का परकोटा) एवं सुदृढ़ संरचना का ही परिणाम था कि १८०५ ई० में लार्ड लेक के नेतृत्व में ब्रिटिश सेना के विरुद्ध यह दुर्ग अभेद्य सिद्ध हुआ। क़िले के भीतर श्री हरिदेवजी व बिहारीजी का मन्दिर और किशोरी महल सहित अन्य अनेक भवनों का निर्माण किया गया था।[1] सूरजमल ने १७५३ ०ई केलगभग भरतपुर को अपना स्थायी निवास बना लिया था, परन्तु १७५६ ई० में बदनसिंह की मृत्यु के बाद ही यह विधिवत् रूपसे राजधानी घोषित हुई थी।

राधाकुंड-गोवर्धन के प्रायः बीच में सड़क के किनारे स्थित 'कुसुम सरोवर' नामक पवित्र जलाशय के पुर्ननिर्माण का कार्य भी जाट राजा सूरजमल ने किया था। उसके पुरोहित रूपराम कटारी ने बरसाना में अनेक मन्दिर, भवन आदि का निर्माण किया और बाग आदि लगाकर उसे एक सुन्दर क़स्बे के रूप में विकसित किया। सूरजमल की पत्नी रानी किशोरी ने गोवर्धन में मानसी गंगा के तट पर एक महल और श्री किशोरीश्यामजी का मन्दिर बनवाया था तथा वृन्दावन में यमुना के किनारे कुंज और किशोरीघाट का निर्माण कराया था।[2]

मूल्यांकन

जिस समय सूरजमल का उदय हुआ, उस समय जाट लोग केवल किसान व जमींदार थे और वे सैनिक के रूप मे अधिक जाने जाते थे। परन्तु सूरजमल के शासन

---

१. भरतपुर नगर एवं दुर्ग निर्माण के लिए देखें, सुजान चरित्र, पृ० २४६; तवारीख भरतपुर, पृ० २०-३२; जा० न० इ०, ३३२-३३८

२. ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० १०५ व ५१६

काल में इन कृषक जाटों ने एक कुशल और शक्तिशाली योद्धा वर्ग के रूप में ख्याति प्राप्त की, सैनिक और जमींदारों के स्तर से उठकर वे शक्तिशाली शासकों की श्रेणी में गिने जाने लगे। उसके समय में जाटों की कीर्ति सर्वोच्च शिखर पर पहुँच गई थी, फिर भी वह अपने को जमींदार कहने में गर्व अनुभव करता था। अपनी सादगी एवं पहनावे से वह एक साधारण किसान लगता था, परन्तु राजनीतिक शिष्टाचार के साथ मृदुल एवं शालीन व्यवहार के कारण वह बहुत लोकप्रिय था[1] और समकालीन शासक उसका बहुत सम्मान करते थे। विशाल सम्पत्ति और एक शक्तिशाली सेना का स्वामी होने के बावजूद उसमें अहंकार लेश मात्र नहीं था। वैण्डल को उसके चरित्र में केवल एक दोष दिखाई दिया और वह था उसकी कृपणता।[2] एक किसान घर में उत्पन्न होने पर भी सूरजमल में एक राजा की भाँति पुरुषों के असली गुणों की परीक्षा कर सकने और राजनीतिक विषयों का समुचित प्रबन्ध करने की क्षमता एवं सहज बुद्धि थी।

१७२१ ई० में मात्र १४ वर्ष की आयु में जब सूरजमल अपने पिता के दूत के रूप में सवाई जयसिंह से मिलने उसके दिल्ली स्थित मुकाम पर पहुँचा,[3] तब उसके राजनैतिक जीवन का प्रारम्भ हुआ था। इस समय सूरजमल के पास कुछ नहीं था, उसका पिता बदनसिंह मुहकमसिंह की कैद में था और उसकी मुक्ति एवं भविष्य की चिन्ता के साथ उसने अपना सैनिक व राजनैतिक जीवन प्रारम्भ किया था। परन्तु १७६३ ई० में जब उसकी मृत्यु हुई, तब भरतपुर का जाट राज्य हिंदुस्तान का सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न राज्य था, और जाट राजा एक विशाल कोष, शक्तिशाली सेना और विस्तृत भूभाग का स्वामी था। ऐसा सूरजमल की बहुमुखी प्रतिभा और श्रेष्ठ सैनिक व राजनैतिक गुणों के कारण ही सम्भव हो पाया था। अतः जाट राज्य का वास्तविक संस्थापक सूरजमल ही था और अपनी मृत्यु के समय वह एक राज्य के सभी गुणों से युक्त व्यवहारतः स्वतन्त्र सत्ता का उपभोग करता था।

निष्ठा और वफ़ादारी की भावना सूरजमल को उत्तराधिकार में मिली थी। जिस प्रकार बदनसिंह ने डीग राज्य की प्राप्ति के लिए आजीवन जयपुर दरबार के

---

१. सूरजमल के समकालीन जयपुर शासक माधोसिंह के दरबार में स्थित कवि कृष्ण भट्ट ने उसकी कीर्ति एवं ख्याति का वर्णन करते हुए लिखा है कि अपने नाम के अनुरूप ही सूरजमल तेजस्वी एवं अनेक गुणों से युक्त था और सूर्य के प्रकाश की तरह उसकी कान्ति चारों ओर फैली हुई थी। पद्य मुक्तावली, पृ० ६०-६१

२. सरकार, पतन, II, पृ० २८२

३. दस्तूर कौमवार, VII, पृ० ५३५

के प्रति निष्ठा एवं कृतज्ञता प्रकट की, उसी प्रकार सूरजमल ने भी अपने राजनैतिक जीवन की अनेक विषम परिस्थितियों में भी न केवल जयपुर शासक के प्रति अपने पिता की इच्छा का पालन किया, बल्कि अन्य अनेक मामलों में भी एक निष्ठता प्रदर्शित की। इस विषय में वह अपने एक शक्तिशाली पूर्वज चूड़ामन के ठीक विपरीत स्वभाव का था। जहाँ चूड़ामन ने जाट शक्ति के विकास के लिए अपनी निष्ठा को स्वार्थ के अनुकूल बारम्बार बदला, वहाँ सूरजमल ने उसी उद्देश्य के लिए कार्य करते हुए एक परिपक्व एवं दूरदर्शी राजनीतिक की तरह एकनिष्ठता का पालन करते हुए राजनैतिक क्षेत्र में अपने लिए विश्वास एव महत्ता क़ायम की। जयपुर के गृह युद्ध में ईश्वरीसिंह के पक्ष में सक्रिय भाग लेने की नीति सूरजमल द्वारा अपने संरक्षक के प्रति वफ़ादारी की पुष्टि थी। मात्र स्वार्थसिद्धि के लिए विजेता या प्रवल पक्ष का साथ देने की चूड़ामन की अवसरानुकूल नीति के विपरीत सूरजमल ने वगरू के युद्ध में यह जानते हुए कि मराठा एवं राजपूताना के अनेक शासकों के समर्थन के कारण माधोसिंह का पक्ष मजबूत है, ईश्वरीसिंह के लिए अन्तिम समय तक खून वहाया, यद्यपि लाभ के रूप में जाटों को यश के अलावा कुछ नहीं मिला। माधोसिंह के सिंहासनारूढ़ होने पर सूरजमल ने पुन: निष्ठा प्रदर्शन के द्वारा नए शासक की सद्भावना अर्जित करने में सफलता पा ली थी, किन्तु अब दोनों के आपसी सम्बन्धों का स्वरूप बदलने लगा था और ये संरक्षक-अधीनस्थ के न रहकर समानता पर आधारित मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध दिखाई देने लगे थे। सूरजमल व माधोसिंह ने अनेक महत्वपूर्ण राजनीतिक मामलों में भिन्न नीति का पालन करते हुए भी निरन्तर भेंट एवं पत्राचार द्वारा इस बात पर सहमति व्यक्त की थी कि वे आपसी मित्रता एवं सद्भाव बनाये रखेंगे।

सूरजमल का लक्ष्य मुग़ल सम्राट की अधीनता में एक शक्तिशाली, विस्तृत एवं स्वतन्त्र जाट राज्य की स्थापना करना था, जिसके अस्तित्व को चुनौती देना किसी भी शासक के लिए दुष्कर कार्य हो। इसके लिए उसने अपने पिता की शान्त, संयत एवं अनुकम्पा की नीति को पलटकर उग्र महत्वाकांक्षी एवं शक्ति प्रदर्शन की नीति को अपनाया। सूरजमल में शौर्य, साहस एवं सैनिक कुशलता के साथ-साथ धैर्य दूरदर्शिता एवं राजनैतिक सूझ-बूझ का अद्भुत सामंजस्य था। सूरजमल की इस प्रतिभा को उसके पिता वदनसिंह ने भलीभाँति पहचाना और उसके प्रत्येक कार्य एवं निर्णय से सहमति प्रकट करते हुए प्रारम्भ से ही उसे बहुत स्वतन्त्रता दे रखी थी। सूरजमल भी प्रत्येक महत्वपूर्ण विषय पर पितृनिष्ठा की भावना के साथ वदनसिंह से सलाह एवं अनुमति लिया करता था। अपने नेतृत्व क्षमता एवं व्यवहार कुशलता के बल पर सूरजमल जाट राज्य के विभिन्न वर्गों और जाट सेना के बीच एकता व सामंजस्य स्थापित करने में सफल रहा और अपने पिता के दो प्रमुख विरोधियों में से एक खेमा जाट को सैनिक क्षेत्र में पराजित (१७३३ ई०) किया और दूसरे मोहकमसिंह को राजनैतिक दृष्टि से कमज़ोर करने के बाद क्षमा कर दिया।

अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सूरजमल का प्रथम महत्वपूर्ण राजनीतिक निर्णय जयपुर राजा के संरक्षकत्व से हटकर १७५० ई० में साम्राज्य के वज़ीर सफ़दरजंग की मैत्री प्राप्त करना था। १७४८ ई० में मराठा सरदार होल्कर और १७४६ ई० में साम्राज्य के मीरबख्शी के ऊपर अपनी सैनिक श्रेष्ठता स्थापित करके सूरजमल ने किसी तात्कालिक लाभ की इच्छा नहीं की थी, बल्कि वह पतनोन्मुख मुग़ल साम्राज्य और उत्तर में बढ़ते हुए मराठा प्रसार के बीच अपने राज्य की सुरक्षा एवं विस्तार की दिशा में पूरी सतर्कता बरतना चाहता था। धैर्य का फल उसे मिला और उपर्युक्त सैनिक श्रेष्ठता का ही परिणाम था कि वज़ीर उसकी मैत्री सहायता का आकांक्षी हुआ। सूरजमल ने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया क्योंकि उसे अनधिकृत शाही जागीरों को वैधता दिलाने और मराठा खतरे के विरुद्ध अपने हितों की रक्षा के लिए ऐसे ही मित्र की आवश्यकता थी। साम्राज्य के गृह युद्ध के बुरे दिनों में सफ़दरजंग का पूरा साथ निभाकर सूरजमल ने राजनैतिक क्षेत्र में अपनी प्रभावशाली एवं उपयोगी मित्रता के प्रति विश्वास में वृद्धि की, यद्यपि नवाब के दुर्भाग्य में उसे भी भागीदार बनना पड़ा।

वस्तुतः देखा जाय तो मुग़ल साम्राज्य के वज़ीर के साथ संबन्धों के मामले में सूरजमल दुर्भाग्यशाली रहा अथवा उसका दृष्टिकोण अदूरदर्शी सिद्ध हुआ। सूरजमल नए वज़ीर इन्तिज़ाम से सम्बन्ध सामान्य बनाता, उसके पूर्व ही उसे गाज़ीउद्दीन इमाद का कोपभाजन बनना पड़ा। इमाद को समझने में सूरजमल ने प्रारम्भ में निश्चय ही भूल की, जो उसका प्रमुख शत्रु सिद्ध हुआ। जब इमाद वज़ीर बना तो सूरजमल ने अपने राजनैतिक हितों की सुरक्षार्थ अपने वंश परम्परागत मित्र अवध के नवाब शुजाउद्दौला को वज़ीर बनाए जाने के प्रयास को प्रमुख रूप से समर्थन प्रदान किया। यहाँ पर हमें सूरजमल की राजनैतिक दूरदर्शिता एवं औचित्य पर सन्देह होता है, जब पानीपत के युद्ध के पूर्व तक नजीब, मराठा व अब्दाली जैसी प्रमुख राजनीतिक शक्तियाँ इमाद की वज़ारत का समर्थन कर रही थीं तथा उसने उसके साथ विरोध एवं टकराव की नीति जारी रखी और जब पानीपत के युद्ध के बाद इमाद इन सभी पक्षों द्वारा ठुकराया जा चुका था, तब सूरजमल ने उसकी शत्रुता भुलाकर उसे पुनः वज़ारत पर स्थापित करने के लिए अपना रक्त बहाने का निश्चय किया। इसका परिणाम यह हुआ कि १७६२ ई० में जब शुजाउद्दौला वज़ीर बना तब जाट राजा व्यवहारतः इस वंश परम्परागत मित्र को भी खो चुका था। सूरजमल के दृष्टिकोण का आधार यह भी हो सकता है कि पानीपत के युद्ध के बाद जब इमाद पूरी तरह से उसकी शरण में था, तो शक्तिशाली शुजाउद्दौला के स्थान पर निर्बल और असहाय इमाद उसकी महत्वाकांक्षा पूर्ति का उपयुक्त साधन हो सकता था। यदि जौनला के चारित्रिक विश्लेषण को स्वीकार किया जाय तो शुजाउद्दौला अपने चरित्र में इमाद से भी अधिक बुरा था। सम्भवतः इसी परिप्रेक्ष्य में सूरजमल ने यह सोचा कि

वज़ीर की सत्ता मिलने पर शक्तिशाली शुजाउद्दौला उसकी उपेक्षा कर सकता है और इमाद की तुलना में अधिक हानि पहुँचा सकता है जो कि मराठों का भी मित्र है। इसके विपरीत इमाद, जिसे मराठा समर्थन से पृथक कर दिया गया था, वज़ीर बनने पर भी जाट राजा को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता था क्योंकि उसकी स्वयं की शक्ति का कोई आधार नहीं था। वज़ीर के साथ निरन्तर टकराव की नीति के बावजूद यदि जाट राज्य के हितों को कोई विशेष आँच नहीं आई तो इसका कारण समकालीन शक्तियों के बीच जाट सेना की श्रेष्ठता थी।

आगरा व दोआब में जाट-मराठा हितों का टकराव अवश्यम्भावी था, इस कारण सूरजमल मूलतः मराठों को चम्बल पार खदेड़ दिए जाने की नीति का समर्थक था। फिर भी उनके साथ संघर्ष से बचने के लिए वह एक निश्चित व्यवहार एवं समझौते का इच्छुक था, परन्तु मराठों ने सैन्य शक्ति के दर्प में जाट को तुच्छ समझा। १७५४ ई० के कुम्हेर घेरे की विफलता पर मराठों की यह भ्रान्ति टूट गई और वे जाटों के साथ समान स्तर पर वार्ता एवं मैत्री के इच्छुक हुए। मराठों के प्रति सूरजमल अविश्वासी था, किन्तु जब तक उत्तर में उनके प्रवेश को रोके जाने पर पक्का भरोसा नहीं हो जाता, वह उनकी शत्रुता से बचना चाहता था। इसी कारण माधोसिंह व अन्य शासकों के निरन्तर आग्रह के बावजूद उसने उनसे सहमत होते हुए भी दूरदर्शिता से मराठों के साथ मित्रता के द्वार खुले रखे। इसी के परिणाम स्वरूप जब अब्दाली के आक्रमण का खतरा उत्पन्न हुआ तो एक व्यापक दृष्टिकोण के अनुरूप सूरजमल को मराठा पक्ष ग्रहण करने में विशेष हिचकिचाहट का सामना नहीं करना पड़ा। यह बात अलग है कि भाऊ से मतभेद होने के कारण उसे मराठा पक्ष छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा।

पानीपत के युद्ध के बाद अपने दो प्रमुख शत्रुओं मराठा व अब्दाली से मैदान साफ़ होने के कारण पहली बार सूरजमल अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति में अधीर होता हुआ दिखाई देता है। जब उसे अपने प्रमुख हथियार इमाद की असफलता दृष्टिगोचर होने लगी, तो उसने केवल अपनी शक्ति के बल पर ही राजधानी दिल्ली पर नियन्त्रण करने का विचार किया। परन्तु इस समय सूरजमल की महत्वाकांक्षा उसके लक्ष्य से बहुत आगे बढ़ गई और वह दिल्ली पर अधिकार के लिए अधीर हो उठा। निस्सन्देह चारों ओर जाट प्रदेश से घिरी दिल्ली इस समय जाट राजा के चंगुल में थी और नजीब के ऊपर वह अपनी सैनिक श्रेष्ठता और सफलता के प्रति भी पूरी तरह से आश्वस्त था, परन्तु भाग्य ने सूरजमल का साथ नहीं दिया। इस अन्तिम दुर्भाग्यपूर्ण असफलता के बावजूद जाटों की कीर्ति को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाने का श्रेय सूरजमल को ही है। सूरजमल ने न केवल समकालीन महत्वपूर्ण हिन्दुस्तानी शक्तियों मुग़ल, मराठा व अफगानों के बीच जाट शक्ति को मान्यता और प्रतिष्ठा दिलाई, बल्कि राजधानी के ठीक पड़ोस में होने के कारण अनेक गम्भीर अवसरों पर अपनी सूझ-बूझ एवं व्यवहारिक नीति के द्वारा उसकी सुरक्षा एवं प्रगति को भी आँच नहीं

आने दी । अपने सैनिक एवं राजनैतिक गुणो के बल पर उसने समकालीन शासकों के बीच अपनी स्थिति को महत्वपूर्ण व सम्मानजनक बना दिया था और अपने व्यक्तिगत गुणों एवं शिष्ट राजनीतिक व्यवहार से अपने चरित्र को महान् बना दिया था।

इस प्रकार भरतपुर का जाट राजा सूरजमल शौर्य, साहस, बुद्धि, विवेक दूरदर्शिता, प्रबन्ध कौशल के गुणों से युक्त होते हुए कवि एवं विद्वानों का आश्रयदाता कला एवं संस्कृति का पोषक, शरणागत का रक्षक और धार्मिक मामलों में उदार, मानवीय एवं विवेकशील था। सभी जाट राजाओं में निश्चय ही वह सर्वाधिक योग्य एवं गुणी था। इमाद के लेखक ने सत्य ही उसे जाटों का प्लेटो कहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) फ़ारसी

अप्रकाशित ग्रन्थ

१. अख़बार-ए-मुहब्बत	:	नवाब मुहब्बत ख़ान
२. अजायब-उल-अफ़ाक	:	सीतामऊ संग्रह
३. अहकाम-ए-आलमगीरी	:	इनायतुल्ला कश्मीरी, सीतामऊ संग्रह
४. अहवाल-ए-सलातीन-एमुतखरीन	:	सीतामऊ संग्रह
५. इबरतनामा	:	मिर्जा मोहम्मद, सीतामऊ संग्रह
६. चहार-गुलज़ार-ए-शुजाई	:	हरचरनदास
७. तज़किरा-ए-इमाद-उल-मुल्क	:	गण्डासिंह द्वारा संग्रहित
८. तज़किरा-ए-शाकिर ख़ान	:	शाकिर ख़ान, सीतामऊ संग्रह
९. तज़किरात-उस-सलातीन-ए-चग़ताई	:	मुहम्मद हादी कामवर ख़ान, सीतामऊ संग्रह
१०. तारीख़-ए-अहमदशाही	:	अज्ञात, सरकार संग्रह, राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता
११. तारीख़-ए-आलमगीर सानी	:	अज्ञात, सरकार संग्रह, रा० पु० क०
१२. तारीख़-ए-मुज़फ़्फ़री	:	मुहम्मद अली ख़ान अन्सारी, सरकार संग्रह, रा० पु० क०
१३. तारीख़-ए-हिन्द	:	रुस्तम अली, सीतामऊ संग्रह
१४. फ़ुतूहात-ए-आलमगीरी	:	ईसरदास नागर, सीतामऊ संग्रह
१५. बयान-ए-वाक़या	:	ख्वाजा अब्दुल करीम कश्मीरी
१६. मजमाउल अख़बार	:	हरसुखराय
१७. मीरात-ए-आफ़ताबनुमा	:	अब्दुर्रहमान, सीतामऊ संग्रह
१८. वाक़या-ए-शाह आलम सानी	:	अज्ञात, सरकार संग्रह, रा० पु० क० (दिल्ली क्रानिकल्स के नाम से ज्ञात)
१९. वाक़या-ए-होल्कर	:	मोहनसिंह, सरकार संग्रह, रा०पु०क०
२०. शाहनामा-ए-मुनव्वर-उल-कलाम	:	शिवदास

प्रकाशित एवं अनुदित

१. अहकाम-ए-आलमगीरी	:	हमीउदद्दीन खान, जदुनाथ सरकार द्वारा सम्पादन व अंग्रेजी में अनुवाद। हिन्दी अनुवाद औरंगजेब के उपाख्यान, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा १९६७ ई०
२. अहवाल-ए-जंग-ए-भाऊ-व-अहमदशाह दुर्रानी	:	काशीराज, एच० जी० रालिन्सन कृत अंग्रेजी अनुवाद एन एकाउण्ट ऑफ दि लास्ट वेटल ऑफ पानीपत बम्बई यूनिर्वसिटी, १९२६ ई०
३. अहवाल-ए-नजीवुद्दौला	:	मुंशी विहारीलाल, जदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद 'इस्लामिक कलचर' के अक्तूबर १९३६ ई० के अंक में प्रकाशित।
४. अहवाल-ए-नजीवुद्दौला	:	सैय्यद नुरुद्दीन हसन, जदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद 'इस्लामिक कलचर' के जुलाई व अक्तूबर १९३३ ई० व अप्रैल १९३४ ई० के अंकों में क्रमशः प्रकाशित।
५. आईन-ए-अकवरी	:	अबुल फ़जल, जिल्द II, एच० एस० जैरेट कृत अंग्रेजी अनुवाद, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता से १८९१ ई० में प्रकाशित।
६. इमाद-उस-सादात	:	मीर गुलाम अली, लिथोग्राफ मुद्रित, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ १८९७ ई०
७. तबकात-ए-अकवरी	:	ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद, बृजेन्द्रनाथ दे द्वारा सम्पादन व अँग्रेजी में अनुवाद, बिबलिओथका इण्डिका सिरीज कलकत्ता से तीन भागों (१९१३-४० ई०) में प्रकाशित।
८. तारीख़-ए-इरादत ख़ान	:	इरादत खान, जोनाथन स्काट कृत अंग्रेजी अनुवाद, लन्दन, १७८६ ई०।
९. तारीख़-ए-शाह आलम	:	मुन्नालाल, जदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद, महाराष्ट्र अभिलेखागार, बम्बई से १९७० ई० प्रकाशित।

१०. पर्शियन हिस्ट्री ऑफ जाट्स : फ्रैंज गोटलियब, जदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजेंट के जुलाई-दिसम्बर १९५५ ई० के अंक में प्रकाशित।

११. वालमुकुन्दनामा : मेहता वालमुकुन्द, सतीशचन्द्र का अंग्रेजी अनुवाद 'लेटर्स आफ ए किंग मेकर ऑफ दि एटीन्थ सेन्चुरी,' एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई से १९७२ ई० में प्रकाशित।

१२. माआसीर-उल-उमरा : शाह नवाज ख़ान, अंग्रेजी अनुवाद दो भागों में (बेवरिज व बेनी प्रसाद) एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता से प्रकाशित। हिन्दी अनुवाद चार भागों में (ब्रजरत्नदास) काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

१३. माआसीर-ए-आलमगीरी : साक़ी मुस्तैद खान, जदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता से १९४७ ई० में प्रकाशित।

१४. मीरात-ए-अहमदी : अली मुहम्मद ख़ान, अंग्रेजी अनुवाद ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा से १९६५ ई० में प्रकाशित।

१५. मुन्तखब-उल-लुबाब : ख़ाफ़ी ख़ां, विवलिओथका इण्डिका कलकत्ता से तीन भागों में (१८६८ व १९२५ ई०) प्रकाशित।

१६. सियार-उल-मुतख़िरीन : गुलाम हुसैन, फ़ासीसी मुस्लिम हाजी मुस्तफा द्वारा तीन जिल्दों में अंग्रेजी अनुवाद। जान ब्रिग्ज द्वारा संशोधित संस्करण चार भागों में आर० कैम्ब्रे एण्ड कम्पनी; कलकत्ता से प्रकाशित। प्रस्तुत शोध प्रवन्ध के लिए प्रथम भाग के १८३२ ई० तथा तीसरे व चौथे भाग के लिए १९२६ ई० के संस्करणो का उपयोग किया गया है।

१७. हालात-ए-अमदान-ए-अहमद शाह दुर्रानी दर हिन्दुस्तान दर : गुलाम हुसैन सामिन, विलियम इरविन कृत अंग्रेजी अनुवाद इण्डियन एण्टीक्वेरी १९०७ ई० में प्रकाशित।

(ख) मराठी

१. इतिहास संग्रह : सम्पा० दत्तात्रय बलवन्त पारसनीस, तीन भागों में निर्णय सागर, प्रेस बम्बई से मुद्रित।

२. एठले दफ्तर : अप्रकाशित, सीतामऊ संग्रह, वि० एठले द्वारा संकलित।

३. ऐतिहासिक पत्र व्यवहार : सम्पा० सरदेसाई, कुलकर्णी व काले, समर्थ भारत छापाखाना, पूना से १९३३ ई० में प्रकाशित।

४. ऐतिहासिक लेख संग्रह : प्रथम भाग, सम्पा० वासुदेव वामन शास्त्री खरे, भाऊनाना प्रेस, कुरुन्दवाड १८९७ ई० में मुद्रित।

५. गुलगुले दफ्तर : प्रथम जिल्द, अप्रकाशित सीतामऊ संग्रह।

६. चन्द्रचूड दफ्तर : प्रथम भाग, सम्पा० दत्तात्रेय विष्णु आप्टे, भारतीय इतिहास संशोधक मण्डल द्वारा १९२० ई० में प्रकाशित।

७. पुरन्दरे दफ्तर : सम्पा० कृष्णाजी वासुदेव पुरन्दरे, भारतीय इतिहास संशोधन मण्डल पूना द्वारा तीन भागों में प्रकाशित।

८. पेशवा दफ्तर, न्यू सिरीज : सम्पा० पो० एम० जोशी, प्रथम जिल्द "इक्स्पैन्शन आफ मराठा पावर" राजकीय मुद्रणालय, बम्बई से १९५७ ई० में प्रकाशित।

९. ब्रह्मेन्द्र स्वामी चरित : सम्पा० डी० बी० पारसनीस, बम्बई १९०३ ई०

१०. भाऊसाहेबांची बखर : कृष्णाजी शामराव, सम्पा० काशीनाथ नारायण साने, आर्यभूषण प्रेस पूना से १९२२ ई० में मुद्रित। पांचवा संस्करण (१९३२ ई०) प्रयुक्त।

११. भाऊसाहेबांची दूसरी बखर : सीतामऊ संग्रह, वि० एठले द्वारा १९०५ ई० में संकलित।

१२. भाऊसाहेब यांची कैफियत : सम्पा० काशीनाथ नारायण साने, १८८७ ई० में प्रकाशित।

१३. मराठ्यांच्या इतिहासांची साधनें : सम्पा० विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे, २१ जिल्दो में (१८९८-१९०२ ई०) पूना से प्रकाशित, जिल्द I, III व VI प्रयुक्त।

१४. शिंदेशाही इतिहासांची साधनें : सम्पा० आनन्दराव भाऊ फाल्के प्रथम दो भाग प्रयुक्त, १९२९ व १९३० ई० में ग्वालियर से प्रकाशित।

१५. सिलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर : गोविन्द सखाराम सरदेसाई द्वारा सम्पादित व ४५ जिल्दों में बम्बई से प्रकाशित।

१६. हिंगणे दफ्तर : सम्पा० श्री गणेश हरी खरे, दो जिल्दों में भारतीय इतिहास संशोधक मण्डल पूना से १९४५ व १९४७ ई० में प्रकाशित।

१७. होल्करशाहीच्या इतिहासाची साधनें : सम्पा० वा० वा० ठाकुर, दो भागों में होल्कर गवर्नमेन्ट प्रेस इन्दौर से १९४४ ई० में प्रकाशित।

(ग) हिन्दी व राजस्थानी (समकालीन)

१. खांडेराव रासो : कवि जदुनाथ, दो भागों में १७४८ ई० अप्रकाशित पाण्डुलिपि, सीतामऊ संग्रह

२. जोधपुर राज्य की ख्यात : अप्रकाशित, सीतामऊ संग्रह

३. प्रताप रासो : जाचीक जीवण, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर १९६५ ई० में प्रकाशित

४. माधव जयति : कवि सोमनाथ, पा० लि०, जिला पुस्तकालय, भरतपुर

५. रस पीयूष निधि : —वही—

६. रामचरित रत्नाकर : —वही—

७. सवाई जयसिंह चरित : कवि आत्माराम, सम्पा० गोपालनारायण बहुरा, सवाई मानसिंह II संग्रहालय, जयपुर से १९७९ ई० में प्रकाशित।

८. सुजान चरित्र : कवि सूदन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित, वि० सं० १६८० द्वितीय संस्करण प्रयुक्त ।

६. सुजान विलास : कवि सोमनाथ, पा० लि०, जिला पुस्तकालय, भरतपुर

(घ) जयपुर अभिलेखागार दस्तावेज़ (बीकानेर)

१. अखबारात-ए-दरबार-ए-मुअल्ला
२. अर्ज़दाश्त
३. विविध काग़जात, आमेर रिकार्ड
४. कपटद्वारा रिकार्ड : (राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली से १६७१ ई० में इसकी सूची "नेशनल रजिस्टर आफ प्राइवेट रिकार्ड्स" संख्या १ भाग । में प्रकाशित ।)
५. खरीता
६. खतूत महाराजगान
७. ख़तूत अहलकारान
८. ड्राफ़्ट खरीते
६. डिग्गी कलेक्शन : (अप्रकाशित डिग्गी घराने से प्राप्त काग़जात, राजकीय अभिलेखागार की जयपुर स्थित शाखा में विद्यमान)
१०. काग़ज़ात दफ्तर सनदनवीस
११ दस्तूर कौमवार
१२. परवाने
१३. फ़रमान, मंशूर व निशान
१४. काग़ज़ात मुतफ़र्रिक अहलकारान
१५. काग़ज़ात मुतफ़र्रिक महाराजगान
१६. वकील रिपोर्ट्स, फ़ारसी
१७. वकील रिपोर्ट्स, राजस्थानी

(ङ) फ्रैंच

१. मेमॉयर्स आफ कॉम्पटे डी मोडव : जदुनाथ सरकार द्वारा अंग्रेजी में आंशिक अनुवाद, बंगाल पास्ट एण्ड प्रेज़ेन्ट, जि० ५१ (१६३६ ई०) में प्रकाशित ।

२. मेमॉयर्स ऑफ ली नवाब रेने मैडक : जदुनाथ सरकार द्वारा अंग्रेजी में आंशिक अनुवाद, बंगाल पास्ट एण्ड प्रेज़ेन्ट, जि० ५२ (जुलाई-दिसम्बर १६३६) व जि० ५३ (अप्रेल-जून १६३७) में प्रकाशित ।

३. मेम्वार द लोरिजीन एक्ज्ञास्मां एतेता प्रेजां द पुइसांस दे जाट्स दॉ लिन्दोस्तान : फादर फ्रांसिस जेवियर वैण्डल, अप्रकाशित सरकार संग्रह, रा०पु०क०

४. स्टोरिया डी मोगोर : निकोलाई मनुची, विलियम इरविन द्वारा चार भागों में इसका अंग्रेजी में अनुवाद १९०७-१९०८ में ई० में प्रकाशित।

(च) अंग्रेजी (अप्रकाशित राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली)

१. फ़ारिन पोलिटिकल प्रोसीडिंग्स, १८११ ई०

२. सिलेक्ट कमेटी प्रोसीडिंग्स, जि० VIII, १७६०-६२ ई०

(छ) संस्कृत

१. ईश्वर विलास महाकाव्यम् : श्री कृष्ण भट्ट, राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर, जयपुर, १९५८ ई० में प्रकाशित

२. पद्य मुक्तावली : —वही—

३. श्रीमद् भागवत महापुराणम् : गीताप्रेस गोरखपुर, सातवाँ संस्करण, वि० सं० २०१८

४. विष्णु पुराण : एच० एच० विल्सन कृत अंग्रेजी अनुवाद पुन्थी पुस्तक, कलकत्ता १९६१ ई० (तीसरा संस्करण)

(ज) सहायक ग्रन्थ सूची (अंग्रेजी व हिन्दी)

१. अब्दुल रशीद : नजीबुद्दौला, अलीगढ़, १९५२ ई०

२. अलबेरुनी : अलबेरुनी का भारत, हिन्दी अनु० रजनीकान्त शर्मा, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद १९६७ ई०

३. आर० वी० रसेल : ट्राइब्ज एण्ड कास्ट्स ऑफ दि सेन्ट्रल प्राविन्सेज़ आफ इण्डिया, जि० III, मैकमिलन एण्ड कम्पनी, लन्दन, १९१६ ई०

४. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव : (१) दि फर्स्ट ट् नवाब्स ऑफ़ अवध, आगरा १९५४ ई०
(२) शुजाउद्दौला, जि० I, आगरा, १९६१ ई०

५. इब्वेटसन : पंजाव कास्ट्स, रीप्रीन्ट, पंजाव सरकार लाहौर, १९१६ ई०

६. इलियट व डाउसन : भारत का इतिहास, आठ भाग (हिन्दी अनु०) भाग। द्वितीय संस्करण, अन्य सभी भाग प्रथम संस्करण, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा

७. उपेन्द्रनाथ शर्मा : जाटों का नवीन इतिहास, मंगल प्रकाशन, जयपुर १९७७ ई०

८. ए० ए० मेकडानल : हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, १९५८ ई०, पाँचवां संस्करण

९. ए० एच० कीन : एशिया, सम्पा० रिचार्ड टेम्पिल

१०. ए० एच० बिंगले : जाट्स एण्ड गूर्जर्स, एस्स पब्लीकेशन्स, दिल्ली, १९७८ ई०

११. ए० एच० रोज : ए ग्लॉसरि आफ ट्राइब्ज एण्ड कास्ट्स ऑफ दि पंजाब एण्ड नॉर्थ वेस्ट फ्रन्टियर प्राविन्सेज, लाहौर १९११-१९ ई०

१२. एच० एम० इलियट : (१) सप्लीमेन्ट टु दि ग्लॉसरि ऑफ इण्डियन टर्म्स, थामसन कालेज प्रेस, रुड़की, १८६० ई०
(२) मेमायर्स ऑफ दि हिस्ट्रीफ़ोक लॉर एण्ड डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ दि रेसेज आफ दि नॉर्थ वेस्टर्न प्राविसेन्ज ऑफ इण्डिया, सम्पा० जे० बीम्स, दो जिल्द, लन्दन १८६९ ई०

१३. एच० जी० कीने : दि फॉल ऑफ दि मुग़ल एम्पायर, लन्दन, १८७६ ई०

१४. एच० सी० टिक्कीवाल : जयपुर एण्ड दि लेटर मुग़ल्स, हेमा प्रिण्टर्स, जयपुर १९७४ ई०

१५. एफ० एस० ग्राउसे : मथुरा, ए डिस्ट्रिक्ट मेमॉयर, १८७४ ई०

१६. एम० अतहर अली : औरंगज़ेब कालीन मुग़ल अमीर वर्ग, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९७७ ई०

१७. एम० सी० पधान : दि पोलिटिकल सिस्टम ऑफ दि जाट्स आफ नॉर्दर्न इन्डिया, १९६६ ई०

१८. एलफिन्सटन : हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, लन्दन, १९०५ ई०, नवां संस्करण

१९. एस० आर० टिकीकर (सम्पा०) : सरदेसाई कोमेमोरेशन वोल्यूम, बम्बई, १९३८ ई०

२०. कालिकारंजन कानूनगो : (१) हिस्ट्री ऑफ जाट्स, एम० सी० सरकार एण्ड सन्स कलकत्ता, १९२५ ई०

(२) हिस्टारिकल एसेज, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, प्रथम संस्करण
(३) हिस्ट्री ऑफ दि वेरोनिकल हाउस ऑफ डिग्गी, अप्रकाशित टंकण प्रतिलिपि (सीतामऊ संग्रह), १९६३ ई० लखनऊ
(४) शेरशाह और उसका समय (हिन्दी अनु०) कैलाश पुस्तक सदन ग्वालियर १९६९ ई०

२१. किनकेड एण्ड पारसनीस : ए हिस्ट्री ऑफ दि मराठा पीपुल, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लन्दन, दो भाग, १९१८ व १९२२ ई०

२२. के० बी० एल० गुप्ता : दि इवोल्यूशन ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि फॉर्मर भरतपुर स्टेट, विद्या भवन, जयपुर, प्रथम संस्करण

२३. गंगासिंह : यदु वंश, भरतपुर, १९७१ ई०

२४. गण्डासिंह : अहमदशाह दुर्रानी, एशिया पब्लिशिंग हाउस, लन्दन, १९५९ ई०

२५. ग्राण्ट डफ : हिस्ट्री आफ दि मराठाज़ (तीन भाग) आर० कैम्ब्रे एण्ड कम्पनी, कलकत्ता, १९१८ ई०

२६. गोकुलचन्द दीक्षित : बृजेन्द्र वंश भास्कर, हिन्दू धर्म संरक्षिणी सभा, आगरा, वि० सं० १९८३

२७. गोविन्द सखाराम सरदेसाई : मराठों का नवीन इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, प्रथम दो भाग १९७६ ई०

२८. गौ० ही० ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, दो भाग वि० सं० १९९५ व १९९८, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर

२९. चतुरा राय : पथैना रासो, पाण्डुलिपि, जिला पुस्तकालय भरतपुर

३०. जगदीश नारायण सरकार : ए स्टडी ऑफ एटीन्थ सेन्चुरी इण्डिया, भाग I, सारस्वत लाइब्रेरी, कलकत्ता, १९७६ ई०

३१. जगदीशसिंह गहलोत : ऐतिहासिक तिथि पत्रक, हिन्दी साहित्य मन्दिर, १९६२ ई० प्रथम संस्करण

३२. जदुनाथ सरकार : (१) औरंगज़ेब, पाँच भाग, एम० सी० सरकार एण्ड सन्स, कलकत्ता
(२) मुग़ल साम्राज्य का पतन (हिन्दी अनु०) चार भाग, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा १९७२ ई०
(३) हिस्ट्री ऑफ दि जयपुर स्टेट, अप्रकाशित सीतामऊ संग्रह

३३. जमाल मुहम्मद सिद्दीकी : अलीगढ़ डिस्ट्रिक्ट : ए हिस्टारिकल सर्वे मुन्शीराम मनोहरलाल, दिल्ली १९८१ ई०

३४. ज्वाला सहाय : (१) हिस्ट्री ऑफ भरतपुर, ट्रिब्यून प्रेस लाहौर, १८९९ ई०
(२) वाकया राजपूताना (उर्दू), तीन भाग, आगरा से १८७८-७९ ई० में प्रकाशित

३५. जहीरुद्दीन मलिक : दि रेन ऑफ मुहम्मदशाह, एशिया, पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

३६. जहीरुद्दीन फ़ारुकी : औरंगज़ेब एण्ड हिज टाइम्स, बम्बई १९३५ ई०

३७. जी० बी० मैलिसन : दि नेटिव स्टेट्स आफ इण्डिया, लन्दन १८७५ ई०

३८. जे० ए० देवनीश : दि भवन्स एण्ड गार्डन पेलेसेज ऑफ डीग पायनियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०२ ई०

३९. जेम्स टॉड : एनल्स एण्ड एन्टिक्विटीज आफ राजस्थान तीन भाग, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली १९७१ ई०

४०. जोसेफ डेवी कनिंघम : हिस्ट्री ऑफ दि सिख्स, ३८-२ भवानीचंद्र दत्त स्ट्रीट कलकत्ता, १९०४ ई०

४१. टी० एस० शेजवल्कर : पानीपत १७६१ (हिन्दी अनुवाद), कमल प्रकाशन, इन्दौर प्रथम संस्करण

४२. देशराज : जाट इतिहास, बृजेन्द्र साहित्य समिति, आगरा, १९३४ ई०

४३. नटवरसिंह : महाराजा सूरजमल, जॉर्ज एलन एण्ड अनविन, लन्दन, १९८१ ई०

४४. नरेन्द्रसिंह : थर्टी डिसाइसिव बैटल्स ऑफ जयपुर, जयपुर १९३९ ई०

४५. नोमान अहमद सिद्दीकी : मुग़ल कालीन भूराजस्व प्रशासन राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९७७ ई०

४६. प्रभुदयाल मीतल : ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास, प्रथम भाग राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६६ ई०

४७. फ्रैंकलिन : दि हिस्ट्री ऑफ दि रेन ऑफ शाह आलम इलाहाबाद, १९३४ ई०, तृतीय संस्करण

४८. फ्रैंकोइस बर्नियर : ट्रैवल्स इन दि मुग़ल एम्पायर आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन, १९१४ ई० द्वितीय संस्करण

४९. मथुरालाल शर्मा : (१) कोटा राज्य का इतिहास, दो भाग, कोटा १९३९ ई०
(२) हिस्ट्री ऑफ दि जयपुर स्टेट जयपुर १९६९ ई०

५०. मिश्रबन्धु : मिश्रबन्धु विनोद, चार भाग, प्रथम व तृतीय खण्डवा १९१३ ई०, द्वितीय व चतुर्थ, लखनऊ क्रमशः १९२७ व १९३४ ई०

५१. मुकुन्द वामनराव वर्वे : लाइफ ऑफ सूबेदार मल्हार राव होल्कर इन्दौर, १९३० ई०

५२. मोतीलाल गुप्त : मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर १९६२ ई०

५३. रघुवीरसिंह : मालवा इन ट्रांजिशन, बम्बई, १९३६ ई०

५४. राधारमण चौबे : भरतपुर राज्य का संक्षिप्त इतिहास

५५. रामप्रसाद चन्दा : दि इण्डो-आर्यन रेसेज़ इण्डियन स्टडीज, कलकत्ता, १९६९ ई०

५६. राम पाण्डे : भरतपुर अप टु १८२६, रामा पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, १९७० ई०

५७. विष्णु चन्द्र पाठक : सोमनाथ आचार्य और कवि, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर १९६९ ई०

५८. विलियन इरविन : लेटर मुग़ल्स, दो भाग, ओरियन्ट बुक्स रीप्रीन्ट कॉरपोरेशन, दिल्ली, १९७१ ई०

५९. विलियम वेब : दि करेन्सीज़ ऑफ दि हिन्दू स्टेट्स ऑफ राजपूताना, १८९३ ई०

६०. वीरेन्द्र स्वरूप भटनागर : (१) हिस्ट्री ऑफ राजपूताना ड्यूरिंग एटीन्थ सेन्चुरी, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, १९५८ ई०
(२) लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ सवाई जयसिंह, इम्पेक्स इण्डिया, दिल्ली, १९७४ ई०

६१. वी० एस० भार्गव : राइज़ ऑफ दि कच्छावाज इन ढूंढाड़

६२. वूल्जले हेग : दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जि० IV एस० चान्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली, १९५७ ई०

६२. श्यामलदास : वीर विनोद, चार भाग, उदयपुर, १८८६ ई०

६४. शेरिंग : दि ट्राइब्ज एण्ड कास्ट्स ऑफ राजस्थान (एन आफ़—प्रिन्ट फ्राम हिन्दू ट्राइब्ज एण्ड कास्ट्स, जि० III, भाग I) कॉस्मो पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९७५ ई०

६५. श्री राम शर्मा : भारत में मुग़ल साम्राज्य, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, १९७३ ई० चतुर्थ संस्करण

६६. सतीश चन्द्र : पार्टीज एण्ड पॉलिटिक्स ऐट दि मुग़ल कोर्ट, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़, १९५९ ई०

६७. सिडनी ओवेन : इण्डिया ऑफ दि ईव ऑफ दि ब्रिटिश कॉन्क्वेस्ट, कलकत्ता, १९५४ ई०

६८. सी० यू० एटचीसन : ए कलेक्शन ऑफ ट्रीट्रीज, इंगेजमेन्ट्स एण्ड सनद्स, जि० III, कलकत्ता, १८७६ ई०

६९. सूर्यमल्ल मिश्रण : वंश भास्कर

७०. हरवर्ट रिज़ले : दि पीपुल ऑफ इण्डिया, ओरियन्टल बुक्स रीप्रीन्ट कारपोरेशन, दिल्ली, १९६९ ई०

(झ) गज़ेटियर

१. इम्पीरियल गज़ेटियर आफ इण्डिया, यूनाईटेड प्राविन्सेज़, जि० I, १९०८ ई० ।
२. अर्सकिन, इम्पीरियल गज़ेटियर ऑफ इण्डिया, प्राविन्सियल सिरीज़, राजपूताना, १९०८ ई०
३. एटकिन्सन, गज़ेटियर ऑफ दि फ़र्रुखाबाद डिस्ट्रिक्ट, १८८० ई०
४. एटकिन्सन, गज़ेटियर नॉर्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज़ आफ इण्डिया, जि० IV, भाग १, इलाहाबाद, १८७६ ई०
५. गज़ेटियर ऑफ दि बम्बई प्रेसीडेन्सी, जिल्द, I व IX
६. गज़ेटियर ऑफ दि डेरा गाजी खान डिस्ट्रिक्ट, १८९३-९७ ई० लाहौर, १८९८ ई०
७. गज़ेटियर ऑफ दि देल्ही डिस्ट्रिक्ट, १८८३-८४ ई० कलकत्ता, १८८४ ई०
८. डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर ऑफ मुज़फ्फ़रनगर, १९२० ई०
९. ड्रेक ब्रोकमेन, गज़ेटियर आफ दि ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स
१०. वाल्टर हेमिल्टन, दि ईस्ट इण्डिया गज़ेटियर, लन्दन, १८२८ ई०
११. सी० के० एम० वाल्टर, ए गज़ेटियर आफ दि भरतपुर स्टेट, आगरा, १८६८ ई०
१२. हण्टर, इम्पीरियल गज़ेटियर आफ इण्डिया, जि० II व IV १८८५ ई० लन्दन

(न) जनरल व रिपोर्ट

१. इण्डियन एण्टीक्वेरी
२. इस्लामिक कलचर
३. एम०एफ० ओडायर : (१) असेसमेन्ट रिपोर्ट आफ भरतपुर स्टेट I, तहसील गोपालगढ़, पहाड़ी, कामां व डीग, १८९८-९९ ई०
(२) रिपोर्ट II, तहसील कुम्हेर, अखैगढ़, भरतपुर नगर, १८९८-९९ ई०
(३) रिपोर्ट III, तहसील रूपवास, उच्चैन, बयाना, भुसावर, १८९९-१९०० ई०
(४) फाइनल रिपोर्ट ऑन दि भरतपुर स्टेट सेटलमेन्ट, १९००-१९०१ ई०
४. कनिंघम, आर्कियालाजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया, जिल्द XX १८८२-८३ ई०
५. जरनल आफ दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, १८९९ ई०
६. बंगाल पास्ट एण्ड प्रेज़ेन्ट
७. भारत वीर, भरतपुर स्टेट से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र
८. मॉडर्न रिव्यू
९. राजस्थान भारती
१०. राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसीडिंग्स

अनुक्रमणिका